जीव कांड यह गोमटसार,
नेमिचन्द्र कर्त्ता उर धार ।
गुणस्थान मारगणा थान,
इनमें किया जीव व्याख्यान ।।
इनसे रहित लखा जिन जीव,
तिन खोदी शिवपुर की नीव ।
उस पर चारित्र महल बनाय,
जिसको दृढ़ कर शिवपुर जाय ।।

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनू
को सप्रेम भेंट -

अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता और अनेक अतिशय [स्वयंबोधित, परमअध्यात्मयोगी, विद्यमानभोगपरिहारी, दम्पतिमहाव्रतधारी, एकाविहारी, जिनवरलिङ्गधारी, महासाहित्यक महावादी, महाकवि] के धारक परमपूज्य श्री १०८ महामुनि

क्षीरसागर जी महाराज

श्री १०८ महामुनि क्षीरसागरजी महाराज का जीवन-वृत

आपका जन्म वरैया वैश्य जाति के कांडोर गोत्र मे सौ० द्रौपदी वहिन के पश्चात् श्रावण कृष्णा ३ सं० १६६० मे रिठौरा ग्राम जिला मुरैना (गवालियर) में हुआ था। आपका पूर्व नाम वोहरे मोतीलाल जी था। पिता का नाम वोहरे पन्नालाल जी तथा माता का नाम कौशल्या वाई था। आपकी शिक्षा मुरैना जैन विद्यालय में केवल चौथी कक्षा तक हुई और ११ वर्ष की अवस्था में आपका विवाह साह नन्दरामजी, मोहना (गवालियर) की सुपुत्री मथुराई के साथ होगया। लगभग ४० वर्ष की अवस्था तक आप पूर्व धार्मिक मर्यादा सहित गृहस्थ-जीवन करते रहे। आपका मुख्य व्यवसाय कपडे की दूकान तथा साहूकारी था। चिरंजीलाल जी, सुनेहरी लाल जी, श्यामलाल जी, शकरलाल जी तथा अमृतलाल जी आपके पॉच सुपुत्र हैं जो इस समय गवालियर मे कपडे का व्यवसाय कर रहे हैं। विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते समय ही आपके हृदय में विशेष धार्मिक अभिरुचि उत्पन्न हुई और स्वाध्याय, दर्शन पूजन आदि आपके दैनिक नियम वन गये। वाल्यकाल से ही आपकी प्रवृत्ति सप्त व्यसनों से सर्वथा विमुख रही। प्रत्येक शास्त्र की समाप्ति पर आप कुछ न कुछ नियम अवश्य लेते थे। एक वार आपने एक महान् नियम लिया कि पुत्र-वधू के आते ही मैं गृह त्याग दूंगा। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी आपका हृदय सदैव ससार से विरक्त रहा। सॉसारिक प्रलोभन आपकी पवित्र आत्मा को जरा भी विचलित न कर सके। दो पुत्रों की शादी होने के पश्चात् उनकी छोटी अवस्था के कारण आप ३ वर्ष तक ७वीं प्रतिमा धारण कर घर पर ही रहे। अन्त मे ससार की अनित्यता को देखकर, अपने आत्म-कल्याण की दृष्टि से आपने अपनी धर्मपत्नी सहित क्षुल्लक अवस्था धारण की। इससे पूर्व आपने धर्मपत्नी सहित १ वर्ष तक प्राय: सभी जैन तीर्थों की यात्रा की।

आपकी धर्मपत्नी पद्मश्री क्षुल्लिका के नाम से प्रख्यात हैं। ३ वर्ष तक क्षुल्लक अवस्था में रहने के पश्चात् सं० २००७ में भोपाल की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर तप कल्याणक के दिन विशाल जन समुदाय की हर्ष ध्वनि के बीच आपने मुनिव्रत धारण किया। साँसारिक सुखों के समस्त साधनों के होते हुए भी, पारिवारिक एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हुए, उनको ठुकराकर आपने वर्तमान काल में एक महान् शिक्षाप्रद आदर्श उपस्थित किया है।

अध्ययन की ओर प्रारम्भ से ही आपकी विशेष रुचि थी। विद्यालय छोड़ने के बाद भी आपने धार्मिक अध्ययन जारी रखा और समयसार, प्रवचनसार जैसे महान् ग्रन्थों का अध्ययन किया। अध्यात्म-वाणी आदि जैसी महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना आपके इसी अध्ययन और मनन का परिणाम है। सयम के साथ आध्यात्मिक विषय का इतना ज्ञान आपकी एक महान विशेषता है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक विषय का अपूर्व ज्ञान होने के साथ साथ आपका स्वभाव भी अत्यन्त शान्त, सरल एवं गम्भीर है। भाषण शैली अत्यन्त मधुर एवं प्रभाव-शाली है। आपका व्यक्तित्व इतना महान् है कि दर्शन करते ही हृदय मे अपूर्व शान्ति का अनुभव होने लगता है। इससे पूर्व आपने लगभग २००-२५० आध्यात्मिक एव महत्वपूर्ण दोहों की रचना की है। जिसमें अनेक जटिल विषयों का निर्णय किया है जो अभी तक अप्रकाशित हैं।

आप कभी भी अपने श्रोताओं को किसी व्रत को ग्रहण करने अथवा कुछ दान करने के लिये विवश नहीं करते। किन्तु आपका उपदेश इतना हृदयस्पर्शी होता है कि श्रोतागण स्वयंमेव ही शक्ति अनुसार व्रत ग्रहण किये बिना नही रहते। आप धार्मिक एवं लौकिक सामाजिक झंझटों से सर्वथा विमुख रहते है। आपका अधिकाश समय अध्ययन और मनन मे ही व्यततीत होता है। समाज को आप जैसे मुनिराज पर महान गर्व है।

भूमिका

(भाषाकार)

श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के बनाये हुये ५ ग्रन्थ हैं गोमटसार-जीवकांड, गोमटसार-कर्मकांड, लब्धिसार, त्रिलोकसार और द्रव्यसंग्रह। ये सब महान आगम ग्रन्थ हैं इनकी अनेक टीकायें अनेक भाषाओं में आज तक हो चुकी हैं उनके पश्चात् सब के अंत का यह प्रयास है।

इस गोमटसार-जीवकांड में जितने प्राकृतिक भाषा के छंद हैं वे सब उपरोक्त सिद्धान्त चक्रवर्ती के बनाये हुये हैं इनके नीचे जो हिन्दी भाषा के दोहा और अर्थ है वह नवीन प्रयास है।

इस ग्रन्थ का विषय करुणानुयोग के अनेक (जीव-अवस्था, कर्मअवस्था, भूगोल, काल चक्रादि) विषयों में से मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग के उदय से अथवा क्रमसे इन चारों के अनुदय से जीव की जो अवस्था होती है उसका वर्णन करना है इस ग्रन्थ के विषय का विशद वर्णन षटखंडागम के जीवस्थान खंड में है और संक्षेप वर्णन चौवीस ठाना में है जीवस्थान खंड को पढकर इसी तरह आगमवाणी ग्रन्थ लिखा था जो कि कई वर्ष पूर्व छप चुका है।

यह वर्णन क्रम से गुणस्थान, जीवसमास (स्थान, योनि अवगाहना, कुल) पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, गति (मनुष्यादिगति) इन्द्रिय, काय) त्रस, स्थावर की उत्पत्ति आदि) योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, सैनी, आहारक, उपयोग अंतर्भाव (गुणस्थान मार्गणाओं का समावेस) और अंत कथन ये २२

अधिकार है इनके द्वारा किया गया है जिससे ग्रन्थ का विषय भली भांति स्पष्ट हो गया है।

इस ग्रन्थ के पढने से प्रत्येक जीव के उपरोक्त लिखे हुये गुणस्थानादि का परिज्ञान होगा और इसके अतिरिक्त गुणस्थानादि से रहित जीव की शुद्ध अवस्था का भी परिज्ञान होगा कारण इस ग्रन्थ के प्रत्येक अधिकार के अंत मे गुणस्थानादि से रहित सिद्ध भगवान का वर्णन आया है इसलिये भव्य जीवों को इस ग्रन्थ और इस ग्रन्थ के अगो (कर्मकाडदि ग्रन्थ) का परिज्ञान करना परमावश्यक है कारण इसके बिना केवल अध्यात्म का ज्ञान कर लेने से पुण्यास्रव ही होगा मोक्ष मार्ग न होगा इस विषय मे आगे अध्यात्मवाणी और परमात्मा-प्रकाश की भूमिका मे पर्याप्त लिख चुका हूँ।

इस जीवकाड के कार्य के साथ २ गोमटसारकर्मकाण्ड के दोहा भी बनाता जा रहा था जब बनाते २ उपरोक्त ग्रन्थ का त्रिकरण-चूलिका अधिकार आया तो ज्ञात हुआ कि इस अधिकार की ८९७, ८९८, ८९९, ९०८, ९१०, ९११ और ९१२ गाथाये तो वे ही है जो कि इस ग्रन्थ के गुणस्थानाधिकार मे क्रम से ४७, ४८, ४९, ५०, ५३, ५६ और ५७ नम्बर पर आ चुकी है और शेष ९ गाथाये उस विषय के उदाहरण की है जो कि यहाँ आवश्यक है इस कारण वे गाथाये ४९ न० की गाथा से आगे बढा दी गई है शेष जो कुछ भी काम इस ग्रन्थ मे हुआ है उसको पढ कर देखिये।

भाष्य नया अथवा प्राचीन,
पक्षपाद को तजो प्रवीन।
सरल वाक्य जिसमें अविरोध,
उसको पढ़ कर करलो बोध॥

विषय-सूची

अधःकरण यंत्र

(दो० न० ४७ से ११ दोहों तक का भाव)

न० समय	परिणाम संख्या	परिणाम से परिणाम तक			
१६	२२२	५४	५५	५६	५७
१५	२१८	५३	५४	५५	५६
१४	२१४	५२	५३	५४	५५
१३	२१०	५१	५२	५३	५४
१२	२०६	५०	५१	५२	५३
११	२०२	४९	५०	५१	५२
१०	१९८	४८	४९	५०	५१
९	१९४	४७	४८	४९	५०
८	१९०	४६	४७	४८	४९
७	१८६	४५	४६	४७	४८
६	१८२	४४	४५	४६	४७
५	१७८	४३	४४	४५	४६
४	१७४	४२	४३	४४	४५
३	१७०	४१	४२	४३	४४
२	१६६	४०	४१	४२	४३
१	१६२	३९	४०	४१	४२
	३०७२				

अपूर्वकरण-यंत्र

(दो० नं० ५०—५५ तक का भाव)

नं० समय	परिणाम संख्या	परिणाम से परिणाम तक
८	५६८	३५२९—४०९६
७	५५२	२९७७—३५२८
६	५३६	२४४१—२९७६
५	५२०	१९२१—२४४०
४	५०४	१४१७—१९२०
३	४८८	९२९—१४१६
२	४७२	४५७—९२८
१	४५६	१—४५६
८	४०९६	

अनिवृत्तिकरण-यंत्र

(दो० ५७—५८ तक का भाव)

नं० समय	परिणाम संख्या	परिणाम
४	१	४
३	१	३
२	१	२
१	१	१

उपयोग
(दे० उपयोगाधिकार)
दर्शन
ज्ञान
चक्षु
अचक्षु
अवधि
केवल
कुज्ञान
सुज्ञान
कुमति
कुश्रुत
कुअवधि
मति
श्रुत
अवधि
मन पर्यय
केवल

शरीर

(दे० योगमार्गणा)

- औदारिक
  - वादर — मनुष्य, तिर्यंचो के
  - सूक्ष्म — एकन्द्रिय के
- वैक्रियक
  - भवजन्य — देव, नारकियो के
  - अभवजन्य — मनुष्य, तिर्यंचो के
- आहारक — किसी प्रमत्त मुनि के
- तैजस
  - भिन्न
    - शुभ
    - अशुभ
    - (शुभ, अशुभ) — किसी मुनि के
  - अभिन्न — सब जीवो के
- कार्माण — सब जीवो के

अवगाहना यंत्र

(दो० ९७–११२ का भाव)

सूक्ष्म—निगोद, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी,	वादरवायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, निगोद, सप्रतिष्ठित प्रत्येक	अप्रतिष्ठित, दो, तीन, चार और पचेन्द्रिय,	प्रथम कोठा के अनुसार	द्वितीय कोठा के अनुसार	तृतीय कोठा के अनुसार	तीन, चार, दो, अप्रतिष्ठित, पचेन्द्रिय,	सातवे कोठा के अनुसार
			प्रथम कोठा के अनुगार	द्वितीय कोठा के अनुगार			
			प्रथम कोठा के अनुगार	द्वितीय कोठा के अनुगार			

श्रुत
(३१५— ६६९ का भाव)
विषय भेद
अनुयोग भेद
अंग भेद
आगम
अध्यात्म
कथा
चारित्र
गणित
द्रव्य
मुनिचर्या
धर्मक्रिया
द्रव्यांतर
द्रव्यतुलना
जीवसिद्धि
पुराण
श्रावकचर्या
दशोपसर्गसिद्ध
दशोपसर्गानुत्तर
ज्योतिषफलखंडन
कर्मोदय
दृष्टिवाद
भूगोल
मतमतांतरखंडन
पुण्यकथा
पूर्व
मनादिखंडन
चन्द्रकथन
सूर्यकथन
जम्बूद्वीप
द्वीपसागर
प्रश्नोत्तर
जल— थल- आकाश- इन्द्रजाल — बहुरूप-
संबंधी। संबंधी। संबंधी। संबंधी। संबंधी।
उत्पाद
नयभेद
शक्तिभेद
स्याद्वाद
ज्ञानभेद
सत्यभेद
आत्मभेद
कर्मभेद
त्यागभेद
भाषाभेद
कल्याणभेद
प्राणभेद
क्रियाभेद
लोकभेद

जीव

(दे० भव्यमार्गणा)

अर्थ—निकटभव्य—जो जीव एक दो अथवा तीन भवो मे मोक्ष जाने वाला है उसको निकट भव्य कहते हैं। जैसे सधवा स्त्री के बाल्यावस्था मे पुत्र की प्राप्ति।

दूरानुदूरभव्य—जो जीव अनेक भवो मे मोक्ष जाने वाला है उसको दूरानुदूर भव्य कहते है। जैसे सधवा स्त्री के वृद्धावस्था मे पुत्र की प्राप्ति।

अभव्यतुल्यभव्य—जो मोक्ष के वाह्य कारण की प्राप्ति के विना मोक्ष प्राप्ति की शक्ति के विद्यमान होते हुए भी मोक्ष को नही पाता उसको अभव्य तुल्य भव्य कहते हैं। जैसे विधवा स्त्री के पुत्र की अप्राप्ति।

अभव्य—जो मोक्ष के वाह्य कारण की विद्यमानता होने पर भी मोक्ष प्राप्ति की शक्ति के विना मोक्ष नही पाता उसको अभव्य जीव कहते हैं। जैसे वांझ स्त्री के पुत्र की अप्राप्ति।

नोट—काल के परिमाण मे जितने ६ मास और ८ समयो के विभाग है उन प्रत्येक विभाग मे ६०८ दूरानुदूर भव्य निकट भव्य होकर मोक्ष को जाते है गये हैं और आगे जायेंगे यह क्रम अनादि से है और अनादि तक रहेगा कारण जितने काल मे ६ मास ८ समय के विभाग है उनसे ६०८ गुणे जीव मोक्ष जाने की योग्यता रखते है।

योनि दर्पण
(दो० न० ८१ से ८९ तक का भाव)
सचित्त
अचित्त
मिश्र
शीत
उष्ण
मिश्र
शीत
उष्ण
मिश्र
शीत
उष्ण
मिश्र
ढकी
मिश्र
खुली ०
ढकी
मिश्र
खुली ०
ढकी
मिश्र
खुली ०
ढकी
मिश्र
खुली ०
ढकी
मिश्र
खुली ०
ढकी
मिश्र
खुली ०
ढकी
मिश्र
खुली
ढकी
मिश्र
खुली
ढकी
खुली
मिश्र
देव नारक
थावर
त्रस-समूर्च्छन
वासपत्रवताकार ३
कछुआवताकार ३
शखवताकार ३
अडागर्भ
पोतगर्भ
जेरगर्भ
पदधार
अपदवार
तिर्यंच
मनुष्य
तिर्यंच

अलौकिक-गणित

(जीवादि की संख्यादि निकालने के साधन)

सर्वधारा—एक से लेकर केवलज्ञान तक जितनी सख्याओ का समुदाय है उसको सर्वधारा कहते हैं। जैसे १ से १६ तक। यहाँ केवल ज्ञान का परिमाण १६ है।

समधारा—सर्वधारा में जितनी पूर्ण-पूर्ण सख्याओ का समुदाय है उसको समधारा कहते हैं जैसे २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६।

विषमधारा—समधारा की सख्याओ को छोडकर शेष जितनी सख्याओ का समुदाय है उसको विषमधारा कहते है। जैसे १, ३, ५, ७, ९ इत्यादि।

वर्गधारा—सर्वधारा मे जितनी वर्ग-सख्याओं का समुदाय है उसको वर्गधारा कहते है। जैसे १, ४, ९, १६।

अवर्गधारा—वर्गधारा की सख्याओ को छोडकर शेष जितनी सख्याओ का समुदाय है उसको अवर्गधारा कहते हैं। जैसे २, ३, ५ से ८ तक तथा १० से १५ तक।

घनधारा—सर्वधारा मे जितनी घन सख्याओ का समुदाय है उसको घनधारा कहते है। जैसे १, ८, २७, ६४। यहां केवलज्ञान का परिमाण ६५ है।

अघनधारा—घनधारा की सख्याओं को छोडकर शेष जितनी संख्याओ का समुदाय है उसको अघनधारा कहते है। जैसे २ से ७ तक, ९ से २६ तक २८ से ६३ तक तथा ६५।

वर्गमूलधारा—सर्वधारा मे वर्गों को जन्म देने मे समर्थ जितनी

सख्याश्रो का समुदाय है उसको वर्गमूलधारा कहते है। जैसे १, २, ३, केवलज्ञान (१६) का प्रथम वर्गमूल ४।

अवर्गमूलधारा—वर्गमूलधारा की सॅख्याश्रो को छोडकर शेष जितनी सख्याश्रो का समुदाय है उसको अवर्गमूलधारा कहते है। जैसे ५ से १६ तक।

घनमूलधारा—सर्वधारा मे घनों को जन्म देने मे समर्थ जितनी सख्याश्रो का समुदाय है उसको घनमूलधारा कहते है। जैसे १ से ४० तक। यहाँ केवल ज्ञान का परिमाण ६५५३६ है।

अघनमूलधरा—घनमूलधारा की सख्याश्रो को छोड़कर शेष जितनी सख्याश्रो का समुदाय है उसको अघनमूलधारा कहते है। जैसे ४१, ४२, ४३ इत्यादि।

द्विरूप वर्गधारा—सर्वधारा मे जितनी दो के वर्ग से लेकर, पूर्व-पूर्व के वर्ग की सख्याश्रो का समुदाय है उसको द्विरूपवर्गधारा कहते है। जैसे ४, १६, २५६, ६५५३६ इत्यादि।

द्विरूपघनधारा—सर्वधारा मे जितनी द्विरूप वर्गधारा की सख्याश्रों के वर्गमूलो की घनसख्याश्रो का समुदाय है उसको द्विरूपघनधारा कहते हैं। जैसे ८, ६४, ४०९६ इत्यादि।

द्विरूपघनाघनधारा—सर्वधारा मे जितनी द्विरूपवर्गधारा की सख्याश्रो के वर्गमूलो की घनाघन सख्याश्रो का समुदाय है उसको द्विरूपघनाघनधारा कहते हैं जैसे ५१२, २६२१४४, ३८११३८२७-२७१०६५६ इत्यादि।

जघन्यसंख्यात—केवल दो के अंक को जघन्य संख्यात कहते हैं एक के अक को जघन्य नही कहते कारण एक मे एक का भाग देने से अथवा गुणा करने पर कुछ भी हानि वृद्धि नही होती।

उत्कृष्टसंख्यात—जघन्यपरीतासंख्यात मे एक कम करने से जो सख्या शेष रहे उसको उत्कृष्ट सख्यात कहते है। जघन्यसख्यात

उत्कृष्टयुक्तासंख्यात—जघन्यअसख्यातासख्यात की सख्या में एक कम करने पर जो सख्या शेष रहे उसको उत्कृष्टयुक्तासख्यात कहते है।

जघन्यअसंख्यातासंख्यात—जघन्ययुक्तासंख्यात के वर्ग को जघन्य असख्यातासख्यात कहते है।

असख्यातासंख्यात का एक मध्य भेद—जघन्यअसख्यातासख्यात बराबर विरलन, देय और शलाका राशि बनाकर विरलन राशि का विरलन कर प्रत्येक एक के ऊपर एक एक देय राशि रखकर परस्पर गुणा करके और शलाका राशि मे एक कम करके फिर इस गुणानफल के बराबर विरलन और देय राशि बनावे। विरलनराशि का विरलन कर प्रत्येक एक के ऊपर एक एक देय राशि रख कर परस्पर गुणा करके और शलाका राशि मे एक कम करे इस प्रकार करते २ और शलाकाराशि मे एक एक कम करते २ शलाकाराशि समाप्त हो जावे तब उस, अंतिम गुणानफल के बराबर पुन विरलन, देय और शलाका राशि बनाकर उपरोक्त क्रमानुसार द्वितीय बार भी यह शलाका राशि समाप्त हो जावे तब उस अंतिम गुणानफल के बराबर विरलन, देय और शलाका राशि बना कर उपरोक्त क्रमानुसार तृतीय बार भी यह शलाकाराशि समाप्त हो जावे तब उस अंतिम गुणानफल के द्वारा जो सख्या आवे उसको असख्यातासख्यात का एक मध्य भेद कहते है। इस प्रकार के गणित को त्रयबारगुणानविधिगणित कहते है। आगे भी जहाँ २ "त्रयबारगुणानविधिगणित" शब्द आवे वहाँ २ ऐसी ही विधि समझना चाहिये।

उत्कृष्टअसंख्यातासंख्यात—जघन्यपरीतानत मे एक कम करने से जो सख्या शेष रहे उसको उत्कृष्टअसख्यातासख्यात कहते है।

जघन्यपरीतानंत—असख्यातासंख्यात की एक मध्यम सख्या में धर्म द्रव्य के प्रदेश, अधम द्रव्य के प्रदेश, एक जीव के प्रदेश, लोकाकाश के प्रदेश, अप्रतिष्ठित और सप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकाय के जीवो की सख्या जोडने से जितनी सख्या हो उसका त्रयवार-

गुणनविधिगणित करने से जो संख्या आवे उसमे एक कल्पकाल के समय, स्थितिबंध के स्थान, अनुभागबध के स्थान और तीन योग के अविभाग प्रतिच्छेद (अश) जोड़ देने से जो सख्या हो उस का अयवारगुणनविधि गणित करने से जो सख्या आवे उसको जघन्य परीतानंत कहते हैं।

उत्कृष्टपरीतानंत—जघन्ययुक्तानत मे एक कम करने से जो संख्या शेष रहे उसको उत्कृष्टपरीतानंत कहते है।

जघन्य युक्तानंत—जघन्य परीतानत की जितनी सख्या है उसको उतनी जगह रख कर परस्पर गुणा करने मे जो सख्या आवे उसको जघन्ययुक्तानंत कहते हैं।

उत्कृष्टयुक्तानंत—जघन्यअनतानत मे एक कम करने से जो संख्या शेष रहे उसको उत्कृष्टयुक्तानत कहते है।

जघन्यअनंतानंत—जघन्ययुक्तानंत के वर्ग को जघन्यअनतानत कहते है।

अनंतानंत का एक मध्य भेद—जघन्यअनतानत की जितनी संख्या है उसका "अयवारगुणनविधिगणित" करने से जो सख्या आवे उसको अनंतानंत का एक मध्य भेद कहते है।

उत्कृष्ट अनंतानंत—अनंतानत के एक मध्य भेद की जितनी सख्या है उसमे सिद्धराशि, निगोदराशि, वनस्पतिकायराशि, पुद्गल राशि, तीन काल के समय और अलोकाकाश के प्रदेश जोडने मे जितनी सख्या. हो उसका "अयवारगुणनविधिगणित" करने से जो संख्या आवे उसमे धर्म और अधर्म द्रव्य सम्बन्धी अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेद (अंश) जोड़ने से जितनी सख्या हो उसका "अयवार गुणन विधि गणित करने से जो संख्या आवे उसमे केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद (अंश) जोड़ने पर जो सख्या आवे उसको उत्कृष्ट अनतानंत कहते है।

इस प्रकार सख्या के मुख्य भेद तीन है—सख्यात, असख्यात और

अनत । असंख्यात के तीन भेद है–परीतासख्यात, युक्तासख्यात और असख्यातासख्यात। अनत के तीन भेद हैं–परीतानत, युक्तानंत और अनतानत। ये छ. और सख्या मिल कर सात भेद हुए। इनमे जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेदसे संख्यात के २१ भेद होते है।

आवली—जिस काल मे जघन्ययुक्तासख्यात बराबर समय हों उसको एक आवली कहते है।

सिद्ध राशि—जघन्ययुक्तानत बराबर सिद्ध राशि है।

उत्सेधांगुल—अनतानंतपरमाणुओं का एक अवसन्नासन्न, ८ अवसन्नासन्नो का एक सन्नसन्न, ८ सन्नासन्नो का एक तुटरेणु, ८ तुटरेणुओ का एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुओ का एक रथरेणु, ८रथ-रेणुओ का एक उत्तमभोगभूमि के तत्काल जन्मे मेमने के वाल की नोक, ८ उत्तमभोगभूमि के तत्काल जन्मे मेमने के वालो की नोक का एक मध्यम भोगभूमि के तत्काल जन्मे मेमने के वाल की नोक, ८ मध्यम भोगभूमि के तत्कालजन्मे मेमने के वालो की नोक का एक जघन्य भोग भूमि के तत्तकाल जन्मे मेमने के वाल की नोक, ८ जघन्य भोगभूमि के तत्काल जन्मे मेमने के वालो की नोक का एक कर्म भूमि के तत्काल जन्मे मेमते के वाल की नोक, ८ कर्म भूमि के तत्काल जन्मे मेमने के वालों की नोक की एक लीख, ८ लीख की एक सरसो, ८ सरसो की एक जौ, ८ जौ की चौडाई का एक उत्सेधांगुल होता है जोकि प्रमाणागुल के ५०० वे भाग बरावर है।

आत्मांगुल–उत्सेधागुल और प्रमाणागुल के मध्य में जितने अगुल हैं वे सव आत्मांगुल कहलाते है।

प्रमाणांगुल—पाँचसौ धनुष की काया वाले के हाथ की अँगुली के एक अगुल को एक प्रमाणांगुल कहते है।

सूच्यांगुल—प्रमाणागुल की लवाई मात्र को सूच्यागुल (चौडागुल) कहते है। जितनी अद्धापल्य के अर्धच्छेदो की सख्या है उतनी जगह

अद्धापल्य रख कर परस्पर गुणा करने से जो सख्या आवे उतने उस सूच्यांगुल मे प्रदेश होते है।

घनांगुल—सूच्यागुल के घन को घनाँगुल कहते है।

प्रतरांगुल—सूच्यागुल के वर्ग को प्रतरांगुल (वर्गागुल) कहते है।

लघुयोजन—छ उत्सेधागुल की चौडाई का एक पाद की चौडाई, दो पाद की चौडाईका एक विलस्त, दो विलस्त का एक हाथ, चार हाथ का एक धनुप, २००० धनुप का एक कोस, और चार कोस का एक लघु योजन होता है।

महायोजन—उत्सेधागुल की नाप से २००० कोस का एक योजन होता है और प्रमाणागुल की नाप से ४ कोस का ही एक महायोजन होता है।

राजू—जगत्श्रेणी का सातवा भाग राजू कहलाता है।

जगत्श्रेणी—पल्य की अर्धच्छेद राशि के असंख्यातवे भाग की जितनी सख्या है उतनी जगह एक घनागुल के प्रदेशो की सख्या रख कर परस्पर गुणा करने से जो सख्या आवे उतने प्रदेशो को जगत्श्रेणी कहते हैं।

जगत्प्रतर—जगत्श्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर कहते है।

लोक—जगत्श्रेणी के घन को लोक कहते हैं।

वर्ष—जघन्ययुक्तासख्यात वरावर समयो की एक आवली, संख्यातआवली का एक श्वासोश्वास, सात श्वासोश्वास का एक स्तोक, सात स्तोक का एक लव, साढे अडतालीस लव की एक घडी, दो घडी का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त का एक रात दिन, ३० रात दिन का १ मास, दो मास की एक ऋतु, ३ ऋतु का एक अयन, और दो अयन का एक वर्प होता है।

व्यवहारपल्य—कल्पना करिये कि एक कुड मे ४१३४५२ ६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००

रोम रक्खे है इन को सौ सौ वर्ष के पश्चात् एक एक रोम निकालने से जितना काल व्यतीत होता है। उतने काल को व्यवहार पल्य कहते है।

उद्धारपल्य---व्यवहारपल्य के जितने काल है उनको असख्यात कोटि वर्ष के समयो से गुणा करने से जितनी सख्या आवे उतने काल को उद्धार पल्य कहते है।

अद्धापल्य---उद्धार पल्य का जितना काल है उसको असंख्यात वर्ष के समयो मे गुणा करने से जितनी काल की सख्या आवे उसको अद्धा पल्य कहते है। कर्मो की स्थिति का वर्णन इस पल्य से किया गया है।

द्वीपसमुद्र की संख्या---उद्धार पल्य के समयो को २५ कोडा-कोडी की सखया मे गुणा करने से जो सख्या आवे उतने सब द्वीप और समुद्र है।

कोटाकोटी---एक कोटि के वर्ग को कोटाकोटी कहते है।

सागर---पल्य को दश कोटाकोटी से गुणा करने पर जो सख्या आवे उसको सागर कहते है जिस पल्य से गुणा किया जावेगा उसी पल्य के नाम वाले सागर की सख्या आवेगी।

अर्धच्छेदराशि---किसी राशि को जितनी वार आधा-आधा करते करते अतमे शेष एक रहे उतनी वार को अर्धच्छेद राशि कहते है, जैसे चार का अर्धच्छेद राशि २ है, आठ का अर्धच्छेद राशि ३ है इत्यादि।

कल्पकाल---वीस कोटाकोटी सागर का एक कल्पकाल होता है।

शुद्धि-पत्र

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
रनण	रयण	१	६
उपग्रोगोवि	उवग्रोगोवि	२	२
योग	जोग	२	१२
उपग्रोगोवि	उवग्रोगोवी	२	२३
होता है	होते हैं	५	१८-२१
मणिदा	भणिदा	६	१२
मणिय	भणिय	६	२५
एयतं	एयत	८	१
मिथ्यदृष्टी	मिथ्यादृष्टि	८	२१
दादो	यादो	९	५
सम्मतो	सम्मत्तो	९	१५
मिच्छा	मिच्छ	९	२३
कारिदु	कारिद	१०	८
गुण	गुड	१०	१०
सयम	संजम	१०	१६
गाठं	गाढ	११	१३
त्रस	तस	१३	२२
छट्टा	पचम	१३	२०
कपाया	कसाया	१४	७
चित	चित्त	१४	१६
मढमक्खो	पढमक्खो	१७	५
विभक्ते	विभत्ते	१८	१५

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
चोर	चार	१८	२२
बीस दुगुण	अडतालीस	२०	२३
अन्तो	अत	२६	१
ऋतु	ऋतु	२६	१६
क्षीण	खीण	३०	४
दणस	दसण	३०	१३
सयोगि	सजोगि	३०	१४
होति	होदि	३१	८
तव्विरीया	तव्विवरीया	३१	१८
समू	समु	४३	१०
तिणिण	तिण्णि	४४	१२
घप्प	छप्प	५२	८
२६	२२	५२	१८
खउव	उव	५६	६
संण्णा	सण्णा	६१	५
कम	कर्म	६१	१४
मिस्सपर	मिस्सनर	६४	५
भविदिय	भाविंदिय	७४	२
देइ	देह	७४	४
डदस्र	डदस	७५	३
खुरघ	खुरप्प	७६	२६
सूक्ष्म	सूक्षम	७७	२१
उदया	उदय	८१	१५
एयट्ठी	एयट्ठो	१०३	१२
तेजा	तेजण	१०८	१५
प्रवद्धो	पबद्धो	१०६	२

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
प्रवद्धा	पवद्धा	१०९	८
गणा	गुणा	११०	१८
भूगण	भूगएग	१३१	१
भव	मव	१४४	११
णायव्व	णायव्वा	१५३	२२
यात्रक	याजक	१६१	११
वेंत्ति	वेत्ति	१६४	११
विरदस्य	विरदस्स	१६५	२३
मज्जिम	मज्झिम	१६७	१
सूटमागुल	व्यवहारागुल	१६८	८
घुव	घुव	१७१	६
असख्य	असख	१७२	९
ध्रुवहारं	घुवहार	१७३	१७
अपर	अवर	१७४	६
हु	हु	१७६	१६
काल	काल का	१८४	२१
परसा	परमा	१९२	१९
प्रवद्ध	पवद्ध	१९९	२४
विविस्सो	विवस्ससो	१९९	२४
भागय	भावगयं	२०२	२२
सजय	सजम	२०५	२२
प्रममा	प्रथमा	२३१	१०
दग	ग्यारह	२७९	२२

जहां २ सूक्ष्मांगुल आया है वहां २ सूच्यांगुल (चौडागुल) समझना चाहिये।

दातार

२०१) पं० ज्ञानचन्द्र जी जैन वैद्य (A क्लास) इटावा
२००) श्री दि० जैन समाज पन्ना
१२१) बाबू ओंकारप्रसाद जी जैन पेपर मर्चेन्ट मुरादाबाद
१०१) ला० शांतिस्वरूप धर्मस्वरूप जी जैन कोठी वाले मुरादाबाद
१०१) ला० गोपीराम महावीर प्रसाद जी जैन नया बांस देहली
सार्थ तत्त्वार्थ सूत्र में जो गोविन्दराम महावीरप्रसादजी के नाम से ५१) रु० छपे हैं वे भी आप ने ही दिये थे।
१०१) ला० गुलशनराय जी जैन नई मंडी मुजफ्फरनगर
१०१) धनवती बाई ध० प० स्व० सेठ ज्ञान चन्द्रजी जैन इटावा
१०१) सि० गनेशीलाल महेन्द्रकुमार जी जैन वडवारा पन्ना
१०१) सेठ हेमचन्द्र नेमिचन्द्र जी जैन रीवा वाले सतना
१०१) रायसाहब चतुरचन्द्र कुमार जी जैन महाजन टोली आरा
७५) ला० नेमकुमार जी जैन आरा
५१) श्री दि० जैनसमाज रानीपुर झांसी
५१) सौ० ज्ञानमालादेवी ध०प० प्रेमचन्द्र प्रेम बीड़ी वाले सतना
५१) पृथ्वीलाल अशोककुमार जी जैन कासीपुरा बनारस
५१) सौ० नगीनादेवी ध० प० सौभाग्यमल जी जैन राजा-दरवाजा बनारस
५१) सौ० सिलोचनादेवी ध० प० सागरमल जी जैन एयर आसाम ८१ बी लोअर चीतपुर रोड कलकत्ता

५१) मुन्सीलाल जी जैन इटावा

५१) ध० प० रँगलाल जी जैन पंसारी इटावा

३१) सौ० चांदतारादेवी ध० प० रघूमल जी जैन झांसी

२५) मूलचन्द्र जैन विजयनगर कामरूप आसाम

२५) मातेश्री से० ऋषभदास जी जैन सतना

२५) सेठ हुक्मचन्द्र जी जैन रीवा

२५) संतोषकुमार उदयकुमार जी जैन वकील जेलरोड आरा।

२५) ध० प० डालचन्द्र जी जैन गुनोर पना।

२५) ध० प० मूलचन्द्र जी जैन देवेन्द्रनगर पना

२५) ध० प० गुलजारीलाल जी जैन देवेन्द्रनगर पंना।

२५) चम्पामणि बाई ध० प० स्व०भानुकुमार जी जैन आरा

२५) धन्नूबाई ध० प० स्व० बाबू राजकुमार जी जैन आरा

२५) ला० विजयकुमार जी जैन ट्रष्टी मूललाल ट्रष्ट आरा

२५) मातेश्री ला० वीरकुमार जी जैन आरा

२१) स्त्री समाज रीवा २५) जैन समाज झांसी

२१) डालचन्द्र परमानंद जी जैन सकरार झांसी

२१) मोतीलाल नेमीचन्द्र जी जैन सकरार झांसी

२१) ध० प० बा० हीरालाल जी जैन सरिया हजारीबाग

१५) फुटकर देवेन्द्र नगर पंना

११) जिनेश्वरदासजी जैन रीवा ११) मिट्टू लालजी जैन रीवा

११) पंनालाल जी जैन रीवा ११) स्वरूपचन्द्र जी जैन रीवा

११) दरबारीलाल फूलचन्द्र जी जैन रीवा
११) सेतूलाल जी जैन देवेन्द्रनगर पना
११) सि० लल्लूलाल जयकुमार जी जैन देवन्द्रनगर पंना
११) दशरथलाल जी जैन देवेन्द्रनगर पंना
११) गोरेलाल गुलाबचन्द्र जी जैन देवेन्द्रनगर पंना
११) सुन्दरलाल दुलीचन्द्र जी जैन देवेन्द्रनगर पना
११) दीपचन्द्र सोमचन्द्र जी जैन देवेन्द्रनगर पंना
११) बाबू पुत्तीलाल जी जैन आरा
११) बाबू दयालचन्द्र जी जैन आरा
११) केशरबाई ध० प० स्व० महादेवप्रसाद जी जैन आरा
११) सौ० सरस्वती देवी ध० प० सनमतकुमारजी जैन आरा
११) घुरकेलाल गनपतलाल जैन सकरार झांसी
११) ध० प० चिरंजीलाल जी जैन नलबाड़ी आसाम
११) सौ० भगवानदेवी ध० प० बाबूलाल जी बनारस
११) बाबू नेमीचन्द्र फूलचंद जी जैन शामली मेरठ
१०) मन्नूलाल जी जैन देवेन्द्रनगर पंना
१०) बानूमल हंसराज जी जैन आबूपुरा मुजफ्फरनगर
१०) बा० विनयकुमार जी ५) बा० गोपाल चन्द्र जी ५) आरा
९) राउरानी सतना

२३३९)

नोट—जिन ग्रन्थो के अंदर दातार पत्र नही है वे सब ग्रन्थ, मूल्य आय से छपे हैं।

श्री वीतरागाय नमः

श्री मन्नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक चक्रवर्ति विरचित

श्री महामुनि क्षीर सागर प्रणीत

गोमटसार-जीवकांड

मैं पद वन्दों, नेमि के, तजकर चित्त विकार।
जीव कांड दोहा अरथ, लिखूँ स्व पर हित धार॥

मंगलाचरण

सिद्धं शुद्धं पणमिय जिणिंदवरनेमचन्दमकलंकं।
गुणरमणभूपणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं॥१॥

सिद्ध शुद्ध अरु जिनवरा, नेमचन्द्र अकलंक।
गुणमणि भूषण उदय नमि, कहूँ जीव थल अंक॥१॥

अर्थ—जो घातिया और अघातिया कर्मों को नाश कर भाव और द्रव्य से शुद्ध हो गये है ऐसे श्री सिद्ध भगवान को और जो घातिया कर्मों को नाश कर भाव से शुद्ध (अकलक) हो गये है और जिन्हो के अनत चतुष्टय गुण रूपी आभूपणो का उदय हो गया है ऐसे श्री नेमिचन्द्र भगवान को नमस्कार कर श्री गोमटसार जीवकाड ग्रन्थ को लिखता हूँ॥१॥

आगे जीव के बीस स्थान दिखाते है।

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णाय मग्गणाओ य।
उपओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा ॥२॥

गुण जीवा पर्याप्ति अरु, मारगणा अरु प्राण।
संज्ञा अरु उपयोग मिल, बीस थान सब जान ॥२॥

अर्थ—गुणस्थान १४ जीवसमास १४ पर्याप्ति ६ प्राण १० सज्ञा ४ मार्गणा १४ (गति ४ इन्द्रिया ५ काय ६ योग १५ वेद ३ कषाय ४ ज्ञान ८ सयम ७ दर्शन ४ लेश्या ६ भव्यत्व २ सम्यक्त्व ६ सैनी २ आहार २) और उपयोग ये बीस अधिकार है इनसे जीव के स्वरूप की पहिचान होती है ॥२॥

आगे श्री जिनेन्द्र का उपदेश सामान्य और विशेप रूप दिखाते हैं।

संखेओ ओघोत्ति य गुणसण्णा सा च मोह योग भवा।
वित्थारादेसोत्ति य मग्गणसण्णा सकम्मभवा ॥३॥

गुणस्थान सामान्य वच, मोह योग से होय।
मारगणा विस्तार वच, उपजे स्वकर्म जोय ॥३॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान का उपदेश दो प्रकार का है सामान्य और विशेष। सामान्य उपदेश १४ गुणस्थान रूप है वे गुणस्थान मोह और योग से होते है और विशेष उपदेश १४ मार्गणारूप है वे मार्गणाये अपने अपने कर्म के उदय से होती है जैसे गति कर्म के उदय से गति मार्गणा होती है इत्यादि ॥३॥

आगे वीस स्थानो को दो स्थानो मे गर्भित दिखाते है।

आदेसे संलीणा जीवा पज्जत्तिपाणसण्णाओ।
उपओगोवि य भेदे वीसं तु परूवणा भणिदा ॥४॥

मारगणा में मिल सकें, जीव प्राण उपयोग।
संज्ञा अरु पर्याप्त युत, बीस भेद का योग ॥४॥

अर्थ—जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा और उपयोग ये पाच स्थान १४ मार्गणाओ मे मिल सकते है फिर एक गुणस्थान और दूसरा मार्गणास्थान ही रह जाता है अर्थात् बीस स्थान के मुख्य दो स्थान रह जाते है ॥४॥

आगे मार्गणाओं मे गर्भित मार्गणा दिखाते है।

इंदियकाये लीणा जीवा पज्जत्तिआणभासमणो।
जोगे काओ णाणे अक्खा गदिमग्गणे आऊ ॥५॥

इन्द्रिय तन में वचन मन, श्वांस पूर्ण जीवान।
ज्ञानहिं इन्द्रिय योगतन, गति में आयू प्राण ॥५॥

अर्थ—इन्द्रिय और काय मार्गणा मे जीवसमास, पर्याप्त, श्वासोश्वास, भाषा और मनोवल का समावेश हो सकता है ज्ञान मार्गणा मे इन्द्रियो का समावेश हो सकता है योगमार्गणा मे काय का समावेश हो सकता है और गतिमार्गणा मे आयु और प्राण का समावेश हो सकता है किन्तु विषय जटिल बन जावेगा ॥५॥

आगे सज्ञाओ का अन्तर्भाव दिखाते है।

मायालोहे रदिपुव्वाहारं कोहमाणगह्मि भयं।
वेदे मेहुणसण्णा लोहह्मि परिग्गहे सण्णा ॥६॥

मायालोभहि अशन अरु, क्रोध मद हिं भय जान।
वेद विषें मैथुन मिले, लोभ परिग्रह मान ॥६॥

अर्थ—माया और लोभ कषाय मार्गणा मे आहार सज्ञा का समावेश हो सकता है क्रोध और मानकषाय मार्गणा मे भय सज्ञा का

समावेश हो सकता है वेद मार्गणा मे मैथुन सज्ञा का समावेश हो सकता है और लोभ कषाय मार्गणा मे परिग्रह सज्ञा का समावेश हो सकता है किन्तु विषय जटिल बन जायगा ॥६॥

आगे उपयोग का अन्तर्भाव दिखाते है।

सागारो उवजोगो णाणे मग्गह्मि दंसणे मग्गे।
अणगारो उवजोगो लीणोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥७॥

साधारण उपयोग को, दर्श मार्गणा मान।
अरु विशेष को ज्ञान मग, गर्भित निज निज जान ॥७॥

अर्थ—उपयोग दो प्रकार का होता है सामान्य और विशेष। सामान्य उपयोग उसको कहते है जिसमे भेद रहित वस्तु का ज्ञान होता है। इसका कथन दर्शन मर्गणा मे किया जावेगा और विशेष उपयोग उसको कहते है जिसमे भेद और प्रभेद सहित वस्तु का ज्ञान होता है। इसका कथन ज्ञान मार्गणा मे किया जावेगा ॥७॥

आगे गुणस्थानो मे ठहरे हुये जीवो का स्वरूप दिखाते है।

जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥८॥

उदय मिश्र उपशम क्षय हि, होवे जैसे भाव।
गुणस्थान वह जीव के, कहें जिनेश्वर राव ॥८॥

अर्थ—जीवो के दर्शन और चारित्र मोह कर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम से जैसे भाव होते है उन भावो से सहित उस गुणस्थान वाला वह जीव कहलाता है और उन भावो को गुणस्थान कहते है ॥८॥

आगे १४ गुणस्थानो के नाम दिखाते है।

मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदो पमत्त इदरो अपुव्व अणियट्ट सुहमो य ।।९।।
उवसंत खीणमोहो सजोगकेवलिजिणो अजोगी य ।
चउदस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा ।।१०।।

मिथ्यातम सासादना, मिश्र रु, अविरत देश ।
प्रमता-प्रमत अपूर्व अरु, अनि-वृति सूक्षम भेष ।।९।।
उपशांता अरु क्षीण गुण, और सयोग अयोग ।
गुणस्थान चौदह कहे, सिद्ध परें विन योग ।।१०।।

अर्थ—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत, देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसापराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोग और अयोग ये चौदह गुणस्थान के नाम है इनमे रहित सिद्ध भगवान हैं ।।९-१०।।

आगे आदि के चार गुणस्थानो के भाव दिखाते है ।

मिच्छे खलु ओदइओ विदिये पुण पारणामिओ भावो ।
मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्महि तिण्णेव ।।११।।

मिथ्यातहिं औदायिका, सासा में निज चीन ।
मिश्र भाव है मिश्र में, चौथे गुण थल तीन ।।११।।

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान मे औदायिक भाव होता है, सासादन गुणस्थान मे पारिणामिक भाव होता है, मिश्र गुणस्थान मे मिश्र भाव होता है और अविरत गुणस्थान मे उपशम, क्षायिक और मिश्र भाव होता है ।।११।।

उपशम —जो कर्म के दब जाने से भाव होता है उसको उपशम भाव कहते है ।

क्षायिक–जो कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर भाव होता है उसको क्षायिक भाव कहते है ।

मिश्र–जो सर्व घातिया कर्म का वर्तमान में उदय क्षय होने पर होता है आगामी आने वाले सर्व घातिया कर्म का उपशम होने पर होता है और देश घातिया कर्म का उदय होने पर भाव होता है उसको मिश्र भाव अथवा क्षयोपशम भाव कहते है ।

औदायिक—जो कर्म के उदय से भाव होता है उसको औदायिक भाव कहते हैं ।

पारिणामिक—जो आत्मा के स्वभाव से भाव उत्पन्न होता है उसको पारिणामिक भाव कहते है ।

आगे उपरोक्त भावो का दृष्टिकोण दिखाते है ।

एदे भावा णियमा दंसणमोह पडुच्च भणिदा हु ।
चारित्तं णत्थि जदो अविरदअन्तेसु ठाणेसु ॥१२॥

दर्श मोह की दृष्टि से, ये सब भाव बखान ।
इनमें चारित है नहीं, अविरत तक पहिचान ॥१२॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान मे जो औदायिक भाव कहा है वह केवल दर्शन मोह के उदय से कहा है, सासादन गुणस्थान में जो पारिणामिक भाव कहा है, वह केवल दर्शन मोह के अनुदय से कहा है, मिश्रगुणस्थान मे जो मिश्रभाव कहा है वह केवल मिश्रप्रकृति के उदय से कहा है और अविरतगुणस्थान जो तीन भाव कहे है वे केवल ७ प्रकृति के उपशम, क्षय और क्षयोपशम होने से कहे है किन्तु यथा-सभव और भी भाव होते है ॥१२॥

आगे देश विरत से अप्रमत्त गुणस्थानतक के भाव दिखाते हैं ।

देशविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु ।
सो खलु चरित्तमोहं पडुच्च भणियं तहा उवरिं ॥१३॥

देश प्रमत्ता-प्रमत में, मिश्र भाव पहिचान ।
चरण मोह की दृष्टि रख, इनमें भाव बखान ॥१३॥

अर्थ—देशविरत, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान मे चारित्र मोह के उदय से क्षयोपशम भाव कहा है ॥१३॥

आगे शेष गुणस्थानो के भाव दिखाते है ।

तत्तो उवरि उवसमभावो उवसामगेसु खवगेसु ।
खइओ भावो णियमा अजोगिचरिमोत्ति सिद्धे य ॥१४॥

उपशम श्रेणी के विषें, होवे उपशम भाव ।
क्षायिक श्रेणी सर्व अरु, शिव तक क्षायिक भाव॥१४॥

अर्थ—उपशम श्रेणी के चारो (अपूर्व अनिवृत्ति सूक्ष्म उपशात) गुणस्थानो मे उपशम भाव होता है और क्षायिक श्रेणी के चारो (अपूर्व अनिवृत्ति सूक्ष्म क्षीण) गुणस्थानो मे और मोक्ष तक क्षायिक भाव होता है ॥१४॥

आगे प्रथम गुणस्थान के भाव और भेद दिखाते है ।

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहण तु तच्चअत्थाणं ।
एयंतं विवरीयं विणयं संसयिदमण्णाणं ॥१५॥

मिथ्यातम के उदय से, असत तत्त्व श्रद्धान ।
संशय एकान्ता विनय, विपरीता अज्ञान ॥१५॥

अर्थ—जो जीवो के मिथ्यात्व के उदय से तत्त्वो का विपरीत श्रद्धान होता है उसको मिथ्यात्व कहते है वह पाच प्रकार का होता है विपरीत, एकान्त, संशय, विनय और अज्ञान ॥१५॥

आगे दृष्टान्त से ५ मिथ्यातो का स्वरूप दिखाते है ।

एयतं बुद्धदरसी विवरीओ ब्रह्म तावसो विणओ।
इंदो विय ससइयो मक्कडियो चेव अण्णाणी ॥१६॥

श्वेताम्बर संशय विनय, तापस इक हठ ठान।
बौद्ध ब्रह्म विपरीत अरु, मस्कर मत अज्ञान ॥१६॥

अर्थ—जो यज्ञ मे धर्म मानते है ऐसे ब्राह्मणादि विपरीत मिथ्यादृष्टि है। जो पदार्थो को क्षणक मानते है ऐसे बौद्धादि एकान्त मिथ्यादृष्टि है। जो तर्क बुद्धि न लगाकर कल्पित सूत्रो को गणधर रचित मानते है ऐसे श्वेताम्बरादि सशय मिथ्यादृष्टि है। जो सब पदार्थो मे भगवान मानने वाले ऐसे तापसी विनय मिथ्यादृष्टि है और हेयाहेय से सून्य ऐसे मष्करी अज्ञान मिथ्यादृष्टि है ॥१६॥

आगे मिथ्यात्व का स्वरूप दूसरी रीति से दिखाते है।

मिच्छतं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।
ण य धम्म रोचेदि हु महुर खु रस जहा जरिदो ॥१७॥

जो बेदे मिथ्यात्व को, करता रुचि विपरीत।
धर्म न रुचता उस तरह, रस मीठा ज्वर पीत ॥१७॥

अर्थ—जैसे पित्त ज्वर वाला मीठे रस को इष्ट नही करता तैसे मिथ्यात्व को अनुभवता पुरुष जिनेन्द्र के धर्म को इष्ट नही करता।१७।

आगे मिथ्यादृष्टि के बाह्य चिन्ह दिखाते है।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१८॥

मिथ्यदृष्टी जीव को, रुचे न सत उपदेश।
सत उलटा रुचता उसे, जो भाषा पर भेष ॥१८॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव जैन धर्म धारियो के सत उपदेश पर श्रद्धान

नही करना अपितु जैन धर्म से अतिरिक्त धर्म धारियो के उपदेश पर श्रद्धान करता है ॥१८॥

आगे सासादन गुणस्थान का स्वरूप दिखाते है।

आदिमसम्मत्तद्धा समयादो छावलित्ति वा सेसे।
अणअण्णदरुदयादो णासियसम्मोत्ति सासणक्खो सो ।१९।

इक क्षण या छै आवली, बचे जु उपशम काल।
नादि बंधनी उदय हो, सो सासा गुण डाल ॥१९॥

अर्थ—जिसके जब उपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त्तकाल मे से जघन्य एक समय अथवा उत्कृष्ट छै आवली काल शेष रह जाता है उसके तब अनतानुबधी क्रोधादि मे से किसी एक का उदय हो जाता है जिससे उसके सम्यक्त्व का नाश होकर अतत्व श्रद्धान हो जाता है उसके उस परिणाम को सासादन गुणस्थान कहते है ॥१९॥

आगे दृष्टान्त से सासादन का स्वरूप दिखाते है।

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमभि मुहो।
णासियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥२०॥

समकित गिर की शिखर से, मिथ्या भू सन्मुक्ख।
नाश करे सम्यक्त्व गुण, सो सासादन मुक्ख ॥२०॥

अर्थ—जो सम्यक्त्व रूपी रत्नपर्वत से गिरकर मिथ्यात्व रूपी भूमि के सन्मुख हो गया है और सम्यक्त्व गुण जिसके साथ नही है उस बीच की अवस्था वाले के सासादन गुणस्थान होता है ॥२०॥

आगे मिश्र गुणस्थान का स्वरूप दिखाते है।

सम्मामिच्छुदयेण य जत्तंतरसव्वघादिकज्जेण।
णय सम्मं मिच्छं पि य सम्मिस्सो होदि परिणामो ।२१।

मिश्र उदय घाती सरव, इसका अद्भुत कार्य।
नहिं समकित मिथ्यात्व नहिं, मिश्र भाव वच आर्य।२१।

अर्थ–मिश्र प्रकृति सर्वघाती प्रकृति है इसका कार्य अन्य घातिया प्रकृतियो से विलक्षण है। इस कारण इसके उदय से जीव के भाव सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व रूप न होकर मिले हुये होते है उन भावों को मिश्र गुणस्थान कहते है ॥२१॥

आगे दृष्टान्त से मिश्र भाव का स्वरूप दिखाते है।

दहिगुडमिव वामिस्स पुहभावं णेव कारिदु सक्कं।
एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छोत्तिणादव्वो ॥२२॥

दधि गुण मिलकर जिस तरह, एक स्वाद के राव।
मिश्र भाव में उसतरह, समकित मिथ्या भाव ॥२२॥

अर्थ— जैसे दही और गुड मिल कर जव एक रूप हो जाता है तव खट्टे और मीठे का एक स्वाद आता है तैसे मिश्र भाव मे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप भाव एक काल मे होते है ॥२२॥

आगे मिश्र गुणस्थान की और भी विशेपता दिखाते है।

सो संयमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण वंधदे आउं।
सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥२३॥

होय न संयम देश व्रत, आयू बंध न कोय।
मरण होय तो नियम से, भ्रम या समकित होय ॥२३॥

अर्थ—इस मिश्र गुणस्थान मे महाव्रत नही होता, देशव्रत नहीं होता और किसी आयु का वध नही होता यदि मरण होवे तो मिथ्यात्व अथवा सम्यक्त्व मे से कोई एक भाव को ग्रहण करके ही होता है ॥२३॥

आगे उसी आशय को स्पष्ट दिखाते है।

सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं ।
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥२४॥

आयु बँधी पूरब यथा, समकित मिथ्या जात ।
तथा मरण हो परि नहीं, मरणांतिक समुघात ॥२४॥

अर्थ—मिश्र गुणस्थान वाले जीव ने मिश्र गुणस्थान के उदय के पूर्व सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व के भावो से जैसी आयु का वध किया है तैसे ही सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व रूप भाव होने पर ही मरण होता है किन्तु इस मिश्र गुणस्थान मे मरणातिकसमुदघात और मरण नही होता ॥२४॥

आगे वेदक सम्यक्दर्शन का स्वरूप दिखाते है।

सम्मत्तदेशघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं ।
चलमलिनमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥२५॥

देशघाति समकित उदय, वेदक समकित मान ।
चलमल अगाढ़ नित्य है, हेतु कर्म क्षय जान ॥२५॥

अर्थ—जो सम्यक् प्रकृति मोह के उदय (अनतानुवधी ४ मिथ्यात्व और मिश्रप्रकृति के आगामी निषेको का सदवस्था रूप उपशम और वर्तमान निषेको की विना फल दिया निर्जरा) से जीव के भाव होते है उन भावो को वेदक सम्यक्दर्शन कहते है वह चलायमान है, मलिनता लिये हुये है और दृढता रहित है फिर भी नित्य है अर्थात् उपशम की तरह सीमित नही है जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट ६६ सागर तक रहता है और कर्म की निर्जरा का कारण है ॥२५॥

आगे उपशम और क्षायिक का स्वरूप दिखाते है।

सत्तण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य ।
विदियकसायुदयादो असंजदो होदि सम्मो य ॥२६॥

क्षायिक सातो क्षय भये, उपशम उपशम मान।
संयम नहिं दुतिया उदय, अविरत दृष्टी जान ॥२६॥

अर्थ—दर्शन मोह की (मिथ्यात्व, सम्यकत्व, मिश्र) तीन और चारित्र मोह की (अनतानुवधीक्रोधादि) चार प्रकृतियो के उपशम से उपशमसम्यक्त्व और क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है किन्तु इस गुणस्थान मे अप्रत्याख्यान कपाय के उदय होने से व्यवहार चारित्र नही होना इस कारण इस गुणस्थान वाले को अविरत सम्यक्दृष्टि कहते है ॥२६॥

आगे इस गुणस्थान की कुछ विशेपता दिखाते है।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥

सम्यक्दृष्टी करत है, गुरु आज्ञा से प्रीत।
किन्तु कभी अज्ञान वश, करता रुचि विपरीत ॥२७॥

अर्थ—सम्यक्दृष्टि जीव आचार्य प्रणीत प्रवचनो पर श्रद्धान करता है किन्तु कभी अप्रत्याख्यान कपाय के तीव्र उदय जनित अज्ञान भाव से वह उस प्रवचन से विपरीत श्रद्धान भी कर लेता है जो कि सम्यक्दर्शन मे वाधक नही होता जैसे रामचन्द्र जी का मृतक लक्ष्मण जी पर जीवित का श्रद्धान ॥२७॥

आगे समझाने पर न समझे उसे मिथ्यादृष्टि दिखाते है।

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥२८॥

गुरु समझावे सूत्र रख, रुचे न सत श्रद्धान।
मिथ्यात्वी वह जीव है, उस ही क्षण से जान ॥२८॥

अर्थ—जो जीव आगम के प्रमाण रखकर आचार्यादि के द्वारा समझने पर भी विपरीत श्रद्धान को छोडकर सत् श्रद्धान नही करता वह उस काल से मिथ्यादृष्टि कहा जाता है ॥२८॥

आगे अविरतसम्यक्‌दृष्टि की विशेषता दिखाते है।

णो इंदियेसु विरदो णो जीवे थावरे तसे वापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥२९॥

विरत न सत इन्द्रिय विषय, त्रस थावर हिंसाय।
परि लावे रुचि जिन वचन, अविरत दृष्टी थाय ॥२९॥

अर्थ—जो भोगने योग्य पांच इन्द्रियों के विषय भोगो मे विरक्त नही है त्रस और स्थावर जीवो की विरोधी आदि हिंसामे विरक्त नही है किन्तु जिनेन्द्र के कहे हुये प्रवचन पर श्रद्धान रखता है उस-को अविरतसम्यक्‌दृष्टि कहते है ॥२९॥

आगे देशविरत गुणस्थान का स्वरूप दिखाते हैं।

पच्चक्खाणुदयादो संजमभावो ण होदि णवरिं तु।
थोववदो होदि तदो देसवदो होदि पंचमओ ॥३०॥

प्रत्याख्यान के उदय से, संयम पूर्ण न होय।
थोड़े व्रत से देश व्रत, पंचम गुण थल वोय ॥३०॥

अर्थ—प्रत्याख्यान कषाय के उदय से महाव्रत तो होता नही किन्तु अप्रत्याख्यानकषाय के उदय न होने से देशव्रत होता है। इस कारण इस गुणस्थान को देशविरत नाम का छट्ठा गुणस्थान कहते है।३०।

आगे उसी आशय को और दिखाते है।

जो तसवहाउविरदो अविरदओ तहय थावरवहादो।
एक्कसमयम्हि जीवो विरदाविरदो जिणेक्कमई ॥३१॥

बादर त्रस हिंसा विरत, थावर विरत न मान।
एक समय उस जीव के, विरताविरत पिछान ॥३१॥

अर्थ—जो त्रस जीवो की हिसा (विरोधी) से विरक्त है और स्थावर जीवो की हिसा (उद्योगी आरभी) से विरक्त नही है उस जीव के एक काल मे विरताविरत भाव होते है ॥३१॥

आगे प्रमत्त गुणस्थान का स्वरूप दिखाते है।

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा।
मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ॥३२॥

नो कषाय संज्वलन के, उदय महा व्रत होय।
मल उपजे परमाद से, प्रमत विरत है सोय ॥३२॥

अर्थ—केवल सज्वलनकषाय और नोकषाय के उदय से महाव्रत होता है किन्तु उसमे प्रमाद से कुछ दोष होते है इसकारण ऐसे परिणाम को प्रमत्तविरत नाम का छट्टा गुणस्थान कहते है ॥३२॥

आगे उसी आशय को और दिखाते है।

वत्तावत्तपमादे जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।
सयलगुणसीलकलिओ महव्वई चित्तलायरणो ॥३३॥

व्यक्ताव्यक्त प्रमाद के, रहत प्रमत व्रत होय।
पूर्ण मूल गुण सहित भी, यह चितकबरा वोय ॥३३॥

अर्थ—यह महाव्रत २८ मूल गुण सहित होता भी व्यक्त और अव्यक्त प्रमाद के रहने से चित कबरा कहलाता है ॥३३॥

आगे प्रमाद के भेद दिखाते है।

विकहा तहा कसाया इंदियणिद्दा तहेव पणयोय।
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरस ॥३४॥

विकथा चार कषाय चउ, पन इन्द्रिय कर याद् ।
निद्रा नेह मिलाय कर, पन्द्रह भेद प्रमाद ॥३४॥

अर्थ–विकथा (स्त्री, भोजन, राज्य, चोर) चार, कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) चार, इन्द्रिय पाच, निद्रा और स्नेह ये पन्द्रह भेद प्रमाद के हैं ॥३४॥

आगे प्रमाद के विशेष प्रकार दिखाते है ।

संखा तह पत्थारो परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं ।
एदे पंच पयारा पमदसमुक्कित्तणे णेया ॥३५॥

संख्या अरु प्रस्तार अरु, परिवर्तन अरु नष्ट ।
अरु उद्दिष्ट प्रकार पन, प्रमाद के स्पष्ट ॥३५॥

अर्थ—सख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और उद्दिष्ट ये पाच भेद प्रमाद के भग निकालने के लिये है ॥३५॥

सख्या–भगो की गणना को सख्या कहते है ।

प्रस्तार–सख्या के क्रम निकालने को प्रस्तार कहते है ।

परिवर्तन—एक भग से दूसरे भग तक पहुँचाने को परिवर्तन कहते हैं ।

नष्ट–सख्या के द्वारा भग निकालने को नष्ट कहते है ।

उद्दिष्ट–भग के द्वारा सख्या निकालने को उद्दिष्ट कहते है ।

आगे सख्या की उत्पत्ति का क्रम दिखाते है ।

सव्वेपिपुव्वभंगा उवरिमभगेसु एक्कमेक्केसु ।
मेलंतित्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा ॥३६॥

पूर्व भंग सब अंत तक, मिले एक से एक ।
क्रम से उनमें गुणा कर, संख्या उतपति नेक ॥३६॥

अर्थ—विकथाचार, कषायचार और इन्द्रिय पाच को परस्पर गुणा करने से प्रमाद के अस्सी भेद होते है निद्रा और स्नेह एक एक है इस कारण इनका गुणा नही होता ।।३६।।

आगे प्रथम प्रस्तार निकालने की विधि दिखाते है।

पढम पमदपमाणं कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च ।
पिंड पडि एक्केक्कं णिक्खित्ते होदि पत्थारो ।।३७।।

विकथा को इक एक रख, रख कषाय चउ चार ।
पिंड तले इन्द्रिय रखें, अस्सी भेद सँमार ।।३७।।

अर्थ—प्रथम विकथाप्रमाद के चारो भेदो को एक एक रख कर फिर उसके ऊपर कषाय प्रमाद के चार चार भेद

४ ४ ४ ४
१ १ १ १

रखने से सोलह प्रमाद के भेद होते है इसके पश्चात् पाच इन्द्रियो को एक एक रख कर उसके ऊपर उपरोक्त सोलह

१६ १६ १६ १६ १६
१ १ १ १ १

भेद रखने से प्रमाद के अस्सी भेद स्पष्ट हो जाते है ।।३७।।

आगे प्रस्तार निकालने की दूसरी विधि दिखाते है।

णिक्खित्तु विदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि विदियमेक्केक्कं ।
पिंडं पडि णिक्खेओ एवं सव्वत्थ कायव्वो ।।३८।।

विकथा के चउ चउ परें, इक इक रखो कषाय ।
पिंड परे इन्द्रिय धरें, अस्सी भेद दिखाय ।।३८।।

अर्थ— प्रथमविकथाप्रमाद के चारो भेदो को चार चार रख कर फिर उसके ऊपर कषाय प्रमाद के चार भेदो को एक एक

१ १ १ १
४ ४ ४ ४

रखकर जोड देने से सौलह प्रमाद के भेद होते है इसके पश्चात् इन

सोलह को पाच जगह रखकर उसके ऊपर इन्द्रिय प्रमाद के पाँच भेदो को एक एक १/१६ १/१६ १/१६ १/१६ १/१६ रखने से प्रमाद के अस्सी भेद स्पष्ट होते है ॥३८॥

आगे दूसरे प्रस्तार की दृष्टि से परिवर्तन को दिखाते है।

मढमक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णिवि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ॥३९॥

प्रथम घूमकर आदि पर, तब द्वुतिया बदलाय।
द्वुतिय घूमकर आदि पर, तब तृतिया बदलाय ॥३६॥

अर्थ—प्रथम विकथा प्रमाद स्त्री आदि के क्रम से कपाय प्रमाद के क्रोध और इन्द्रिय प्रमाद के स्पर्शनइन्द्रिय के साथ घूम कर जब फिर स्त्री आदि पर आता है तब क्रोध के स्थान पर मान और स्पर्शनेन्द्रिय के स्थान पर रसना बदल जाती है जिससे प्रमाद के अस्सी भेद हो जाते है निद्रा और स्नेह प्रत्येक भेद के साथ रहते है ॥३९॥ जैसे स्त्री कथा क्रोध से स्पर्शनइन्द्रिय के वश निद्रालु और स्नेहवान करता है ॥१॥ भोजन कथा क्रोध मे स्पर्शनइन्द्रिय के वश निद्रालु और स्नेहवान करता है ॥२॥ राज्य कथा क्रोध से स्पर्शनेन्द्रिय के वश निद्रालु और स्नेहवान करता है ॥३॥ चोर कथा क्रोध मे स्पर्शनइन्द्रिय के वश निद्रालु और स्नेहवान करता है ॥४॥ स्त्रीकथा मान से स्पर्शन इन्द्रिय के वश निद्रालु और स्नेहवान करता ॥५॥ इत्यादि ॥

आगे प्रथम प्रस्तार की दृष्टि से परिवर्तन दिखाते है।

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णिवि गंतूणंत आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ॥४०॥

तृतिय घूमकर आदि पर, तब द्वुतिया बदलाय।
द्वुतिया बदले आदि पर, तब प्रथमा बदलाय ॥४०॥

अर्थ—तीसरे इन्द्रिय प्रमाद स्पर्शनेन्द्रियादि के क्रम से कषाय प्रमाद के क्रोध और विकथा प्रमाद के स्त्री साथ घूमकर जब फिर स्पर्शनेन्द्रिय पर आता है तब क्रोध के स्थान पर मान और स्त्री कथा के स्थान पर भोजन कथा बदल जाती है जिससे प्रमाद के अस्सी भेद स्पष्ट हो जाते हैं ॥४०॥ जैसे स्पर्शनेन्द्रिय के वश क्रोध से स्त्री कथा निद्रा और स्नेह वाला करता है ॥१॥ रसनाइन्द्रिय के वश क्रोध से स्त्री कथा निद्रा और स्नेह वाला करता है ॥२॥ घ्राणेन्द्रिय के वश क्रोध से स्त्री कथा निद्रा और स्नेह वाला करता है ॥३॥ चक्षु इन्द्रिय के वश क्रोध से स्त्री कथा निद्रा और स्नेह वाला करता है ॥४॥ कर्णेन्द्रिय के वश क्रोध से स्त्री कथा निद्रा और स्नेह वाला करता है ॥५॥ स्पर्शनेन्द्रिय के वश मान से स्त्री कथा निद्रा और स्नेह वाला करता है ॥६॥ इत्यादि ।

आगे दुतिय प्रस्तार की दृष्टि से नष्ट निकाल ने की विधि दिखाते हैं ।

सगमाणेहिं विभक्ते सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं ।
लद्धे रूवं पक्खिव सुद्धे अंते ण रूवपक्खेवो ॥४१॥

भाग प्रश्न दे चार का, शेष प्रथम लख भंग ।
लब्ध भाग दे एक रख, सून्य न इक का संग ॥४१॥

अर्थ—किसी ने प्रमाद के अस्सी भगो मे से कोई भग पूछा तो उतनी सख्या रख कर उसमे चार (विकथा) का भाग देकर जो शेष रहे उससे विकथा का स्थान भग निश्चित कर फिर लब्ध मे एक मिला कर चोर (कषाय) का भाग देकर शेष रहे उससे कषाय स्थान निश्चित कर फिर लब्ध मे एक मिला कर इन्द्रिय स्थान निश्चित करना चाहिये किन्तु शेष स्थान मे यदि सून्य आये तो एक नही मिलाना चाहिये और उसको अत का स्थान निश्चित करना चाहिये जैसे किसी ने प्रमाद का वीसवॉ भग पूछा तो वीस की सख्या रखकर

उसमें चार विकथा का भाग देने से लब्ध ५ आये और शेष स्थान में शून्य आया इसलिये ५ में एक न मिलाओ और अंत की विकथा (चोरकथा) निश्चित कर लब्ध ५ में चार कषाय का भाग देने से लब्ध एक रहा जिसमे आदि की कषाय (क्रोध) निश्चित कर शेष जो एक रहा था उसमे एक मिलाकर रसनाइन्द्रिय निश्चित करना चाहिये अर्थात् बीसवा भग चोर कथा क्रोध मे रसनाइन्द्रिय के वश निद्रा और स्नेहवाला करता है ऐसा निकला ।।४१।।

आगे दूसरे प्रस्तार की दृष्टि से उद्दिष्ट निकलना दिखाते है ।

संठाविदूण रूवं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे ।
अवणिज्ज अणंकिदयं कुज्जा एमेव सव्वत्थ ।।४२।।

इक रख इन्द्रिय गुणाकर, अन अंकित को छोड़ ।
इस प्रकार कर अंत तक, उद्दिष्ट संख्या जोड़ ।।४२।।

अर्थ–प्रथम प्रश्न को लिखकर फिर एक रख कर उसमे इन्द्रियों का गुणा कर उसमे अनकित हो उसको निकाल कर शेष मे चार कषायो का गुणा कर उसमे अनकित हो उसको निकाल कर शेष मे चार विकथाओ का गुणा कर उसमे अनकित निकाल कर शेष सख्या प्रश्न का उत्तर है। जैसे किसी ने पूछा कि राज्य कथा माया से घ्राण इन्द्रिय के वश निद्रा और स्नेह वाले प्रमाद की कितनी सख्या है। तो प्रथम १ को रख कर ५ इन्द्रियो से गुणा करने से ५ हुये पाच में दो निकालने कारण प्रश्न में चक्षु और कर्ण नही है शेष ३ मे ४ कषायों का गुणा करने से १२ हुये, बारह मे से १ निकाला कारण प्रश्न में लोभ नही है शेष ११ मे ४ विकथाओ का गुणा करने से ४४ हुये ४४ मे से १ निकाला कारण प्रश्न मे चोर कथा नही हे शेष ४३ रहे यही प्रश्न का उत्तर (४३वा प्रमाद) हे ।।४२।।

आगे प्रथम प्रस्तार की दृष्टि से नष्ट और उद्दिष्ट निकालना दिखाते हैं ।

इगिवितिचपणखपणदसपण्णरसं खवीसतालसट्ठी य।
संठविय पमदठाणे णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ॥४३॥

इक दो त्रय चउ पंच रख, सून्य पंच दश पन्द्र।
सून्य बीस चालीस सठ, रख प्रमाद त्रय मन्द्र ॥४३॥

यत्र—स्पर्शन १ रसना २ घ्राण ३ चक्षु ४ कर्ण ५ क्रोध० मान ५ माया १० लोभ १५ स्त्री० भोजन २० राज्य ४० चोर ६०।

अर्थ—उपरोक्त यत्र की ओर देखना चाहिये इस यत्र से प्रथम प्रस्तार की दृष्टि से अमुक प्रमाद के भेद की कौनसी सख्या है ऐसा नष्ट और अमुक सख्या का कौनसा प्रमाद का भेद ऐसा उद्दिष्ट निकल आता है जैसे किसी ने नष्ट पूछा कि ६ वी सख्या का कौन सा प्रमाद का भेद है तो यत्र की ओर देखने से स्पर्शन का १ मान के ५ और स्त्री कथा का ० लेने से सख्या ६ हो गई इसलिये स्पर्शन इन्द्रिय के वश मान से स्त्री कथा निद्रा और स्नेह वाला प्रमाद का भेद हुआ। फिर किसी ने उद्दिष्ट पूछा कि कर्ण इन्द्रिय के वश क्रोध से स्त्री कथा वाले प्रमाद के भेद की कौन सी सख्या है तो यत्र की ओर देखने से कर्ण इन्द्रिय के ५ क्रोध० और स्त्री कथा० लेने से उपरोक्त प्रश्न की सख्या ५ प्रथम प्रस्तार की दृष्टि से हुई इत्यादि ॥४३॥

आगे द्वितीय प्रस्तार से नष्ट और उद्दिष्ट निकालना दिखाते है।

इगिवितिचखचउवारं खसोलरागट्ठदालचउसट्ठिं।
संठविय पमदठाणे णट्ठुद्दिट्ठ च जाण तिट्ठाणे ॥४४॥

इक दो त्रय चउ कथा रख, सून्यचार अठ वार।
सुन सोलह बत्तीस अरु, बीस दुगुण सठचार ॥४४॥

यत्र—स्त्री १ भोजन २ राज्य ३ चोर कथा ४ क्रोध० मान ४

माया ८ लोभकषाय १२ स्पर्शन० रसना १६ घ्राण ३२ चक्षु ४८ कर्ण ६४।

अर्थ—उपरोक्त यत्र की ओर देखना चाहिये इस यत्र से अमुक प्रमाद के भेद की कौनसी सख्या है ऐसा नष्ट और अमुक सख्या का कौनसा प्रमाद का भेद है ऐसा उद्दिष्ट दुतीयप्रस्तार की दृष्टि से निकल आता है जैसे किसी ने पूछा कि २० वीं संख्या का कौन सा प्रमाद का भेद है तो यत्र की ओर देखने से चोर के ४ क्रोध० रसनाइन्द्रिय के १६ लेने से सख्या बीस हो गई तब चोर कथा क्रोध से रसना-इन्द्रिय के वश निद्रा और स्नेह वाला प्रमाद का भेद हुआ अब किसी ने उद्दिष्ट पूछा कि राज्य कथा माया से घ्राणइन्द्रिय के वश निद्रा और स्नेह वाले प्रमाद के भेद की कौन सी सख्या है तो यत्र की ओर देखने से राज्य कथा के ३ माया के ८ और घ्राण इन्द्रिय के ३२ अक जोडने से ४३ वा प्रमाद दुतीय प्रस्तार की दृष्टि से हुआ इत्यादि ॥४४॥

आगे अप्रमत्तगुणस्थान का स्वरूप दिखाते है।

संजलणणोकसायाणुदओ मंदो जदा तदा होदि।
अपमत्तगुणो तेण य अपमत्तो संजदो होदि ॥४५॥

नोकषाय संज्वलन का, मंद उदय जब होय।
सहित महाव्रत प्रमत बिन, प्रमत रहित गुण सोय।४५।

अर्थ—जिसके सज्वलन और नोकषाय मोह का मद उदय होता है उसके प्रमाद रहित सयम होता है उसको अप्रमत नाम का सातवा गुणस्थान कहते है ॥४५॥

आगे अतिशयरहितअप्रमत्त गुणस्थान को दिखाते है।

नट्ठासेसपमादो वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी।
अणुवसमओ अखवओ झाणणिलीणोहु अपमत्तो ॥४६॥

नश कर शेष प्रमाद को, धार मूल गुण खान।
श्रेणी उपशम क्षय न जब, प्रमत रहित रत ध्यान॥४६॥

अर्थ—जो व्यक्ताव्यक्त सब प्रमादो से रहित है। जो अट्ठाईस मूल गुणो से सहित है और जो उपशम अथवा क्षायिक श्रेणी से रहित है उसके अतिशयरहित अप्रमत्त गुणस्थान होता है ॥४६॥

आगे अतिशय सहित अप्रमत गुणस्थान को दिखाते है।

इगवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं।
पढमं अधापवत्तं करणं तु करेदि अपमत्तो ॥४७॥

मोह वीस इक उपशमें, या क्षय हित त्रय कर्ण।
अधःकरण को जो करे, प्रमत रहित गुण वर्ण।४७।

अर्थ—मोहकर्म की इक्कीस प्रकृतियो का उपशम अथवा क्षय करने के लिये आत्मा के तीन परिणाम होते है उनमे से जो अध करण (नीचले भाव) को करता है उसके अतिशय सहित अप्रमत गुणस्थान होता है ॥४७॥

आगे अध.करण का स्वरूप दिखाते है।

जह्मा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति।
तह्मा पढमं करण अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥४८॥

नीचे के परिणाम वत्, ऊपर के परिणाम।
प्रथम करण का इसलिये, अधःकरण है नाम ॥४८॥

अर्थ—अध करण के काल मे ऊपर के समय वाले जीवो के परिणाम नीचे के समय वाले जीवो के परिणाम सख्या और विशुद्धि की अपेक्षा समान होते है इसलिये इस करण का नाम अध.करण कहा है ।।४८।

आगे अव करण के काल और भावो की सख्या दिखाते है।

अंतोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा।
लोगाणमसंखमिदा उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥४९-१॥

अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है, उसमें भाव सुमान।
जग असंख्य परिमाण हैं, परें परें अधिकान॥४६-१॥

अर्थ—इस अध.करण का काल (स्थिति) अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है इसमे परिणाम असंख्यात लोक बराबर होते है। ये परिणाम पूर्व पूर्व की अपेक्षा आगे आगे समान रूप से बढते जाते हैं अर्थात् प्रथम समय के परिणाम से द्वितीय समय के परिणाम जितनी संख्या मे बढ़ते है उतनी सख्या मे द्वितीय समय के परिणाम से तृतीय समय के परिणाम बढते है इसी प्रकार अंत तक जानना ॥४६-१॥

आगे उदाहरण से अध करण के परिणाम दिखाते हैं।

बावत्तरितिसहस्सा सोलस चउ चारि एक्कयं चेव।
धणअद्धाणविसेसे तियसंखा होइ संखेज्जे ॥४९-२॥

तीन सहस पर बहत्तर, सोलह चउ चउ एक।
धन ऊँचा तिरछा दुचय, त्रय संख्या संख्येक ॥४६-२॥

अर्थ—इस विषय को समझने के लिये कल्पना करिये कि अध करण का सवधन (परिणाम) ३०७२ है, इसके ऊर्ध्वभेद, (समय भेद) १६ है, तिर्यग भेद (परिणामभेद) ४ है, ऊर्ध्वचय (वृद्धि) ४ है, तिर्यगचय (वृद्धि) १ है और चय आदि की सख्या निकालने के लिये सख्यात की संख्या ३ है। इसका विशेष विवरण नीचे लिखते है इस कारण इन संख्याओं का स्मरण रखना आवश्यक है ॥४६-२॥

आगे सामान्य से चय धन का परिमाण दिखाते है।

आदिधणादो सव्वं पचयधणं संखभागपरिमाणं ।
करणे अधापवत्ते होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥४९-३॥

आदि जु धन से प्रचय धन, संख्य भाग परिमाण।
अधःकरण में होय यह, कहें जिनेश्वर जान ॥४९-३॥

अर्थ–इस अध.करण मे सव ऊर्धचयो (वृद्धियो) का धन, (परिणाम) (४८०) आदिधन (परिणाम) के परिमाण (२५९२) से सख्यातवे भाग है चय धन को उत्तर धन भी कहते है जो कि सव चयो के जोड रूप (४८०) है इसकी स्पष्टता दोहा न० ४९-६ मे की जायगी ॥४९-३॥

आगे सव धन का और एक चय का परिमाण दिखाते है ।

उभयधणे संमिलिदे पदकदिगुणसंखरूवहदपचय ।
सव्वधण त तम्हा पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं ॥४९-४॥

दोनों धन मिल सर्व धन, पद को संख्य गुणाय ।
चय से गुणि यों भेद का, संख्य भाग चय आय।४९-४।

अर्थ–आदि धन (२५९२) और ऊर्धचयो का धन (४८०) मिलकर अध करण का सवधन (३०७२) होता है इसके परिमाण निकालने की विधि इस प्रकार है कि ऊर्ध भेद (१६) का जो वर्ग (२५६) हो उसको सख्यात (३) से गुणा करने पर जो परिमाण (७६८) आवे उसको उर्धचय को सख्या (४) से गुणा करने पर जो परिमाण (३०७२) आवे वह अधःकरण का सव धन (३०७२) होता है और इस सव धन (३०७२) मे उर्धभेद (१६) का जो वर्ग (२५६) आता है उसका भाग देने से जो लब्धि (१२) आवे उसमें संख्यात (३) का भाग देने से जो लब्धि (४) आता है वह एक ऊर्धचय का परिमाण (४) है ॥४९-४॥

आगे सव समयो के परिणामो का परिमाण दिखाते है ।

चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं।
आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणं ॥४९-५॥

चय तज सब में भेद का, भाग प्रथम परिमाण।
उसमें इक इक चय बढ़ें, प्रति क्षण धन का माण ॥४९-५॥

अर्थ—सब धन (३०७२) में से सबचयों का धन (४८०) कम कर देने से जो परिमाण शेष रहे वह आदि धन कहलाता है इस में ऊर्ध्वभेद (१६) का भाग देनेमें जो लब्ध (१६२) आवे वह प्रथम समय के परिणामों का परिमाण है इसमें एक एक ऊर्ध्व चय (४-४) बढाने से तृतीयादि समयो के परिणामों का परिमाण क्रम से १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२ निकल आता है। इनको इस ग्रन्थ के प्रारंभ में लगे हुये यंत्र में देखिये ॥४९-५॥

आगे सबचयो का परिमाण दिखाते हैं।

पचयधणस्साणयणे पचयं पभवं तु पचयमेव हवे।
रूऊणपदं तु पदं सव्वत्थवि होदि णियमेण ॥४९-६॥

चय धन लाने के लिए, अंत आदि चय माण।
इच्छ भेद से एक कम, होय यथा परिमाण ॥४९-६॥

अर्थ—चय धन निकालने के लिए यहां भेद का परिमाण १५ है इसमें एक कम करने से १४ रहे इसमे दो का भाग देने से ७ रहते हैं इसका और ऊर्ध्व चय (४) का परस्पर गुणा करने से २८ होते हैं इसमे आदि की उर्ध्व चय ४ को जोडने से ३२ होते है इनको उर्ध्व भेद १५ से गुणें ४८० होते हैं दूसरी रीति से ऊर्ध्वभेद (१६) में से प्रथम भेद को छोड़ देना चाहिये कारण उसमे चय का अभाव है शेष (१५) भेदों मे जितनाचयधन (४, ८, १२, १६, २०, २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८, ५२, ५६, ६०) बढा है उसका जोड

(४८०) सब चयों का धन है ॥४९-६॥

आगे अनुकृष्टि (समानासमान) भेद का परिमाण दिखाते है।

पडिसमयधणेवि पद पचयं पभवं य होइ तेरिच्छे।
अणुकट्टिपदं सव्वद्धाणस्स य संखभागो दु ॥४९-७॥

प्रति क्षण धन लाने अरथ, पद चय तिरछा लाग।
ऊर्ध भेद से कृष्टि पद, कहा संख्यवें में भाग।४९-७।

अर्थ—अनुकृष्टि (समानासमान) खड सम्बन्धी प्रति समय के धन का परिमाण निकालने के लिये अनुकृष्टि (समानासमान) के भेदादि सब की रचना तिर्यग करके और ऊर्ध भेद (१६) मे सख्यात (४) का भाग देकर जो लब्धि (४) आवे वह अनुकृष्टि (समानासमान) खड का भेद है ॥४९-७॥

आगे अनुकृष्टि चय और प्रथम भेद की संख्या दिखाते है।

अणुकट्टिपदेण हदे पचये पचयो दु होइ तेरिच्छे।
पचयधणूणं दव्वं सगपदभजिदं हवे आदी ॥४९-८॥

कृष्टि भेद का चय विषें, भाग दिये चय साधि।
चय धन कम कर सर्व में, स्वपद भाग चय आदि।४९-८।

अर्थ—अनुकृष्टि (समानासमान) के भेद (४) का ऊर्ध चय (४) मे भाग देने से जो लब्धि (१) आवे वह अनुकृष्टि का चय है और प्रथम समय सम्बन्धी अनुकृष्टि का सब धन (१६२) मे डेढ गुणा चयधन (६) कम करके जो परिमाण शेष (१५६) रहे उसमे अनुकृष्टि भेद (४) का भाग देने से जो लब्धि (३९) आवे वह अनुकृष्टि खड के प्रथम भेद का परिमाण है इसके आगे के खडो का परिमाण नीचे दिखाते हैं ॥४९-८॥

आगे तिर्यंग और ऊर्ध रचना का क्रम दिखाते हैं।

आदिम्मि कमे वड्ढदि अणुकट्ठिस्सं य चयं तु तिरच्छे।
इदि उड्ढतिरियरयणा अधापवत्तम्मि करणम्मि ॥४९-१॥

क्रम से तिरछी ओर को, बढ़े कृष्टि चय मान।
रचना तिरछो ऊर्ध यों, अध:करण में जान ।४६-१।

अर्थ—जब उस प्रथम भेद (३९) से तिर्यंग और ऊर्ध रूप क्रम से एक एक अनुकृष्टि चय (१) बढता है तब प्रथम समय सम्बन्धी खडो की सख्या ३९, ४०, ४१, ४२ हो जाती है। द्वितीय समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४०, ४१, ४२, ४३, हो जाती है। तृतीय समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४१, ४२, ४३ ४४ हो जाती है चतुर्थ समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४२, ४३, ४४, ४५ हो जाती है। पचमे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४३, ४४, ४५, ४६ हो जाती है। छट्टवे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४४, ४५, ४६, ४७ हो जाती है। सप्तवे समय सम्बन्धी खडों की सख्या ४५, ४६, ४७, ४८ हो जाती है। अष्टवे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४६, ४७, ४८, ४९ हो जाती है। नववे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४७, ४८, ४९, ५० हो जाती है। दशवे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४८, ४९, ५०, ५१ हो जाती है। ग्यारहवे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ४९, ५०, ५१, ५२ हो जाती है। बारहवे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ५०, ५१, ५२, ५३ हो जाती है। तेरहवे समय सम्बन्धी-खडो की सख्या ५१, ५२, ५३, ५४ हो जाती है। चौदहवे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ५२, ५३, ५४, ५५ हो जाती है। पन्द्रहवे समय सम्बन्धी खडो की सख्या ५३, ५४, ५५ ५६ हो जाती है। सोलहवे समय सम्बन्धी खंडो की सख्या ५४, ५५, ५६, ५७ हो जाती है। जैसे इन उदाहरणो के खंडो के नम्बरो मे कही समानता है कही असमानता है तैसे अध.करण के प्रत्येक

परिणामो मे कहीं समानता है कही असमानता है। इस आशय को इस ग्रन्थ के प्रारभ मे लगे हुए अध.करण नाम के यत्र से जानना चाहिये ॥४९-६॥

भावार्थ—दोहा न० ४७ से ११ दोहो तक का आशय दृष्टान्त से दिखाते है। जैसे किसी भव्य के मिथ्यात्व और अनतानुबन्धी के उपशमादिक के लिए तीनकरण मिथ्यात्वगुणस्थान मे होते है। अप्रत्याख्यान के उपशमादि के लिए तीनकरण अविरतगुणस्थान मे होते है और प्रत्याख्यान के उपशमादि के लिए तीन करण देशविरत गुणस्थात में होते है। जैसे किसी मुनि के शेष मोह के उपशम अथवा क्षय के लिए तीनकरण क्रम से सातिशय अप्रमत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणगुणस्थान मे होते है। इन करणो से प्रति समय अनतगुणी विशुद्धता होती जाती है। जिसके वलसे मोह कर्म की २१ प्रकृतियो का स्थितिखंडन और अनुभागखडन होकर उपशम अथवा क्षय हो जाता है।

इन तीनोकारणो का काल अन्तर्मूहूर्त मात्र है। जिसमे अध.करण के काल से अपूर्वकरण काल सख्यातवे भाग कम है और अपूर्वकरण के काल से अनिवृत्तिकरण का काल सख्यातवे भाग कम है। इसे अध करण के परिणाम एक जीव की अपेक्षा उसके समय की संख्या के बराबर है किन्तु नाना जीवो की अपेक्षा असख्यात लोक के वरावर है। अपूर्वकरण के परिणाम एक जीव की अपेक्षा उसके समय की संख्या के वरावर है किन्तु नाना जीवो की अपेक्षा अध करण के परिणामों से असख्यात लोक गुणित है और अनिवृत्तिकरण के परिणाम एक और नाना जीव की अपेक्षा इसके समय की सख्या के ही वरावर है।

अध:करण के ऊपर २ के सव परिणाम नीचे २ के सव परिणामों की अपेक्षा अनंतगुणीविशुद्धता को लिए हुये है और वे समान रूप से वढते जाते हैं इनमे नाना जीवो की अपेक्षा कही समानता भी है और कही असमानता भी है। उसका दृष्टान्त इस

प्रकार है कि एक पुरुष के १६ कार्यालय हैं उनमे ३०७२ सेवक काम करते हैं जिसमे प्रथम कार्यालय मे १६२ और दुतीयादि मे उससे ४-४ वढती सेवक काम करते है। प्रत्येक कार्यालय में ४-४ कोठे हैं प्रथम कार्यालय के कोठों मे क्रम से ३६, ४०, ४१ और ४२ सेवक काम करते हैं और दूसरे आदि कार्यालयो के प्रत्येक कोठो मे अपने अपने नीचे के कोठों की अपेक्षा १-१ सेवक अधिक काम करता है प्रथम कार्यालय के कोठों के सेवको का वेतन क्रम से १-३६, ४०-७६, ८०-१२० और १२१-१६२ रुपया है दूसरे आदि कार्यालयो के प्रत्येक कोठो के सेवको का वेतन अपने २ नीचे के कोठे के अतिम सेवक के वेतनसे १-१ रुपया वढती है जैसे उपरोक्त १६ कार्यालयो के सेवकों का वेतन अपने २ कार्यालय के किसी भी सेवक से नही मिलता एक दूसरे कार्यालय के सेवको के वेतन से यथासभव मिलता है और सर्वत्र नही मिलता। तैसे अधःकरण के १६ समयों के जीवो के परिणाम अपने २ समय के किसी भी जीव के परिणाम से नही मिलते किन्तु एक दूसरे समय के जीवों के परिणाम से यथासंभव मिलते है और सर्वत्र नही मिलते कारण वेतन और प्ररिणाम उत्तरोत्तर वढते गये है और वे परिणाम वढकर अपूर्वकरण को प्राप्त हो जाते हैं ॥४६॥

आगे सातिशयप्रमत्त अपूर्वकरण को प्राप्त दिखाते हैं।

अंतोमुहुत्तकालं गमिऊण अथपवत्तकरणं तं।
पडिसमयं सुज्झंतो अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥५०॥

अन्तमुहूर्त वितकर, अधःकरण का काल।
अमित शुद्ध हो प्रतिसमय, अपूर्वकरण हि काल ॥५०॥

अर्थ—जव सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान वाला मुनि अधःकरण के अन्तर्मुहूर्त काल को विताकर प्रति समय अनत गुणी विशुद्धता करता है तव उसके अपूर्वकरण सम्वन्धी परिणाम और अपूर्वकरण

गुणस्थान होता है ॥५०-१॥

आगे अपूर्वकरण के काल और भावों की संख्या दिखाते है।

अन्तोमुहुत्तमेत्तो पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
कमउड्ढा पुव्वगुणे अणुकट्ठी णत्थि णियमेण ॥५१-१॥

अन्तर्मुहूर्त प्रतिसमय, अगणित जग परिणाम।
क्रम के बढ़े अपूर्व में, रचनाकृष्टि न काम ॥५१-१॥

अर्थ—इस अपूर्व करण गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है इसमे जीवो के परिणाम असख्यात लोक बराबर होते है वे परिणाम प्रति समय उत्तरोत्तर समान रूप को लिये हुए बढते रहते है अर्थात् प्रथमसमय के परिणाम से द्वितीय समय के परिणाम जितनी सख्या में बढते है उतनी संख्या मे द्वितीयसमय के परिणाम से तृतीय समय के परिणाम बढते है इसी प्रकार अत तक जानना और इस गुणस्थान मे अधःकरण की तरह भिन्न भाव नही होते इस कारण इस मे अनुकृष्टि (समानासमान) रचना नही होती ॥५१-१॥

आगे अपूर्वकरण के भावों की सख्या दिखाते है।

छण्णउदिचउसहस्सा अट्ठ य सोलस धणं तदद्धाणं ।
परिणामविसेसोवि य चउ संखापुव्वकरणसंदिट्ठी ॥५१-२॥

चार सहस पर छानवे, अठ सोलह चउ ऊर्व।
धन पद भाव विशेष अरु, संख्या चिन्ह अपूर्व ।५१-२।

अर्थ—कल्पना करिये कि अपूर्वकरण के सब धन (परिणाम) ४०९६ है ऊर्ध भेद (समयभेद) ८ है चय (वृद्धि) १६ है और चय की संख्या निकालने के लिये सख्यात की सख्या ४ हैं इस विषय को स्पष्ट करने की विधि इस प्रकार है कि ऊर्ध भेद (८) मे एक कम

करना चाहिये कारण प्रथम भेद मे चय का अभाव है शेष (७) को आधा करने से ३।। रहते हैं इससे चय (१६) को गुणे जो परिमाण (५६) आता है इसको ऊर्ध्व भेद (८) से गुणे जो परिणाम (४४८) आता है वह सवचयो का धन है इस चय धन (४४८) को सवधन (४०९६) में कम करने से जो परिमाण शेष (३६४८) रहे उसमे ऊर्ध्व भेद (८) का भाग देने से जो लब्ध (४५६) आता है वह प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम का परिमाण है इसमे एक एक चय (१६) क्रमसे जोड देने से द्वितीयादि समयो के परिणामो का परिमाण ४७२, ४८८, ५०४, ५२०, ५३६, ५५२, ५६८ आता है। ये परिणाम प्रथम समय मे १ से ४५६ तक होते है, द्वितीयसमय मे ४५७ से ९२८ तक होते हैं तृतीयसमय मे ९२९ से १४१६ तक होते है चतुर्थसमय मे १४१७ से १९२० तक होते हैं पाँचवेसमय मे १९२१ से २४४० तक होते है छठवेसमय मे २४४१ से २९७६ तक होते हैं सातवेंसमय मे २९-७७ से ३५२८ तक होते है और आठवेसमय मे ३५२९ से ४०९६ तक होते हैं और सवधन (४०९६) मे उर्ध्वभेद (८) के वर्ग (६४) का भाग देने से जो लब्धि (६४) आवे उसमे सख्यात (४) का भाग देने से जो लब्धि (१६) आवे वह चय (समानवृद्धि) का परिमाण है ।।५१-२।।

आगे अपूर्वकरण का यथा नाम तथा गुण दिखाते है।

एदह्मि गुणट्ठाणे विसरिससमयट्ठियेहिं जीवेहिं ।
पुव्वमपत्ता जह्मा होंति अपुव्वा हु परिणामा ।।५२।।

इस गुणथल में भिन्न क्षण, ठहरे जीव जु मान।
होवें भाव अपूर्व ही, त्यों अपूर्वगुणथान ।।५२।।

अर्थ—इस अपूर्वकरण गुणस्थान मे भिन्न समय वाले जीवो के परिणाम अपूर्व ही होते है जोकि पहले कभी भी न हुए। इस कारण ही इस गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण रक्खा है ।।५२।।

आगे उसी आशय को और भी दिखाते है ।

भिरणसमयट्ठियेहिं दु जीवेहिं ण होदि सव्वदा सरिसो ।
करणेहिं एक्कसमयट्ठियेहिं सरिसो विसरिसो वा ॥५३॥

भिन्न समय के जीव में, एक भाव मत जान ।
एक समय के जीव में, तुल्यातुल्य पिछान ॥५३॥

अर्थ—इस अपूर्वकरण गुणस्थान के भिन्न समय वाले जीवो के परिणाम एक समान नही होते और एक समय वाले जीवो के परिणाम समान और असमान दोनो प्रकार के होते है। यदि किसी जीव के प्रथम समय मे उत्कृष्ट परिणाम हों और किसी जीव के द्वितीय समय मे जघन्य परिणाम हो तो भी उससे इसके अधिक ही परिणाम है ॥५३॥

आगे अपूर्व गुणस्थान मे उपशम अथवा क्षय दिखाते है ।

तारिसपरिणामट्ठियजीवा हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं ।
मोहस्सपुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जया यणिय ॥५३॥

उन भावों के जीव के, कहें मोह के खोह ।
वह अपूर्व गुण धर करे, उपशम या क्षय मोह ॥५४॥

अर्थ—मोह अधकार से रहित श्री जिनेद्रभगवान ने कहा है कि इन परिणामों के धारण करने वाले अर्थात् अपूर्वकरण गुणस्थान वाले जीव शेप मोह का उपशम अथवा क्षय करते है ॥५४॥

आगे उसी आशय को और स्पष्ट दिखाते है ।

णिद्दापयले णट्ठे सदि आऊ उवसमंति उवसमया ।
खवयं ढुक्के खवया णियमेण खवंति मोहं तु ॥५५॥

निद्रा प्रचला बंध क्षति, आयु कर्म है मान ।
उपशमता उपशमक अरु, क्षपक मोह क्षय ठान ॥५५॥

अर्थ—जिनके निद्रा और प्रचला प्रकृति का बन्ध रुक गया है और जिनके आयु कर्म विद्यमान है ऐसे उपशम श्रेणी वाले जीव शेष मोह का उपशम करते है और क्षायिक श्रेणी वाले जीव शेष मोह का क्षय करते है ॥५५॥

आगे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को दिखाते है।

एकह्मि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहावि य परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥५६॥
होंति अणियट्टिणो ते पडिसमय जेस्सिसेकपरिणामा।
विमलयरझाणहुयवहसिहाहिं णिद्दड्ढ कम्मवणा ॥५७॥

अनि-वृति क्षण के जियों में, वाह्य चिन्ह जिम भेद।
त्यों उनके परिणाम में, पाया जाय न भेद ॥५६॥
ऐसे अनि-वृति करण में, एक भाव सब थान।
वे अति निर्मल ध्यान से, करें कर्म की हान ॥५७॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्त मात्र काल मे से आदि, मध्य अथवा अत में स्थिति एक समय वाले जीवो में जैसी शरीर की ऊचाई आदि वाह्य कारणो से अथवा ज्ञानावरणादि कर्म के क्षयोपशमादि अत रग कारणो से भेद है तैसे उनके परिणामो मे परस्पर भेद नही है उनको अनिवृत्तिकरण के परिणाम कहते है। जितना उसका काल है उतने उसके परिणाम है। इसलिए उसके काल के जितने समय है उनमे प्रत्येक जीव के एक २ ही भाव होते है और वे परिणाम अत्यन्त निर्मल होते है। उनसे ध्यानाग्नि उत्पन्न होती है वह कर्म रूपी वन को भस्म कर देती है ॥५६-५७॥

आगे इस गुणस्थान के अत मे होने वाले कार्य को दिखाते है।

पुव्वापुव्वप्फड्ढयबादरसुहमगयकिट्टि अणुभागा ।
हीणकमाणंतगुणेणवरादु वरं च हेट्ठस्स ॥५८॥

पूर्वापूर्व स्पर्ध का, बादर सूक्ष्म कृष्टि ।
फल अनंत गुण बराबर, हीन होन क्रम इष्ट ॥५८॥

अर्थ—-जघन्य पूर्वस्पर्धक से उत्कृष्ट अपूर्वस्पर्धक का, उत्कृष्ट-अपूर्वस्पर्धक से जघन्य अपूर्वस्पर्धक का, जघन्य अपूर्वस्पर्धक से उत्कृष्ट बादरकृष्टि का, उत्कृष्ट बादरकृष्टि से जघन्यबादरकृष्टि का, जघन्य-बादरकृष्टि से उत्कृष्टसूक्ष्मकृष्टि का और उत्कृष्टसूक्ष्मकृष्टि से जघन्य-सूक्ष्मकृष्टि का अनुभाग अनत २ गुणाहीन है ॥५८॥

वर्ग—परमाणु को वर्ग कहते है ।

वर्गणा—परमाणुओ के समूह को वर्गणा कहते है ।

स्पर्धक–वर्गणाओ के समूह को स्पर्धक कहते है। वह दो प्रकार का होता है पूर्व और अपूर्व ।

पूर्वस्पर्धक—जिन स्पर्धको की अनुभाग शक्ति अपूर्वकरणगुण-स्थान मे कम हो गई है उन स्पर्धको को पूर्व स्पर्धक कहते है ।

अपूर्वस्पर्धक-जिन पूर्व स्पर्धको की शक्ति अनिवृत्तकरण गुण स्थान मे कम हो गई है उन पूर्व स्पर्धको को अपूर्वस्पर्धक कहते है।

बादरकृष्टि–जिसकी अनुभाग शक्ति अपूर्व स्पर्धको से भी कम हो गई है उन उन स्पर्धको को बादरकृष्टि कहते हैं ।

सूक्ष्मकृष्टि—-जिनकी अनुभाग शक्ति बादरकृष्टि से भी कम हो गई है उन स्पर्धको को सूक्ष्मकृष्टि कहते है ।

आगे सूक्ष्मसापराय गुणस्थान का स्वरूप दिखाते है ।

धुदकोसुंभयवत्थं होदि जहा सुहमरायसजुत्तं ।
एवं सुहमकसाओ सुहमसरागोत्ति णादव्वो ॥५९॥

रक्त वस्त्र की रक्तता, धुलें सूक्ष्म जिमि होय।
तैसे सूक्ष्म लोभ युत, सूक्ष्म गुण थल जोय ॥५९॥

अर्थ—जैसे लाल वस्त्र की लालामी धुलते २ कम हो जाती है तैसे तीन करणो के परिणाम से लोभ प्रकृति का अनुभाग अत्यत सूक्ष्म हो जाता है उसको सूक्ष्मसापराय नामक दशवाँ गुणस्थान कहते है ॥५९॥

आगे सूक्ष्मसापराय के फल को दिखाते है।

अणुलोह वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहमसंपराओ जहखादेणूणओ किंचि ॥६०॥

सूक्ष्म लोभ को वेदता, उपशम क्षायिक चीन।
सूक्ष्म सांपरायिक वही, यथाख्यात कुछ हीन ॥६०॥

अर्थ—जो सूक्ष्मसापरायिक गुणस्थान मे उपशम श्रेणी से अथवा क्षायिक श्रेणी से चढता है वह सूक्ष्म लोभ का अनुभव करता है इस कारण वह यथाख्यात चारित्री से कुछ हीन चारित्री कहा जाता है ॥६०॥

आगे उपशातगुणस्थान का स्वरूप दिखाते है।

कदकफलजुदजलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलय।
सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होदि ॥६१॥

जिमि निर्मल जल निर्मली, शरद ऋतु जल जोय।
तैसे उपशम मोह से, उपशांता गुण होय ॥६१॥

अर्थ—जैसे मैला जल निर्मली फल डालने से निर्मल हो जाता है अथवा वर्षा ऋतु का जल शरद ऋतु मे निर्मल हो जाता है तैसे सपूर्ण मोह के उपशम हो जाने से परिणाम निर्मल हो जाते है उसको

उपशात मोह नाम का ग्यारवा गुणस्थान कहते है ।।६१।।

आगे क्षीण मोह गुणस्थान का स्वरूप दिखाते है ।

णिस्सेसखीणमोहो फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णदि णिग्गंथो वीयरायेहि ।।६२।।

भाव मोह के क्षय भये, फटिक पात्रवत् नीर ।
कहते क्षीण कषाय गुण, श्री जिनेश महवीर ।।६२।।

अर्थ - सपूर्ण मोह के नाश होने से स्फटिक मणि के पात्र मे रक्खे हुए जल के समान निर्मल भाव हो जाते है । उनको श्री महा-वीर जिनेश क्षीण मोह नाम का वारहवा गुणस्थान कहते है ।।६२।।

आगे सयोग गुणस्थान का स्वरूप दिखाने है ।

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ।।६३।।
असहायणाणदंसणसमहिओ इदिकेवली हु जोगेण ।
जुत्तोत्ति सयोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो ।।६४।।

केवलज्ञान सुसूर्य से; सब अज्ञान नशाय ।
नव केवल लब्धी प्रकट, परमातम कहलाय ।।६३।।
दर्शन ज्ञान सहाय विन इससे केवल योग ।
कहलाते जिन सयोगी, आदि निधन जिन लोग ।।६४।।

अर्थ—जिसके केवलज्ञान रूपी सूर्य के उदय से अज्ञान रूपी अधकार नष्ट हो गया है । जिसके नव केवल लब्धियाँ (क्षायिक सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट हो गई है । जिसको परमात्मा पद प्राप्त हो गया है, जिसके

ज्ञान और दर्शन इन्द्रिय सहायता से रहित हो गये है। इस कारण केवली है। काययोग सहित होने मे सयोगी है। और ४ घातिया कर्म नष्ट होने से जिन है इस लिये ऐसा अनादि निधन देव, आगम मे कहा गया है उसके सयोग नाम का तेरहवा गुणस्थान होता है ॥६३—६४॥

आगे अयोग गुणस्थान का स्वरूप दिखाते है।

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होति ॥६५॥

सहस अठारह शील धर, कर्मास्रव सब वन्द।
सर्व कर्म से मुक्त है, अयोग केवलि नंद ॥६५॥

अर्थ—जो अठारह हजार शीलो का स्वामी है जो सब कर्मास्रवो को रोक चुका है जो सब कर्मों से मुक्त है उस परिणाम को अयोग गुणस्थान कहते हैं ॥६५॥

आगे इन गुणस्थानो मे गुण श्रेणी निर्जरा दिखाते है।

सम्मतुप्पत्तीये सावयविरदे अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खवगे कसायउवसामगे य उ सन्ते ॥६६॥
खवगे य खीणमोहे जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा।
तव्विरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति ॥६७॥

समकित सन्मुख दृष्टि सत, देश-व्रती अरु मान।
दर्श मोह उपशम क्षपक, उपशांतक पहिचान ॥६६॥
क्षपक क्षीण जिन द्रव्य से, गुणी असंख्य असंख्य।
निर्जर उलटा काल है, गुणलो संख्य जु संख्य ॥६७॥

अर्थ—सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि, सम्यक्दृष्टि, देशव्रती, दर्शनमोह उपशमक, दर्शनमोह क्षपक, शेष मोह उपशमक, शेपमोह-क्षपक, उपशातक, क्षीणमोह, सयोग और अयोग इन ११ स्थानो मे क्रम से असख्यात २ गुणी निर्जरा होती है किन्तु इन गुणस्थानो का काल मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोग गुणस्थान तक सख्यात २ गुणाहीन है ॥६६-६७॥

आगे सिद्ध का स्वरूप दिखाते है ।

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा निरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥६८॥

अष्ट कर्म बिन शांति मय, नित्य निरंजन वंत ।
अठगुण युत कृत कृत्य हैं, सिद्ध वास जग अंत ।६८।

अर्थ–जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मो से रहित है । जो अनतसुख का अनुभव करने वाला शातिस्वरूप है । जो भावकर्म रहित निरजन है । जो नित्य है । जो आत्मीक गुण सपन्न है । जो कृतकृत्य है और जो लोक के अत मे स्थिर है उसको सिद्ध भगवान कहते है ॥६८॥

आगे सिद्ध के गुण से पर मत खडन दिखाते है ।

सदसिवसंखो मक्कडि बुद्धो णेयाइयो य वेसेसी ।
ईसरमडलिदंसणविदूसणट्ठं कयं एदं ॥६९॥

सांख्य सदाशिव मस्करी, नैयायिक अरु बुद्ध ।
ईश्वर मंडलि विशेषिक, मत शिक्षा गुण शुद्ध ॥६९॥

अर्थ—सदाशिव वाले मत सब जीवो को सदाशिव (कर्मरहित) मानते है उनको समझाने के लिये सकेत किया जाता है कि देखिये केवल सिद्ध भगवान सदाशिव (कर्म रहित) है ससारी जीव कर्म

सहित सदाशिव नही है। साख्यमतवाले बध, मोक्ष, सुख और दु ख प्रकृति के मानते है बंध, मोक्ष, सुख और दु ख जीव के नही मानते उनको समझाने के लिये सकेत किया जाता है कि देखिये सिद्धभगवान अनत सुख के भोगता है प्रकृति जड है। मस्करी मतवाले मुक्त जीवका पुनरागमन मानते हैं उनको समझाने के लिये सकेत किया जाता है कि देखिये सिद्धभगवानभावकर्म से रहित निरजन हैं। भावकर्म विना कर्म ग्रहण नही हो सकता इसकारण पुनरागमन नही होता। बौद्धमतवाले सब पदार्थो को क्षणिक मानते है उनको समझाने के लिये सकेत किया जाता है कि देखिये सिद्धभगवान नित्य है। नैयायिक और वैशेषिक मत वालेमोक्ष मे ज्ञानादिक गुण का अभाव मानते है उनको समझाने के लिये सकेत किया जाता है कि देखिये सिद्धभगवान ज्ञानादिक अष्ट गुण सहित है। ईश्वरवादी ईश्वर को जगत का कर्त्ता मानते है उनको समझाने के लिये सकेत किया जाता है कि देखिये ईश्वर (सिद्ध) कृतकृत्य है और मडलीमतवाले मुक्त जीव को सदा ऊपर को गमन करते हुये मानते है उनको समझाने के लिये सकेत किया जाता है कि देखिये सिद्धभगवान (मुक्तजीव) लोक के अन्त मे स्थित हैं इसप्रकार दोहा न० ६८ मे बताये हुये सिद्धो के गुणो से सब मत वाले समझाये जाते है ॥६९॥

गुणस्थानाधिकार समाप्त

आगे जीवसमास का सामान्य स्वरूप दिखाते है।

जेहिं अणेया जीवा णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी।
ते पुण संगहिदत्था जीवसमासात्ति विण्णेया ॥७०॥

जिनसे जीव अनेक अरु, जाति अनेक जनाय।
उन धर्मों को संग्रहा, जीव समास कहाय ॥७०॥

अर्थ—जिनके द्वारा अनेक जीव जाने जावे और उनकी अनेक जातियाँ जानी जावे ऐसे सग्रह को जीव समास कहते है ।।७०।।

आगे जीवसमास का विशेष स्वरूप दिखाते है ।

तसचदुजुगाणमज्झे अविरुद्धे हिं जुदजादिकम्मुदये ।

जीवसमासा होंति हु तब्भवसारिच्छसामण्णा ।।७१।।

त्रस चारों ही युगल में, उदय कर्म अनुकूल ।

तुल्य धर्म इससे वसें, जीव समास समूल ।।७१।।

अर्थ—त्रस-स्थावर, वादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, अथवा प्रत्येक साधारण इन चारो युगलो की प्रकृतियो मे परस्पर विरोध है इन विरोधी प्रकृतियो मे से एकेन्द्रियवादरपर्याप्त आदि चौदह जीवसमासो मे से प्रत्येक जीवसमास के विरोध रहित प्रकृतियो का उदय होता है जिससे उनके समान धर्मो (आकृति, स्वभाव) का निवास होता है उसको जीवसमास कहते है ।।७१।।

आगे चौदह जीव समासो को दिखाते है ।

बादरसुहमेइंदियवितिचउरिंदियअसण्णिसण्णी य ।

पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चोद्दसा होंति ।।७२।।

एकेन्द्रिय बादर इतर, विकल सकल त्रय दोय ।

पर्याप्तापर्याप्त से, चौदह जीवहिं जोय ।।७२।।

अर्थ—एकेन्द्रियबादरपर्याप्त, एकेन्द्रियबादरअपर्याप्त, एकेन्द्रिय-सूक्ष्मपर्याप्त, एकेन्द्रियसूक्ष्मअपर्याप्त, दोइन्द्रियपर्याप्त, दोइन्द्रियअपर्याप्त, तेइन्द्रियपर्याप्त, तेइन्द्रियअपर्याप्त चौइन्द्रियपर्याप्त, चौइन्द्रियअपर्याप्त, पचेन्द्रियअसैनीपर्याप्त, पचेन्द्रियअसैनीअपर्याप्त, पचेन्द्रियसैनीपर्याप्त और पचेन्द्रियसैनी अपर्याप्त ये चौदह जीवसमास (समूह) है ।।७२।।

आगे ५७ जीवसमासो को दिखाते है ।

भूआउतेउवाऊणिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा ।
पत्तेयपदिट्ठिदरा तसपण पुण्णा अपुण्णादुगा ॥७३॥

थूल सूक्ष्म भू जल अगिन, पवन निगोदी दोय ।
त्रस पांचो प्रत्येक द्वय, पूर्ण अपूर्ण जोय ॥७३॥

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, नित्य निगोद और इतरनिगोद ये छहों बादर और सूक्ष्म के भेद से १२ प्रकार के होते हैं। प्रत्येक वनस्पति दो प्रकार की होती है सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। त्रस पाँच प्रकार के होते हैं। वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रियसैनी और पचेन्द्रियअसैनी। इस प्रकार कुल १९ भेद हुये ये पर्याप्त, निवृत्य-पर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त के भेद से ५७ प्रकार के जीव होतेहैं ॥७३॥

आगे जीव समास के स्थानादि अधिकारो को दिखाते हैं।

ठाणेहिं वि जोणीहिं वि देहोग्गाहणकुलाणभेदेहिं ।
जीवसमासा सव्वे परूविदव्वा जहाकमसो ॥७४॥

थान योनि अरु देह की, अवगाहन कुल भेद ।
सब ही जीव समास के, कहूँ यथाक्रम भेद ॥७४॥

अर्थ—स्थान, योनि, शरीरावगाहना और कुल इन चार अधि-कारो के द्वारा सपूर्ण जीव समासों का क्रम से वर्णन करता हूँ ॥७४॥

स्थान—जातिभेदों को स्थान कहते हैं। जैसे—एकेन्द्रियादि।

योनि—जन्मस्थान को योनि कहते हैं। जैसे, सचित्तादियोनि।

अवगाहना—शरीर के छोटे बडे भेद को अवगाहना कहते हैं। जैसे, साढे तीन हाथ, सात हाथ आदि।

कुल—भिन्न २ शरीर की उत्पत्ति के कारण भूत नोकर्म वर्गणा के भेदों को कुल कहते हैं। जैसे, मनुष्य के १४ लाख कोटि कुल।

आगे जीव समास के १ से १० तक स्थान दिखाते है।

सामण्णजीव तसथावरेसु इगिविगलसयलचरिमदुगे।
इदियकाये चरिमस्स य दुतिचदुपणगभेदजुदे ॥७५॥

जिय त्रस थावर एक युत, विकल सकल दो अंत।
इन्द्रिय कायरु दोय त्रय, चार पांच भेदान्त ॥७५॥

अर्थ—सामान्य से सब जीव एक प्रकार के होते है। त्रस और स्थावर की अपेक्षा दो प्रकार के होते है। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय की अपेक्षा तीन प्रकार के होते हैं। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय सैनी और असैनी की अपेक्षा चार प्रकार के होते है। इन्द्रियो की अपेक्षा पाॅच प्रकार के होते है। पाॅच स्थावर और एक त्रस की अपेक्षा छै प्रकार के होते है। पाॅच स्थावर, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय की अपेक्षा सात प्रकार के होते है। पाॅच स्थावर, विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय सैनी और पचेन्द्रिय असैनी की अपेक्षा आठ प्रकार के होते है। पाॅच स्थावर, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पचेन्द्रिय की अपेक्षा ९ प्रकार के होते है। और पाॅच स्थावर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय सैनी और पचेन्द्रिय असैनी की अपेक्षा दश प्रकार के जीव होते हैं ॥७५॥

आगे जीव समास के ११ से १८ तक स्थान दिखाते है।

पणजुगले तससहिये तसस्स दुतिचदुरपणगभेदजुदे।
छद्दुगपत्तेयम्हि य तसस्स तियचदुरपणगभेदजुदे ॥७६॥

पांच युगल त्रस सहित त्रस, दो त्रय चउ पन भंग।
छै जोड़ा प्रत्येक इक, त्रय चउ पन त्रस अंग ॥७६॥

अर्थ—बादर और सूक्ष्म के भेद से पाच स्थावर १० प्रकार के

होते है, इनमें त्रस मिलाने से ११ भेद होते हैं। दश स्थावरों में विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय मिलाने से १२ भेद होते हैं। दश स्थावरो में विकलेन्द्रिय पंचेन्द्रिय-सेनी और असैनी मिलाने से १३ भेद होते है। दश स्थावरो में दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पचेन्द्रिय मिलाने से १४ भेद होते हैं। दश स्थावरो मे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय सैनी और असैनी मिलाने से १५ भेद होते है। वादर और सूक्ष्म पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्य निगोद और इतर निगोद के भेद से स्थावरो के १२ भेद होते है। इनमे प्रत्येक वनस्पति, विकलेन्द्रिय पचेन्द्रिय सेनी और असैनी मिलाने से १६ भेद होते है। इनमे तीन त्रस निकालने से तेरह स्थावरो मे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पचेन्द्रिय मिलाने से १७ भेद होते हैं और तेरह स्थावरो, मे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय सैनी और असैनी मिलाने से जीव समास के १८ भेद होते है ॥७६॥

आगे जीव समास के १९ और ५७ भेद दिखाते है।

सगजुगलम्हि तसस्स य पणभंगजुदेसु होंति उणवीसा।
एयादुणवीसोत्ति य इगिबितिगुणिदे हवे ठाणा ॥७७॥

सात युगल त्रस पंच युत, भेद भये उन्नीस।
इन उन्नीसों को गुणो, एक दोय त्रय शीश ॥७७॥

अर्थ—वादर और सूक्ष्म के भेद से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्य और इतर निगोद के वारह भेद होते हैं। सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के दो भेद होते हैं। इन चौदह भेदो मे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय सैनी और असैनी मिलाने से जीव समास के १९ भेद होते है। इन उन्नीसो को तीन से गुणा करने पर जीव समास के ५७ भेद होते है ॥७७॥

आगे उपरोक्त ५७ भेदो को स्पष्ट दिखाते है।

सामण्णेण तिपंती पढमा विदिया अपुण्णगे इदरे।
पजत्ते लद्धिअपज्जत्तेऽपढमा हवे पंती ॥७८॥

प्रथम भेद सामान्य से, दुतिया पूर्णा-पूर्ण।
तृतिय निर्वृत्य पर्याप्ति है, सर्व भेद त्रय चूर्ण ॥७८॥

अर्थ—जीव समास के समान्य की अपेक्षा से १९ भेद है। उनमे सामान्य या पर्याप्त और अपर्याप्त अथवा पर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृति अपर्याप्त की अपेक्षा क्रम से १, २ अथवा ३ का गुणा करने से उनके १९, ३८ और ५७ भेद हो जाते है ॥७८॥

आगे तिर्यचो के ८५ भेद दिखाते है।

इगिवण्णं इगिविगले असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं।
गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगं भोगथलखेचरे दो दो ॥७९॥

इक पचास विकला सहित, जल, थल, नभ, मन दोय।
गर्भ समूच्छन दोय त्रय, थल नभ भोग हिं दोय ॥७९॥

अर्थ—उपरोक्त जीवसमास के ५७ भेदो मे से सैनी और असैनी पचेन्दिय के छै भेद निकालने से शेष ५१ भेद रहते है। कर्म भूमिया, तिर्यच तीन प्रकार के होते है जलचर, थलचर, और नभचर। ये तीनो सैनी और असैनी के भेद से ६ प्रकार के होते है ये छहों गर्भज और समूच्छन होते है इनमे गर्भज पर्याप्त और निर्वृत्य पर्याप्त होते है इस कारण गर्भज के १२ भेद भये और समूच्छन पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त के भेद से तीनो प्रकार के होते है। इस कारण सम्मूच्छन के १८ भेद होते है। कुल कर्म भूमि के तिर्यचो के ३० भेद भये। भोगभूमि के तिर्यच थलचर और नभचर होते है वे पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त होते है जिससे भोग भूमि के तिर्यचो के ४ भेद होते है इस तरह कुल तिर्यचो के ८५ भेद होते है ॥७९॥

आगे मनुष्य, देव, नारकियों के स्थान दिखाते हैं।

अज्जवमलेच्छमणुए तिदु भोगकुभोगभूमिजे दो दो।
सुरणिरये दो दो इदि जीवसमासा हु अडणउदी ॥८०॥

म्लेच्छ रु भोग कुभोग नर, सुरनारक दो दोय।
आर्य मनुष त्रयठानवे, जीव समासहि जोय ॥८०॥

अर्थ—आर्यमनुष्य तीनप्रकार के होते है, पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त। म्लेच्छमनुष्य, भोगभूमियाँमनुष्य, कुभोगभूमिया-मनुष्य, देव और नारकी दो-दो प्रकार के होते है पर्याप्त और निर्वृत्ति अपर्याप्त। ये १३ और उपरोक्त तिर्यंच ८५ प्रकार के मव मिलकर ६८ जीव समास होते हैं ॥८०॥

आगे आकार योनि के भेद दिखाते हैं।

संखावत्तयजोणी कुम्मुण्णयवंसपत्तजोणी य।
तत्थ य संखावत्ते णियमादु विवज्जेद गब्भो ॥८१॥

वांस पत्र वत् शंखवत्, योनी कछुआ पीठ।
गर्भ न ठहरे नियम से. शंख चक्र वत् ईठ ॥८१॥

अर्थ—गर्भ धारण करने वाली योनियो के आकार तीन प्रकार के होते है। शखचक्रसमान, कछुआपीठसमान और वासपत्रसमान जिसमे शखचक्रसमान मे गर्भ नही ठहरता ॥८१॥

१—शखचक्रसमानयोनि :—जिसमे शख के समान चक्र पडे हों उसको शखचक्रयोनि कहते हैं।

२—कछुआपीठसमानयोनि :—जो कछुये की पीठ की तरह उठी हो उसको कछुआपीठसमानयोनि कहते हैं।

३—वासपत्रसमानयोनि :—जिसका वहिरी भाग वासपत्र के समान लम्बा हो उसको वासपत्रसमानयोनि कहते हैं।

आगे पदापद धारक पुरुषो की योनियो को दिखाते है ।

कुम्मुण्णयजोणीये तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य ।
रामा वि य जायंते सेसाए सेसगजणो दु ॥८२॥

कुर्म पीठ में उपजते, हरि हल चक्रि जिनेश ।
शेष मनुष अरु शेष में, उपजें मानुप शेष ॥८२॥

अर्थ—कछुआपीठसमानयोनि मे हरि, प्रतिहरि, वलदेव, चक्रवर्ती, जिनेन्द्रदेव और साधारण पुरुष भी (अपदधर) उपजते है, वासपत्र-समान योनि मे साधारण (अपदधर) पुरुष उपजते है ऐसा मनुष्य स्त्री की अपेक्षा है । पशुस्त्री के कछुआपीठसमानयोनि नही होती शेष योनिया होती है ॥८२॥

आगे जन्म और योनि भेद दिखाते है ।

जम्मं खलु सम्मुच्छणगब्भुववादा दु होदि तज्जोणी ।
सच्चित्तसीदसंउडसेदरमिस्सा य पत्तेयं ॥८३॥

सम्मूच्छन उपपाद अरु, गर्भ जन्म त्रय भंग ।
सचित शीत संवृत इतर, मिश्र योनि हर संग ।८३।

अर्थ—गर्भ, उत्पाद और सम्मूच्छन ये तीन जन्म के भेद है । इनके आधार भूत सचित्त, अचित्त, मिश्र, शीत, उष्ण, मिश्र, ढकी, खुली और मिश्र ये ६ गुण योनि के भेद है । ये योनियाँ यथा सभव गर्भादि जन्म के साथ होती है ॥८३॥

आगे जीवो मे जन्म भेद दिखाते है ।

पोतजरायुजअंडजजीवाणं गब्भ देवणिरयाणं ।
उववाद सेसाणं सम्मुच्छणयं तु णिद्दिट्ठ ॥८४॥

पोत जरायुज अंडजा, जन्म गर्भ से मान।
सुर नारक उत्पाद से, शेष समूच्छन जान ॥८४॥

अर्थ—पोत (जो विना जेर और अडे के पैदा हो, जैसे शेर, हिरणादि) जरायुज (जेर के साथ उत्पन्न हो) अडज (जो अडे मे पैदा हो) जीवो का जन्म गर्भ से होता है। देव और नारकियो का जन्म उत्पाद (शैया या विल) से होता है और शेप जीवो का जन्म सम्मूच्छन जन्म से होता है ॥८४॥

आगे जन्म के साथ योनि दिखाते है।

उववादे अच्चित्तं गब्भे मिस्सं तु होदि सम्मुच्छे।
सच्चित्तं अच्चित्तं मिस्स च य होदि जोणी हु ॥८५॥

अचित योनि उत्पाद की, मिश्र गर्भ की होय॥
सचित अचित अरु मिश्रयुत, सम्मूच्छन की जोय।८५।

अर्थ—उत्पादजन्म की अचित्तयोनि होती है गर्भजन्म की मिश्र-योनि होती है। और सम्मूच्छन जन्म की सचित्त, अचित्त अथवा मिश्रयोनि होती है ॥८५॥

आगे उसी आशय को और दिखाते है।

उववादे सीदुसणं सेसे सीदुसणमिस्सयं होदि।
उववादेयक्खेसु य संउड वियलेसु विउलं तु ॥८६॥

शीत उष्ण उत्पात की, शेप जन्म की तीन।
ढकि थावर उत्पाद की, खुली विकल की चीन ॥८६॥

अर्थ—उत्पाद जन्म की शीत अथवा उष्ण योनि होती हैं और शेप (गर्भ और सम्मूच्छन) जन्म वालो की तीनो (शीत, उष्ण अथवा

मिश्र) योनि होती है। उत्पाद जन्म वालो की और एकेन्द्रिय की ढकी योनि होती है और विकलत्रय जीवो की खुली योनि होती है ॥८६॥

आगे उसी आशय को और भी दिखाते है।

गब्भजजीवाणं पुण मिस्सं णियमेण होदि जोणी हु।
संम्मुच्छणपचक्खे वियलं वा विउलजोणी हु॥८७॥

गर्भज जीवों की कही, मिश्र योनि जिन नाथ।
सम्मूच्छन इन्द्रिय सकल, ढकी योनि के साथ ॥८७॥

अर्थ—गर्भज जीवों की मिश्र (ढकी खुली की मिश्र) योनि होती है और सम्मूच्छन पचेन्द्रिय जीवो की खुली योनि होती है ॥८७॥

आगे योनियो के सामान्य विशेष भेद दिखाते है।

सामण्णेण य एवं णव जोणीओ हवति वित्थारे।
लक्खाण चदुरसीदी जोणीओ होंति णियमेण ॥८८॥

पूर्व योनि सामान्य से, नव ही भेद प्रभेद।
अरु उनके विस्तार से, लख चौरासी भेद ॥८८॥

अर्थ—उपरोक्त योनियो के भेद गुण की अपेक्षा ९ है और उनका विस्तार चौरासी लाख है ॥८८॥ मुख्यकर योनि तीन है उनमे प्रत्येक मे तीन-तीन भेद है और उन तीनो मे भी तीन-तीन भेद है। इस प्रकार कुल २७ भेद है और विस्तार ८४ लाख है।

आगे ८४ लाख योनि मे जीव दिखाते है।

णिच्चिदरधादुसत्त य तरुदस वियलिंदियेसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा ॥८९॥

नित्य इतर धातू सपत, सुर नारक पशु चार।
तरु दश विकलत्रय जु छै, नर चौदह लख सार ॥८९॥

अर्थ—नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये छहो की सात-सात लाख योनि है। प्रत्येक वनस्पति की दश लाख योनि है। दोइन्दिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय की दो दो लाख योनि है। सुर, नारक और पचेन्द्रिय पशुओ की चार-चार लाख योनि है और मनुष्यों की १४ लाख योनि है, इसप्रकार सब ८४ लाख योनि है ॥८९॥

आगे गति मे जन्म दिखाते है।

उववादा सुरणिरया गब्भजसम्मूच्छिमा हु णरतिरिया।
सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्खा ॥९०॥

गर्भज नर पशु गर्भ से, सुर नारक उत्पाद।
शेष मनुष अरु शेष पशु, सम्मूच्छन कर याद ॥९०॥

अर्थ—देव और नारकी उत्पाद जन्म से जनमते है। गर्भजमनुष्य और तिर्यच गर्भ जन्म से जनमते है। शेष तिर्यच और लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य सम्मूच्छन जन्म से जनमते है ॥९०॥

आगे उपरोक्त आशय स्पष्ट दिखाते है।

पंचक्खतिरिक्खाओ गब्भजसम्मुच्छिमा तिरिक्खाणं।
भोगभुमा गब्भभवा नरपुण्णा गब्भजाचेव ॥९१॥

पंचेन्द्रिय पशु कर्म भू, गर्भ सम्मूच्छन मान।
गर्भ उपज पशु भोग भू, पूर्ण मनुष अरु जान ॥९१॥

अर्थ—कर्मभूमि के पचेन्द्रिय तिर्यच गर्भ अथवा सम्मूच्छन जन्म

से जनमते हैं। भोगभूमि के मनुष्य और पशु गर्भ जन्म से जनमते है और कर्मभूमि के पर्याप्तमनुष्य गर्भ जन्म से जनमते है ॥९१॥

आगे लब्ध्यपर्याप्तको को दिखाते है।

उववादगब्भजेसु य लद्धिअपज्जत्तगा ण णियमेण।
णरसम्मुच्छिमजीवा लद्धिअपज्जत्तगा चेव ॥९२॥

गर्भ और उत्पाद जा, लब्ध्यपर्याप्त न मान।
सम्मूच्छनजा नरनिं को, लब्ध्यपर्याप्तक जान ॥९२॥

अर्थ – गर्भ और उत्पाद जन्म वाले जीव लब्ध्यपर्याप्त नही होते निर्वृत्यपर्याप्त होते है, और सम्मुच्छनमनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक ही होते है ॥९२॥

आगे जन्म मे वेद दिखाते हैं।

णेरइया खलु संढा णरतिरिये तिण्णि होंति सम्मुच्छा।
संढा सुरभोगभूमा पुरिसिच्छीवेदगा चेव ॥९३॥

सम्मूच्छन अरु नारकी, जीव षंड पहिचान।
षंड न सुर अरु भोग भू, शेष वेद त्रय वान ॥९३॥

अर्थ —सम्मूच्छन और नारकी जीव नपुसक वेद वाले होते हैं। देव और भोगभूमिया-मनुष्य तथा पशु-पुरुष अथवा स्त्री वेद वाले होते है और शेप (गर्भज) मनुष्य तथा तिर्यच तीनो वेद वाले होते है ॥९३॥

आगे सामान्य से अवगाहन दिखाते है —

सुहमणिगोद-अपज्जत्तयस्य जादस्स तदियसमयम्हि।
अंगुलअसखभागं जहण्ण मुक्कस्सयं मच्छे ॥९४॥

सूक्ष्म अपूर्ण निगोद के, जन्म बाद क्षण तीन।
अंगुल भाग असंख्य लघु, परा मच्छ की चीन ॥९४॥

अर्थ —जघन्यअवगाहना अंगुल के असंख्यातवे भाग के बराबर है। वह जन्म के तीन समय पश्चात् वाले सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त निगोदिया जीव के शरीर मे पाई जाती है और उत्कृष्ट महामच्छ के पाई जाती है ॥९४॥

आगे उत्कृष्ट अवगाहना दिखाते है —

साहियमहस्समेकं वारं कोसूणमेकमेक्कं च ।
जोयणसहस्सदीहं पम्मे वियले महामच्छे ॥९५॥

एक सहस योजन अधिक, वारह पोन रु एक ।
सहस दीर्घ क्रम कमल अरु, विकल मच्छ को नेक ।९५।

अर्थ —एकेन्द्रिय मे कमल की एक हजार से कुछ अधिक उत्कृष्ट अवगाहना होती है। दोइन्द्रिया जीव मे शंख की वारहयोजन की उत्कृष्टअवगाहना होती है। तीनइन्द्रिय मे चीटी की तीन कोस की उत्कृष्टअवगाहना होती है। चार इन्द्रिय जीव मे भ्रमर की एक योजन की उत्कृष्टअवगाहना होती है। तथा पचेन्द्रिय मे महामच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की होती है जिसमे कमल से महामच्छ की अवगाहना अधिक है ॥९५॥

आगे जघन्य अवगाहना दिखाते है —

वितिचप पुण्णजहण्णं, अणु धरीकुंथुकाणमच्छीसु ।
सिच्छयमच्छे विंदंगुलसंखे संखगुणिदकमा ॥९६॥

दुतिचप इन्द्रिय जघन लख, अनुध कुंथु कणमक्ख ।
मच्छ घनांगुल संख्य लख, संख्य गुणित क्रम रक्ख ।९६।

अर्थ —दो इन्द्रिय मे अनुधरी जीव के घनागुल के संख्यातवे भाग के बराबर जघन्यअवगाहना होती है। तीन इन्द्रिय जीव मे

कुथु जोव की उससे सख्यातगुणी जघन्यअवगाहना होती है। चौ-इन्द्रिय मे कण मक्खी को उससे सख्यातगुणी जघन्यअवगाहना होती है। और पचेन्द्रिय जीव मे छोटे मच्छ की उससे सख्यातगुणी जघन्य-अवगाहना होती है ॥९६॥

आगे जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना दिखाते है।

सुहमणिवातेआभूवातेआपुणिपदिट्ठिदं इदरं ।
वितिचपमादिल्लाणं एयाराणं तिसेढीय ॥९७॥
अपदिट्ठिदपत्तेय वितिचपतिचविअपदिट्ठिदंसयलं ।
तिचविअपदिट्ठिदं च य सयलं वादालगुणिदकमा ॥९८॥
अवरमपुण्णं पढमं सोलं पुण पढमविदियतदि योली ।
पुण्णिदरपुण्णयाणं जहण्णमुक्कस्समुक्कस्स ॥९९॥
पुण्ण जहण्णं तत्तो वर अपुण्णस्स पुण्णउक्कस्सं ।
वीपुण्णजहण्णोत्ति असंखं सख गुणं तत्तो ॥१००॥
सुहमेदरगुणगारो आवलिपल्लाअसंखभागो दु ।
सट्ठाणे सेढिगया अहिया तत्थेकपडिभागो ॥१०१॥

सूनि व ते जल भू व ते, जल भू निगो प्रतिष्ठ ।
अप्र दु ति च पन आदि की, ग्यारह पंक्ति तिइष्ट ॥९७॥
अप्र दु ति च पन ति च दु अरु, अप्रतिष्ठ पन मान ।
ति च दु अप्र पन थापि कर, क्रम गुणि व्यालिस थान ।९८।
वर न पूर्ण सोलह प्रथम, प्रथम दुतिय त्रय पांति ।
पूर्णा-पूर्ण रु पूर्ण है, जघन्य वर वर भांति ॥९९॥

आगे पूर्ण जघन्य हैं, वर अपूर्ण वर पूर्ण।
गुणि असंख्य उनतीस तक, शेषसंख्य गुणि पूर्ण॥१००॥
सू वादर गुणि आवली, पल्प असंख्य जु भाग।
निज थल में अरु श्रेणी में, अधिक एक प्रति भाग॥१०१॥

अर्थ :—सूक्ष्मअपर्याप्तनिगोदिया की जघन्यअवगाहना से लेकर पर्याप्त पचेन्द्रिय की जघन्य और उत्कृष्टअवगाहना तक की हीनाधिकता का परिज्ञान कराने के लिये इस ग्रन्थ मे एक यत्र है जिसमे क्रम से आठ कोठे ऊपर है और चौथे तथा पाचवे कोठे के नीचे दो दो कोठे और हैं। इस प्रकार सव वारह कोठे हैं। प्रथम कोठे मे सूक्ष्म निगोदिया, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी काय के पाच स्थान है। दूसरे कोठे में वादरवायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, निगोदिया और सप्रतिष्ठित प्रत्येक के छै स्थान है। तीसरे कोठे मे अप्रतिष्ठितप्रत्येक, दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पचेन्द्रिय के पाच स्थान है। चौथे और पाचवे कोठो मे तथा इनके नीचे वाले दो दो कोठो मे पहिले और दूसरे कोठो के अनुसार स्थान हैं। छठवे कोठे मे तीसरे कोठो के अनुसार स्थान है। सातवे कोठे मे तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक और पचेन्द्रिय के पाच स्थान हैं और आठवे कोठे में सातवे कोठे के अनुसार स्थान है। ऊपर के प्रथम तीन कोठों मे जघन्य अवगाहना के धारी अपर्याप्त जीव है। चौथे से छठवे कोठे तक जघन्य अवगाहना के धारी पर्याप्त जीव है। चौथे पाचवे कोठो के नीचे वाले दो कोठो मे और सातवे कोठो मे उत्कृष्ट अवगाहना के धारी अपर्याप्त जीव है शेप कोठों मे उत्कृष्ट अवगाहना के धारी पर्याप्त जीव हैं। ऊपर के व्यालीस स्थानो मे से आदि के उनतीस स्थान तक अवगाहना का परिमाण, सूक्ष्म जीवो मे उत्तरोत्तर आवली के असख्यातवे २ भाग से गुणित हैं और वादर जीवो मे तथा वादर सूक्ष्म जीवो के योग मे पल्य के असख्यातवे २ भाग से गुणित

है। शेष १३ स्थानो मे पल्य के सख्यातवे २ भाग से गुणित है। और नीचे के २२ स्थानो के सूक्ष्म जीवो मे आवली के असख्यातवे २ भाग अधिक है और वादर जीवो मे तथा वादर सूक्ष्म जीवो के योग मे पल्य के असंख्यातवे २ भाग अधिक है ॥९७।१०१॥

आगे जघन्य से उत्कृष्ट तक प्रदेशवृद्धि का क्रम दिखाते है।

अवरुवरि इगिपदेसे जुदे असंखेज्जभागवड्ढीए।
आदी णिरंतरमदो एगेगपदेसपरिवड्ढी ॥१०२॥
अवरोग्गाहणमाणे जहण्णपरिमिदअसंखरासिहिदे।
अवरस्सुवरि उड्ढे जेट्ठमसंखेज्जभागस्स ॥१०३॥
तस्सुवरि इगिपदेसे जुदे अवत्तव्वभागपारम्भो।
वरसंखमवहिदवरे रूऊणे अवरउवरिजुदे ॥१०४॥
तव्वड्ढीए चरिमो तस्सुवरिं रूवसंजुदे पढमा।
संखेज्जभागउड्ढी उवरिमदो रूवपरिवड्ढी १०५॥
अवरद्धे अवरुवरि उड्ढे तव्वड्ढिपरिसमत्ती दु।
रूवे तदुवरि उड्ढे होदि अवत्तव्वपढमपदं ॥१०६॥
रूऊणवरे अवरुस्सुवरिं संवड्ढिदे तदुक्कस्सं।
तह्मि पदेसे उड्ढे पढमा संखेज्जगुणवड्ढी ॥१०७॥
अवरे वरसंखगुणे तच्चरिमो तम्हि रूवसंजुत्ते।
उग्गाहणम्हि पढमा होदि अवत्तव्वगुणवड्ढी ॥१०८॥
अवरपरित्तासंखेणवरं सगुणिय रूवपरिहीणे।
तच्चरिमो रूवजुदे तह्मि असंखेज्जगुणपढमं ॥१०९
रूवुत्तरेण तत्तो आवलियासंखभागगुणगारे।
तप्पाउग्गेजादे वाउस्सोग्गाहणं कमसो ॥११०॥

एवं उवरि विणेओ पदेसवड्ढिकमो जहाजोग्गं ।
सव्वत्थेक्केक्कह्मि य जीवसमासाण विच्चाले ॥१११॥
हेठ्ठा जेसिं जहण्णं उवरिं उक्कस्सयं हवे जत्थ ।
तत्थंतरगा सव्वे तेसिं उग्गाहणवि अप्पा ॥११२॥

इकप्रदेस रख जघन पर, भाग असंख्यजुवृद्धि ।
आदि थान वह इसतरह, एक एक परि वृद्धि ।१०२।
जघन गाहना माण में, जघन असंख्ये भाग ।
उसे मिलावे उस विषें, वर थल अगणित भाग ॥१०३॥
उस पर एक प्रदेश रख, अकथ भाग प्रारंभ ।
इक इक वढे प्रदेश जब, जघन विषे वर थम्भ ॥१०४॥
तवे अकथ का अंत थल, आगे इक इक जोड़ ।
संख्य भाग का प्रथम थल, आगे इक इक जोड़ ।१०५।
जघन भाग मैं अर्ध रख, संख्य वृद्धि वर अंत ।
आगे इक इक वृद्धि कर, अकथ वृद्धि प्रथमान्त ॥१०६॥
जघन विषें इक जघनरख, अकथ भाग वर मान ।
उसमें एक प्रदेश रख, प्रथम संख्यगुणि थान ॥१०७॥
जेष्ठ संख्य से गुणि जघन, संख्य गुणा थल श्रेष्ठ ।
इक प्रदेश उसमें वढ़े, अकथ गुणी अन श्रेष्ठ ।१०८।

लघु असंख्य गुणि जघन से, उसमें एक घटाय ।
अकथ जेष्ठ फिर इक वढ़े, प्रथम असंख्य गुणाय ।१०६।
इक इक वह बढ़ आवली, भाग असंख्य गुणाय ।
इस प्रयोग से वायु की, लघु अवगाहन आय ।११०।
जैसे ऊपर कह चुके, त्यों क्रम वढत प्रदेश ।
सब अन्तर इक एक में, जीवसमास जु शेष ।१११।
जिन की प्रथम जघन्य जहँ, पीछे तहँ वर आय ।
उन के अन्तर सर्व ही, गाहन भेद समाय ।११२।

अर्थ—सूक्ष्म अपर्याप्त निगोदिया की जघन्य अवगाहना के परिमाण मे एक प्रदेश मिलाने से असख्यातभागवृद्धि का आदिस्थान होता है। इस मे एक एक प्रदेश वढते २ असख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है । जिसका परिमाण जघन्य अवगाहना के परिमाण-मे जघन्यपरितासख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको जघन्यअवगाहना के परिमाण मे मिलाने से आता है। इसमे एक प्रदेश मिलाने से अकथभागवृद्धि का आदिस्थान होता है। इसमे एक २ प्रदेश की वृद्धि होते २ अकथभागवृद्धि का उत्कृष्टस्थान होता है। इसका परिमाण जघन्यअवगाहना के परिमाण मे उत्कृष्ट-सख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमे एक प्रदेश कम करके जघन्यअवगाहना के परिमाण मे मिलाने से आता है। इसमे एक प्रदेश मिलाने से सख्यातभागवृद्धि का आदि स्थान होता है। इसमे एक २ प्रदेश की वृद्धि होते २ सख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट-स्थान होता है। इसका परिमाण जघन्यअवगाहना के परिमाण मे जघन्यअवगाहना का आधा और मिलाने से आता है। इसमे

एक प्रदेश मिलाने से अकथभागवृद्धि का आदिस्थान होता है। इसमें एक २ प्रदेश की वृद्धि होते २ अकथभाग वृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इसका परिमाण जघन्यअवगाहना के परिमाण मे एक कम कर जघन्यअवगाहना के परिमाण मे ही मिलाने से आता है। इसमे एक प्रदेश मिलाने से सख्यातगुणवृद्धि का आदिस्थान होता है। इसमें एक २ प्रदेश की वृद्धि होते २ सख्यातगुणवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इसका परिमाण जघन्यअवगाहना के परिमाण मे उत्कृष्ट अवगाहना के परिमाण का गुणा करने से आता है। इसमे एक प्रदेश मिलाने से अकथगुणवृद्धि का आदिस्थान होता है। इसमे एक प्रदेश की वृद्धि होते २ अकथगुणवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इसका परिमाण जघन्यअवगाहना के परिमाण मे जघन्यपरीता-सख्यात का गुणा करने से जो परिमाण आवे उसमे एक कम करने से आता है। इसमे एक प्रदेश मिलाने से असख्यातगुणवृद्धि का आदि स्थान होता है। इसमे एक २ प्रदेश की वृद्धि होते २ सूक्ष्म अपर्याप्तवायूकाय की जघन्यअवगाहना होती है। इसका परिमाण सूक्ष्मअपर्याप्तनिगोदिया की जघन्यअवगाहना मे आवली के असख्यातवे भाग का गुणा करने से आता है। जिसप्रकार सूक्ष्मअपर्याप्तनिगो-दिया की जघन्यअवगाहना के स्थान मे लेकर सूक्ष्मअपर्याप्तवायूकाय की जघन्यअवगाहना के स्थान तक उपरोक्त प्रकार प्रदेशवृद्धि का अनुक्रम वर्णन किया है। तिस ही प्रकार इसके आगे दो इन्द्रिय-पर्याप्त की जघन्यअवगाहना के स्थान तक जितने जीवो की अवगाहना के स्थान है उनके मध्य मे उपरोक्त प्रकार प्रदेश वृद्धि का अनुक्रम है फिर इसके आगे पर्याप्तपचेन्द्रिय की उत्कृष्टअवगाहना के स्थान तक जितने जीवो के स्थान है उनके मध्य मे भी असख्यातगुणवृद्धि के विना उपरोक्त प्रकार प्रदेशवृद्धि का अनुक्रम है।

प्रत्येक जीव की जघन्य अवगाहना के स्थान से लेकर उत्कृष्ट-अवगाहना के स्थान तक मध्य के जितने प्रदेश भेद है वे सब उन जीवों की मध्यअवगाहना के भेद हैं ॥१०२–११२॥

आगे प्रत्येक जीव की कुल सख्या दिखाते है।

वावीस सत्त तिण्णि य सत्त य कुलकोडिसयसहस्साइं।
णेया पुढविदगागणिवाउक्कायाण परिसंखा ॥११३॥

कोडिसयसहस्साइं सत्तट्ठणव य अट्ठवीसाइं।
वेइंदियतेइंदियचउरिंदियहरिदकायाणं ॥११४॥

अद्धत्तेरस वारस दसय कुलकोडिसदसहस्साइं।
जलचरपक्खिचउप्पयउरपरिसप्पेसु णव होंति ॥११५॥

धप्पंचाभियवीसं चउदसकुलकोडिसदसहस्साइं।
सुरणेरइयणराणं जहाकमं होंति णेयाणि ॥११६॥

दोय बीस अरु सात त्रय, सात जु लाख करोड।
कुल पृथ्वी जल अग्नि अरु, वायु काय के जोड़ ॥११३॥

अट्ठाइस अरु सात अठ, अरु नव लाख करोड़।
बनस्पती दो तीन अरु, चौइन्द्रिय को जोड़ ॥११४॥

साढ़े बारह बारहा, दश नव लाख करोड़।
जलचर पंक्षी चौपगा, बिनपग क्रम से जोड़ ॥११५॥

छब्बास रु पच्चीस अरु, चौदह लाख करोड़।
देव नारकी अरु मनुष, क्रम से कुल सब जोड़ ॥११६॥

अर्थ—पृथ्वीकाय के २६ लाख कोटि कुल है, जलकाय के ७ लाख कोटि कुल है, अग्नि काय के ३ लाख कोटि कुल है, वायु काय के ७ लाख कोटि कुल है, वनस्पति काय के २८ लाख कोटि कुल

है, दोइन्द्रिय के ७ लाख कोटि कुल है, तेइन्द्रिय के ८ लाख कोटि कुल हैं, चौइन्द्रिय के ९ लाख कोटि कुल हैं, जलचरो के १२॥ लाख कोटि कुल हैं, पक्षियो के १२ लाख कोटि कुल है, चौपायो के १० लाख कोटि कुल है, छाती से चलने वाले सर्पादि के ९ लाख कोटि कुल है देवो के २६ लाख कोटि कुल है, नारकियो के २५ लाख कोटि कुल है मनुष्यो के १४ लाख कोटि कुल है ॥११३-११६॥

आगे सब कुलो की एक सख्या दिखाते हैं।

एया य कोडिकोडी णवणउदीय सदसहस्साइं य।
पण्णं कोडिसहस्सा सव्वंगीणं कुलाणंय ॥११७॥

इक कोटा कोटी तथा, निन्यानवे जु लाख।
कोटिसहस पंचास युत, कुल संख्या जिनभाख ।११७।

अर्थ—सब कुलो की सख्या एक कोटि निन्यानवे लाख पचास हजार को एक कोटि से गुणा करने पर जो फल आवे उतनी सख्या है। अर्थात् १९९५०००००००००००० सख्या है ॥११७॥

॥ जीवसमास अधिकार ॥

आगे पर्याप्ति का स्वरूप दिखाते हैं।

जह पुण्णापुण्णाइं गिहघडवत्थादियाइं दव्वाइं।
तह पुण्णिदरा जीवा पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥११८॥

ज्यों घट पट आदिक दरब, पूर्ण-पूर्ण पिछान।
पूर्णापूर्ण हिं जीव त्यों, पर्याप्तेतर जान ॥११८॥

अर्थ—जैसे वस्त्र और वर्तनादि पदार्थ पूर्ण और अपूर्ण रूप मे दिखलाई देते है तैसे जीव भी पूर्ण और अपूर्ण रूप मे होते है जो

जीव पूर्ण रूप मे है उन को पर्याप्त कहते है और जो पूर्ण रूप में नही है उनको अपर्याप्त कहते है ॥११८॥

पर्याप्ति—शरीर की पूर्ण रचना को पर्याप्त कहते है।

अपर्याप्ति—शरीर की अपूर्ण रचना को अपर्याप्त कहते है।

आगे पर्याप्तियो के नाम दिखाते है।

आहारसरीरिंदियपज्जत्ती आणपाणभासमणो।
चत्तारि पंच छप्पि य एइंदियवियलसण्णीणं ॥११९॥

आहारा तन इन्द्रियां, श्वांस बचन मन मान।
आदि चार पन छै रहें, एक विकल सकलान॥११९॥

अर्थ—पर्याप्ति छै प्रकार की होती है आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोश्वास, भाषा और मन। ये आदि की चार एकेन्द्रिय जीवो के होती है आदि की पाच त्रस असैनियो के होती है और सैनी जीव के छहो होती है ॥११९॥

आहारपर्याप्ति—नवीन शरीर के कारण भूत नोकर्मवर्गणाओ के ग्रहण को आहार पर्याप्ति कहते है।

शरीरपर्याप्ति—ग्रहण की हुई नोकर्मवर्गणाये खल (कठोर) और रस (नरम) रूप होने को शरीरपर्याप्ति कहते है।

इन्द्रियपर्याप्ति—ग्रहण की हुई जो कर्मवर्गणाओ के कुछ स्कन्धों मे से द्रव्येन्द्रिय रूप होने को इन्द्रियपर्याप्ति कहते है।

श्वासोश्वासपर्याप्ति—कुछ स्कन्धो मे से श्वासोश्वास रूप होने को श्वासोश्वासपर्याप्ति कहते है।

भाषापर्याप्ति—कुछ स्कन्धो मे से वचन रूप होने को भाषापर्याप्ति कहते है।

मनपर्याप्ति—कुछ स्कन्धो मे से द्रव्य मन रूप होने को मनपर्याप्ति कहते है।

आगे पर्याप्तियो का प्रारम्भ और पूर्ण काल दिखाते है।

पज्जत्तीपट्ठवण जुगवं तु कमेण होदि णिट्ठवणं।
अंतोमुहुत्तकालेणहियकमा तत्तियालावा ॥१२०॥

इनकी युगपत् थापना, क्रम से पूरण मान।
अन्तर्मुहूर्तकाल सब, अधिक अधिक क्रम जान।१२०।

अर्थ—सब पर्याप्तियो का प्रारम्भ युगपत् होता है परन्तु इनकी पूर्णता क्रम से होती है इनका काल पूर्व २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर अधिक है तो भी सब का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। इसका कारण यह है कि अन्तर्मुहूर्त के असख्यात भेद है ॥१२०॥

आगे निर्वृत्त्यपर्याप्त का काल दिखाते है।

पज्जत्तस्स य उदये णियणियपज्जत्तिणिट्ठिदो होदि।
जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्ति अपुण्णगो ताव ॥१२१॥

उदय कर्म पर्याप्त से, पूरण स्व-स्व पर्याप्त।
जब तक देह अपूर्ण है, तब निर्वृत्त्यपर्याप्त॥१२१॥

अर्थ—पर्याप्ति नाम कर्म के उदय से जीव अपनी २ पर्याप्तियों से पूर्ण होता है और जब तक वे पर्याप्तियाँ पूर्ण नही होती तब तक उसको निर्वृत्तिअपर्याप्त कहते हैं ॥१२१॥

आगे लब्धि अपर्याप्त का स्वरूप दिखाते है।

उदये दु अपुण्णस्स य सगसगपज्जत्तियं ण णिट्ठवदि।
अंतोमुहुत्तमरणं लद्धिअपज्जत्तगो सो दु ॥१२२॥

अपर्याप्त के उदय से, पूर्ण न स्वस्व पर्याप्त।
अन्तर्मुहूर्त्त मरण कर, कहें लब्ध्य-पर्याप्त ॥१२२॥

अर्थ—जो जीव अपर्याप्त नाम कर्म के उदय से अपनी २ पर्याप्तियों को नही प्राप्त करता वह अन्तर्मुहूर्त्तकाल मे मरण को प्राप्त होता है उसको लब्ध्यपर्याप्तक कहते है ॥१२२॥

आगे लब्धि अपर्याप्तक के भवो को दिखाते है ।

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि ।
अन्तोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥१२३॥

छासठ सहसरु तीनसौ, छत्तिस मरण सँभार ।
अन्तर्मुहूर्त्त काल में, जीव छुद्र भव धार ॥१२३॥

अर्थ—एक अन्तर्मुहूर्त्त काल मे एक लब्ध्यपर्याप्तक जीवनिरतर ६६३३६ जन्म और मरण कर सकता है ॥१२३॥

आगे उनके भिन्न २ भावो को दिखाते है ।

सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे ।
छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥१२४॥

असी साठ चालीस अरु, चौविस त्रस चउ मान ।
छासठ सहसरु एकसौ, बत्तीस थावर जान ॥१२४॥

अर्थः—दोइन्द्रियलब्धिअपर्याप्तक जीव ८० तीनइन्द्रियलब्धिअपर्याप्तकजीव ६०, चौइन्द्रियलब्धिअपर्याप्तकजीव ४०, पचेन्द्रियलब्धिअपर्याप्तकजीव २४ और एकइन्द्रियलब्धिअपर्याप्तक जीव ६६१३२ भव अधिक से अधिक धारण कर सकता है ॥१२४॥

आगे थावरों के भिन्न २ भवो को दिखाते है ।

पुढविदगागणि मारु दसाहारण थूल सुहम पत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बार खं छक्कं ॥१२५॥

थावर बादर सूक्ष्म दश, अरु प्रत्येक सँभार।
इन अपूर्ण हर एक के, बारह छै हज्जार ॥१२५॥

अर्थः—सूक्ष्म पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और साधारण वनस्पति और बादर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण और प्रत्येक वनस्पति इस तरह एकेन्द्रियलब्धिअपर्याप्तकजीवों के ये ११ भेद है इन प्रत्येक के छै हजार बारह बारह (६०१२) भव है ॥१२५॥

आगे सयोगकेवली को अपर्याप्त भी दिखाते है।

पज्जतसरीरस्स य पज्जत्तुदयस्स कायजोगस्स ।
जोगिस्स अपुण्णत्तं अपुण्णजोगोत्ति णिद्दिट्ठं ॥१२६॥

पूर्ण उदय अरु पूर्ण तन, काय योग विन अंत।
योग अपूरण देख कर, कहें अपूरण संत ॥१२६॥

अर्थः—सयोगकेवलीभगवान के पर्याप्त नाम कर्म का उदय है शरीर भी पूर्ण है और काययोग भी विद्यमान है तो भी समुदघात क्रिया की अपूर्णअवस्था को देखकर सतजन अपर्याप्त कहते हैं।१२६।

आगे पूर्णापूर्ण के गुणस्थान दिखाते हैं।

लद्धि अपुण्णं मिच्छे तत्थवि विदिये च उत्थछट्ठे य।
णिव्वत्तिअपज्जत्ती तत्थवि सेसेसु पज्जत्ती ॥१२७॥

लब्ध्य-पूर्ण मिथ्यात्व में, प्रथम द्वुतिय छै चार।
निवृत्य-पर्याप्त कहें जिन, सब गुण पूर्ण सँभार॥१२७॥

अर्थ -लब्धिअपर्याप्त जीव मिथ्यात्वगुणस्थान मे ही होते हैं, निर्वृ त्तिअपर्याप्तजीवमिथ्यात्व, मासादन और अविरत गुणस्थान मे होते हैं और सब गुणस्थानो मे पर्याप्त होते है प्रमत्त गुणस्थान

मे आहार शरीर की अपूर्णता की दृष्टि से अपर्याप्त कहा है और सयोग गुणस्थान मे अपर्याप्ति का कारण दोहा नम्बर १२६ मे बता चुके है ॥१२७॥

आगे सासादन और सम्यकत्व के अभाव के स्थान दिखाते है।

हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं ।
पुण्णिदरे णहि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ॥१२८॥

अपर्याप्त दुतियादि भू, भवनत्रक सब नार ।
नहिं समकित अरु नरक में, सासा जाय न लार॥१२८॥

अर्थ—द्वितीयादिक छै नरक के नारकियो की, भवनत्रक देवों की, और सब स्त्रियो की अपर्याप्त अवस्था मे सम्यक्दर्शन नही होता और सब नारकियो की अपर्याप्तअवस्था मे सासादनगुणस्थान नही होता अर्थात् सासादनगुणस्थान के साथ जीव नरक नहीं जाता ॥१२८॥

॥ पर्याप्ति अधिकार समाप्त ॥

आगे प्राणो के स्वामियो को दिखाते है।

बाहिरपाणेहि जहा तहेव अब्भतरेहिं पाणेहिं ।
पाणंति जेहिं जीवा पाणा ते होंति णिद्दिट्ठा ॥१२९॥

बाह्य प्राण हैं जिस तरह, अभ्यांतर त्यों मान ।
इनसे जीवें जीव सब, सोही प्राण कहान ॥१२९॥

अर्थ—जैसे जीवों के श्वासोश्वासादि बाह्य प्राण है तैसे इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशमादि आभ्यतर प्राण है इन प्राणो से सब जीव जीते है इसलिये इन को प्राण कहते है ॥१२९॥

आगे प्राणो के भेद दिखाते है ।

पंचवि इंदियपाणा मणवचिकायेसु तिण्णि बलपाणा ।
आणापाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दस पाणा ॥१३०॥

पांचो इन्द्रिय प्राण हैं, मन वच तन बल प्राण ।
श्वासोश्वांस रु आयु युत, दश प्रकार सब प्राण ॥१३०॥

अर्थ—इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) ५ बल (मन, वचन, काय) ३ आयु और श्वासोश्वास ये दश प्राण है ॥१३०॥

आगे प्राणो की उत्पत्ति के कारण दिखाते है ।

वीरियजुदमदिखउवसमुत्था णोइंदियेंदियेसुबला ।
देहुदये कायाणा वचीबला आउ आउदये ॥१३१॥

क्षय उपशम मति वीर्य से, इन्द्रिय मन बल पाउ ।
देह उदय तन स्वर वचन, श्वांस आयु श्वांसायु ॥१३१॥

अर्थ—वीर्यअतराय और मतिज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से मनोबल और इन्द्रिय प्राण होते है शरीर नाम कर्म के उदय से काय बल प्राण होता है स्वर नाम कर्म के उदय से वचन बल प्राण होता है श्वासोश्वास नाम कर्म के उदय से स्वासोश्वास प्राण होता है और आयु कर्म के उदय से आयु प्राण होता है ॥१३१॥

आगे प्राणो के स्वामियो को दिखाते हैं ।

इंदियकायाऊणि य पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा ।
वीइंदियादिपुण्णेवचीमणो सण्णिपुण्णेव ॥१३२॥

होवे इन्द्रिय आयु तन, पर्याप्ता—पर्याप्त ।
श्वांस पूर्ण लट आदि वच, मन सैनी पर्याप्त ॥१३२॥

अर्थ—इन्द्रिय, काय और आयु प्राण ये पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों के होते है श्वासोश्वासप्राण पर्याप्त के होता है भाषा प्राण दो इन्द्रियादि के होता है और मन बल प्राण सैनी पर्याप्त के होता है ॥१३२॥

आगे एकेन्द्रियादि के प्राणो की सख्या दिखाते है।

दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणंतिमस्स वेऊणा।
पज्जत्तेसिदरेसु य सत्त दुगे सेसगेगूणा ॥१३३॥

दश सैनी अरु शेष के, इक इक कम दो अंत।
सात सकल अन पूर्ण के, शेष एक इक हंत ॥१३३॥

अर्थ—सैनीपर्याप्त के १० प्राण होते है असैनीपचेन्द्रियपर्याप्त के ९ प्राण होते हैं चौइन्द्रियपर्याप्त के ८ प्राण होते है तीनइन्द्रियपर्याप्त के ७ प्राण होते है दोइन्द्रियपर्याप्त के ६ प्राण होते हैं और एकेन्द्रियपर्याप्त के ४ प्राण होते है। सैनी और असैनीपंचेन्द्रियअपर्याप्त के ७ प्राण होते है चौइन्द्रियअपर्याप्त के ६ प्राण होते है तीनइन्द्रिय अपर्याप्त के ५ प्राण होते है दोइन्द्रिय अपर्याप्त के ४ प्राण होते है और एकेन्द्रिय अपर्याप्त के ३ प्राण होते है ॥१३३॥

॥ प्राणाधिकार समाप्त ॥

आगे सज्ञा का स्वरूप और भेद दिखाते हैं।

इह जाहि वाहियावि य जीवा पावंति दारुणं दुक्खं।
सेवंतावि य उभये ताओ चत्तारि सण्णाओ ॥१३४॥

जिनकी वांछा धार कर, जीव लहे अति दुक्ख।
उभय लोक दुख पावता, सो संज्ञा चउ मुक्ख ॥१३४॥

अर्थ—जिनकी वाछा धारण करके यह जीव इस लोक और पर

लोक मे घोर दुक्ख पाता है उसको सज्ञा कहते है वह सज्ञा चार प्रकार की होती हैं आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ॥१३४॥

आगे आहार सज्ञा का स्वरूप दिखाते है।

आहारदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोठाए।
सादिदरुदीरणाए, हवदि हु आहारसंएणा हु ॥१३५॥

भोजन लख या याद कर, खाली पेट निहार।
उदय आसाता के भये, संज्ञा हो आहार ॥१३५॥

अर्थ—भोजन के देखने से, पूर्व भोजन किया था उसके स्मरण से, खाली पेट हो जाने से अथवा असातावेदनी के उदय से आहार संज्ञा होती है ॥१३५॥

आगे भय सज्ञा का स्वरूप दिखाते हैं।

अइभीमदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्तीए।
भयकम्मुदीरणाए भयसएणा जायदे चदुहिं ॥१३६॥

विकट वस्तु लख याद कर, हीन शक्ति को पाय।
उदय कर्म भय के भये, भय संज्ञा उपजाय॥१३६॥

अर्थ—भयकर वस्तु को देखने से, पूर्व देखी हुई भयकर वस्तु के स्मरण से, शक्ति हीनता से अथवा भय कर्म के उदय से भय सज्ञा होती है ॥१३६॥

आगे मैथुन सज्ञा का स्वरूप दिखाते है।

पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए।
वेदस्सुदीररणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं ॥१३७॥

पौष्टिक रस को सेय कर, लख नारी या याद।
वेद कर्म के उदय से, मैथुन संज्ञा लाद ॥१३७॥

अर्थ–पोष्टिकरसदारभोजन करने से, स्त्री के रूप देखने से, स्त्री के भोग स्मरण से अथवा वेद कर्म के उदय से मैथुन सज्ञा होती है ॥१३७॥

आगे परिग्रह सज्ञा का स्वरूप दिखाते है ।

उवयरणदंसणेण य तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य ।
लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा ॥१३८॥

भोग वस्तु लख लाभ ले, या संचय सुख पाय ।
लोभ कर्म के उदय से, परि-ग्रह संज्ञा आय ॥१३८॥

अर्थ–भोगोपभोग की वस्तु को देखकर, भोगोपभोग की वस्तु के लाभ से, भोगोपभोग की वस्तु के सचय से अथवा लोभ कर्म के उदय से परिग्रह सज्ञा होती है ॥१३८॥

आगे सज्ञायो के स्वामियो को दिखाते है ।

णट्ठपमाए पढ़मा सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा ।
सेसा कम्मत्थित्तेणुव यारे णत्थि णहि कज्जे ॥१३९॥

संज्ञा प्रथम न सात में; और न कारन कोय ।
शेष कहीं लख उदय को, कार्य न कोई होय ॥१३९॥

अर्थ—आहार संज्ञा प्रमत्तगुणस्थान तक होती है कारण असाता वेदनी का उदय यहाँ तक ही होता है और ध्यान अवस्था भी नही है। भयसज्ञा का सहकारीकर्म अपूर्वकरण गुणस्थान तक,मैथुनसज्ञा का सहकारीकर्म अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक और परिग्रहसज्ञा का सहकारीकर्म सूक्ष्मसापरायगुणस्थान तक होता है किन्तु इन गुणस्थानों मे जीव की ध्यानअवस्था है इसकारण इन सज्ञाओ का कार्य कुछ दिखलाई नही देता कर्म के उदय को देख कर कह सकते है ॥१३९॥

॥ सज्ञाअधिकार समाप्त ॥

आगे पुनः मगलाचरणकरते हैं।

धम्मगुणमग्गणाहयमोहारिबल जिणं णमंसित्ता।

मग्गणमहाहियारं विविहहियार भणिस्सामो ॥१४०॥

मार्गणा से मोह को, हता उन्हें नम कार।

मारगणा अरु मध्य के, कहूँ सर्व अधिकार ॥१४०॥

अर्थ–जिन्होंने १४ मार्गणाओं के परिज्ञान से मोह को जीत लिया है ऐसे जिनेंद्र भगवान को नमस्कार करके मार्गणा और मार्गणा के मध्य के जितने अधिकार है उनको कहता हूँ ॥१४०॥

आगे मार्गणा का स्वरूप दिखाते है।

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा।

ताओ चोदस जाणे सुयणाणे मग्गणा होंति ।१४१।

जैसा जिनवर ने कहा, तैसा जीव विचार।

किया जाय वह मार्गणा, चौदह भेद सँभार॥१४१॥

अर्थ–जैसा श्री जिनेन्द्र भगवान ने जीव का स्वरूप वर्णन किया है तैसा जीव का स्वरूप जिसमें आजावे उसको मार्गणा कहते है उस मार्गणा के १४ भेद हैं ॥१४१॥

आगे मार्गणाओं के १४ नाम दिखाते हैं।

गइइंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य।

संजमदंसणलेस्सा भवियासम्मत्तसण्णिआहारे ॥१४२॥

गति इन्द्रिय तनयोग अरु; वेद कषाय विचार।

संयम दृग लेश्या भविक, समकित समनाहार॥१४२॥

अर्थ—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, सैनी और आहार ये सब १४ मार्गणा है ॥१४२॥

आगे मध्य मार्गणाओ के भेद और उनका विरहकाल दिखाते है।

उवसमसुहमाहारे वेगुव्वियमिस्सपरअपज्जत्ते ।
सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणा अट्ठ ॥१४३॥
सत्तदिणा छम्मासा वासपुधत्त च बारसमुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एकसमयो दु ॥१४४॥

उपशम का दिन सात है, सूक्ष्म मास छै धार ।
विक्रिय बारह मुहूर्त्ता, वर्ष भिन्न आहार ॥१४३॥
नर अपूर्ण सासादना, और मिश्र गुणथान ।
पल्य असंख्ये वर विरह, जघन एक क्षण जान ॥१४४॥

अर्थ—नाना जीवो की अपेक्षा उपशमसम्मक्त्व का उत्कृष्ट विरह (अतर) काल सात दिन है, सूक्ष्मसांपराय का उत्कृष्ट विरह काल छै महिना हैं, आहारककाययोग और आहारमिश्रकाययोग का उत्कृष्ट विरह काल वर्ष पृथक्त्व (३ वर्ष से अधिक और ९ वर्ष से कम) है विक्रियमिश्रकाययोग का उत्कृष्ट विरह काल १२ मुहूर्त्त है अपर्याप्त मनुष्य, सासदन और मिश्रगुणस्थान का उत्कृष्ट विरह काल पल्य के असख्यातवे भाग है और जघन्यकाल सबका एक समय है पश्चात् कोई न कोई जीव उपरोक्त उपशमसम्यक्त्वादि आठ स्थानों को ग्रहण करता है ॥१४३–१४४॥

आगे मार्गणाओ के प्रभेदो का विरह काल दिखाते है।

पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा ।
विरदीए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोधव्वो ॥१४५॥

देश प्रथम उपशम सहित, चौदह दिन उत्कृष्ट।
पन्द्रह दिन प्रमताप्रमत, जघन एक क्षण इष्ट॥१४५॥

अर्थ—प्रथम उपशम सहित देशविरत का उत्कृष्ट विरह काल १४ दिन है। प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान का उत्कृष्ट विरह काल १५ दिन है पश्चात् कोई न कोई जीव इन गुणस्थानो को ग्रहण करता है और जघन्य विरह काल सब का एक समय है ॥१४५॥

उपशमसम्यक्त्व दो प्रकार का होता है प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व—जिसमे मिथ्यात्व और अनतानु वधी का उपशम होता है उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते है इसमे ५ प्रकृतियो का उपशम अनादि मिथ्यादृष्टि के होता है और ७ प्रकृतियो का उपशम सादि मिथ्यादृष्टि के होता है।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्व— जिसमे मिथ्यात्व तीन का उपशम और अनतानुवधी की विसयोजन (अप्रत्याख्यान रूप) होती है उसको द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते है। यह सादि मिथ्यादृष्टि और क्षयोपशम सम्यक्दृष्टि के होता है ॥१४५॥

आगे गति मार्गणा का स्वरूप दिखाते है।

गइउदयजपज्जाया चउगइगमणस्सहेउ वा हु गई।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवगइत्तिय हवे चउधा ॥१४६॥

गती उदय पर्याय या, गमन हेतु चहुँ गत्य।
सुरनर नारकपशू युत, चार भेद गति सत्य॥१४६॥

अर्थ .—जो गति नाम कर्म के उदय से गति उत्पन्न होती है उसको गति कहते है अथवा चारो गतियो के गमन के कारण को गति कहते है वह गति चार प्रकार की होती है नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव ॥१४६॥

आगे नरकगति वालो का स्वरूप दिखाते है।

ण रमंति जदो णिच्च दव्वे खेत्ते य कालभावे य।
अण्णोण्णेहिं य जह्मातह्मा ते णारया भणिया ॥१४७॥

द्रव्य क्षेत्र क्षण भाव में, रमें न इक क्षण कोय।
प्रीति परस्पर नहि करे, वही नारकी जोय॥ १४७॥

अर्थ —जो नरक के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे एक भी समय प्रीति नही करता हो, परस्पर मे प्रीति नही करता हो और जिनके नरकगति का उदय हो उसको नारकी कहते है ॥१४७॥

आगे तिर्यंच गति वालो का स्वरूप दिखाते है।

तिरियंति कुडिलभावं सुविउलसण्णा णिगिट्ठिमण्णाणा।
अच्चंतपाववहुला तह्मा तेरिच्छया भणिया ॥१४८॥

कुटिल भाव संज्ञा प्रकट, अरु भारी अज्ञान।
अधिक पाप करता सदा, सो, तिर्यंच पिछान॥१४८॥

अर्थ .—जो सदा कुटिल भाव रखता हो, आहारादि सज्ञा गुप्त न सेवता हो, जो भारी अज्ञानी हो, जो मन वचन तथा काया से अधिक पाप करता हो और जिसके तिर्यंच गति का उदय हो उसको तिर्यंच कहते है ॥१४८॥

आगे मनुष्य गति वालो का स्वरूप दिखाते है।

मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जह्मा।
मण्णुब्भवा य सव्वे तह्मा ते माणुसा भणिदा ॥१४९॥

हेया - हेय विचार युत, शक्ति स्मरण भार।
अति प्रयोग मन का करे, सोमानुष निरधार॥१४९

अर्थ—जो हेय और उपादेय का विचार रखता हो, जो स्मरण-शक्ति का प्रयोग अधिक करता हो, जो मन से काम अधिक लेता हो और जिसके मनुष्यगति का उदय हो उसको मनुष्य कहते हैं ॥१४९॥

आगे तिर्यंच और मनुष्यो के भेद दिखाते है।

सामण्णा पंचिंदी पज्जत्ता जोणिणी अपज्जत्ता।
तिरिया णरा तहावि य पंचिंदियभंगदो हीणा ॥१५०॥

पंचेन्द्रिय सामान्य पशु, पशुनी पूर्णापूर्ण।
मनुप भेद समान्य अरु, नरनी पूर्णापूर्ण ॥१५०॥

अर्थ—तिर्यंच ५ प्रकार के होते हैं सामान्यतिर्यंच, पचेन्द्रिय-तिर्यंच, तिर्यंचनी, पर्याप्ततिर्यंच और अपर्याप्ततिर्यंच तथा मनुष्य चार प्रकार के होते हैं सामान्य मनुष्य, पर्याप्तमनुष्य, मनुष्यनी और अपर्याप्तमनुष्य ॥१५०॥

आगे देवगति वालो का स्वरूप दिखाते है।

दीव्वंति जदो णिच्च गुणेहिं अट्ठेहि दिव्वभावेहिं।
भासतदिव्वकाया तम्हा ते वण्णिया देवा ॥१५१॥

सदा सुखी अठ ऋद्धियुत, गमन न रोके कोय।
तरुण रूप भापे सदा, वही देवगति जोय ॥१५१॥

अर्थ—जो सदा सुखी रहता हो, अणिमादिऋद्धियो से सहित हो, जिसका विहार कोई रोक नही सकता हो, जो सदा तरुण रहता हो, और जिसके देवगति का उदय हो, उसको देव कहते है ॥१५१॥

आगे सिद्ध गति वालो का स्वरूप दिखाते है।

जाइजरामरणभया संयोगवियोग दुक्खसण्णाओ।
रोगादिगा य जिस्से ण संति सा होदि सिद्धगई ॥१५२॥

जन्म जरा भय मरण नहिं, नहिं संयोग वियोग।
दुख संज्ञा रोगादि नहिं, वही सिद्ध गति योग॥१५२॥

अर्थ—जहा पर जन्म, मरण, बुढापा, भय, सयोग, वियोग, आहारादि सज्ञा और रोगादिक व्याधि नही है वहा पर सिद्ध गति होती है ॥१५२॥

आगे नारकियो की सख्या दिखाते है।

सामण्णा णेरइया घणअगुंलविदयमूलगुण सेढी।
ाविदियादि वारदसअडछत्तिदुणिजपदाहिदासेढी ॥५३॥

सब नारक सामान्य से, घन अंगुल के दोय।
वर्गमूल से गुणित हैं, जगश्रेणी वत् जोय ।५३-१।
बारह दश अठ छै तिदो, वर्गमूल का भाग।
क्रमसे श्रेणीमें दियें, दुतियादिक की जाग।५३-२।

अर्थ-घनागुल के दुतीय वर्गमूल से जगत्श्रेणी का गुण करने से जो सख्या निकलती है उतनी सव नारकियो की सख्या है। क्रम से जगत्श्रेणी के १२ वे १० वे ८ वे ६ वे ३ वे और २ वे वर्गमूल से जगत्श्रेणी मे ही भाग देने से जो लब्ध आवे उतना दुतीयादि नरक के नारकियो की सख्या (असख्यात) है ॥१५३॥

आगे प्रथम पृथ्वी के नारकियो की सख्या दिखाते है।

हेट्ठिमछप्पुढवीणं रासिविहीणो दु सव्वरासी दु।
पढमावणिह्मि रासी णेरइयाणं तु णिद्दिट्ठो ॥१५४॥

दुतियादिक छै नरक की, जितनी संख्या होय।
उसे घटा सामान्यमें, वही प्रथम भू जोय॥१५४॥

अर्थ—दुतियादिक छै नरक के सब नारकियो की जितनी सख्या है उसको प्रथमादिक सब नारकियो की सख्या मे घटा देने से जो सख्या शेष रहे उतने प्रथम नरक के नारकी है ॥१५४॥

आगे तिर्यंचपर्याप्तो की सख्या दिखाते है।

संसारी पंचक्खा तप्पुण्णा तिगदिहीणया कमसो।
सामण्णा पंचिदी पंचिदियपुण्णतेरिक्खा ॥१५५॥

संसारी में तीन गति, कम कर सब तिर्यंच।
पंचेन्द्रिय में तिगति कम, पंचेन्द्रिय तिर्यंच ॥५५—१
पंचेन्द्रिय पर्याप्त में, त्रस गति कम कर शेष।
पंचेन्द्रिय पर्याप्त पशु, संख्या कही जिनेश ॥५५—२

अर्थ—सब ससारी जीवो की सख्या मे से देव, नारकी और मनुष्यो की सख्या कम कर देने से जो सख्या शेष रहे उतने सब तिर्यंच हैं। सब पचेन्द्रियो की सख्या मे से देव, नारकी और मनुष्यों की सख्या कम कर देने से जो सख्या शेष रहे उतने पचेन्द्रिय-तिर्यंच हैं। सब पर्याप्त पचेन्द्रियो की सख्या मे से पर्याप्त देव, नारकी और मनुष्यो की सख्या कम कर देने से जो सख्या शेष रहे उतने पर्याप्त पचेन्द्रियतिर्यंच है ॥१५५॥

आगे पशुनी और अपर्याप्त तिर्यचो की सख्या दिखाते है।

छस्सयजोयणकदिहिदजगपदरं जोणिणीण परिमाणं।
पुण्णूणा पंचक्खा तिरियअपज्जत्त परिसंखा ॥१५६॥

छै सौ योजन वर्ग का, जगत प्रतर में भाग।
लब्ध बचे उतनी यथा, पशुनी संख्या जाग ॥५६—१

पंचेन्द्रिय पशु राशि में, पंचेन्द्रिय पशु पूर्ण।
कम कर संख्या जो बचे, पंचेन्द्रिय अनपूर्ण ॥५६–२

अर्थ—छै सौ योजन के वर्ग का जगत्प्रतर मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतनी पशुनी है और पचेन्द्रियतिर्यंचो की सख्या मे पर्याप्त-पचेन्द्रियतिर्यंचो (पशु, पशुनी) की सख्या कम कर देने से जो सख्या शेष रहे उतने अपर्याप्तपचेन्द्रियतिर्यंच है ॥१५६॥

आगे सामान्य मनुष्यो की सख्या दिखाते है।

सेढीसूईअंगुलआदिमतदियपदभाजिदेगूणा ।
सामण्णमणुसरासी पंचमकदिघनसमा पुण्णा ॥१५७॥

सूक्ष्मांगुल के प्रथम त्रय, वर्गमूल का भाग।
जगश्रेणी में देय कर, इक कम सब नर लाग ५७–१
वर्गरूप दो धार से, पैदा पंचम वर्ग।
उस घन के परिणामवत्, नर अपूर्ण है सर्ग ॥५७–२॥

अर्थ—सूक्ष्मागुल के प्रथम और तृतीयवर्गमूल का जगत्श्रेणी मे भाग देने से जो लब्ध आवे उसमे एक कम करने से जो सख्या शेष रहे उतने सब मनुष्य है और इसमे दो रूप वर्ग धारा से उत्पन्न पाचवे वर्ग के घन बराबर पर्याप्तमनुष्य है ॥१५७॥

आगे पर्याप्त मनुष्यो की सख्या स्पष्ट दिखाते है।

तललीनमधुगविमल धूमसिलागाविचोरभयमेरू ।
तट हरिखझसा होंति हु माणुसपज्जत्त संखंका ॥१५८॥

छ नि ति ख प न ति च प ति न प स, ति ति च छ दु च इक पांच।
दु छ इ अ दु दु न स अंक रख, मानुष संख्या बांच ॥१५८॥

अर्थ—७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ अंक रखकर के पढकर देखो जितनी यह सख्या होती है उतने पर्याप्त-मनुष्य है ॥१५८॥

आगे मनुष्यस्त्री और अपर्याप्तमनुष्यो की सख्या दिखाते है।

पज्जत्तमणुस्साण तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं।
सामण्णा पुण्णूणा मणुवअपज्जत्तगा हौंति ॥१५९॥

मनुष पूर्ण की राशि में, त्रय चौथाई नार।
इन्हें घटा सामान्य में, मनुष्य अपूर्ण निहार ॥१५९॥

अर्थ— जितनी पर्याप्तमनुष्यो की सख्या दोहा नं० १५८ मे बतलाई है उसमे ¾ तीन चौथाई स्त्रिया है और पर्याप्तमनुष्यों (स्त्री, पुरुष) की सख्या को सामान्य मनुष्य सख्या मे कम करने से शेष अपर्याप्तमनुष्य है। ॥१५९॥

आगे व्यतर और ज्योतियो की सख्या दिखाते है।

तिण्णिसयजोयणाण वेसदछप्पण्ण अंगुलाणं च।
कदिहिदपदरं वेतरजोइसियाणं च परिमाणं ॥१६०॥

त्रय सौ योजन वर्ग का, जगत-प्रतर में भाग।
देकर आवे लब्ध जो, व्यंतर संख्या जाग ॥६०।१
दो सौ छप्पन महांगुल, वर्ग प्रतर में भाग।
देकर आवे लब्ध जो, ज्योतिष संख्या जाग ॥६०।२

अर्थ—-३०० सौ योजन के वर्ग का जगत्प्रतर मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतने व्यतरदेव है और २५६ प्रमाणगुल के वर्ग का जगत्प्रतर मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतने सब ज्योतिषीदेव है ॥१६०॥

आगे भवनवासी और सौधर्मईसान की सख्या दिखाते है।

घणअंगुलपढमपदं तदियपदं सेढिसगुणं कमसो।
भवणे सोहम्मदुगे देवाणं होदि परिमाण ॥१६१॥

जग श्रेणी के साथ में, घन अंगुल के आदि।
वर्गमूल का गुणाकर, भवन जु संख्या लादि ॥६१।१
जग श्रेणी में तीसरे, वर्ग मूल का मान।
गुणा किये फल प्रथम अरु, दुतिय स्वर्ग का जान॥६१।२

अर्थ—जगत्श्रेणी मे घनागुल के प्रथम वर्गमूल का गुणा करने से जो सख्या आवे उतने सव भवनवासो देव है और उस जगत्श्रेणी मे तृतीय वर्गमूल का गुणा करने से जो सख्या आवे उतने सव सौधर्म और ईसानस्वर्ग के देव है ॥१६१॥

आगे सनत्कुमार से अपराजित तक की सख्या दिखाते है।

तत्तो एगारणवसगपणचउणियमूलभाजिदा सेठी।
पल्लासंखेज्जदिमा पत्तेयं आणदादिसुरा ॥१६२॥

फिर ग्यारह नव सातपन, चउ से भाजित श्रेण।
पल्य असंख्ये भाग वत्, आनत आदिक लेन॥१६२॥

अर्थ—जगत्श्रेणी मे जगत्श्रेणी के ११ वर्गमूल का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने सनत्कुमार-महेन्द्र विमानवासीदेव है, नव मे वर्ग-मूल का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर विमानवासी देव है सातवे वर्गमूल का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने लातव-कापिष्ठ विमानवासीदेव है। पाचवे वर्गमूल का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने शुक्र-महाशुक्र विमानवासीदेव है और चौथे वर्गमूल का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने सतार-सहस्त्रार विमानवासीदेव

है तथा पल्य के असख्यातवे २ भाग आनत, प्राणत, आनत, अच्युत, नवग्रैविक, नव अनुदिश, विजय, जैयन्त, जयत और अपराजित तक २६ विमान वासी देव है ॥१६२॥

आगे सर्वार्थसिद्धि और सव देवो की सख्या दिखाते हैं।

तिगुणा सत्तगुणा वा सव्वट्ठा माणुसीपमाणादो ।
सामण्णदेवरासी जोइसियादो विसेसहिया ॥१६३॥

तिगुणा अथवा सतगुणा, नरनी से सुर अंत ।
ज्योतिषसे कुछ अधिक ही, सब सुरसंख्या भंत ॥१६३

अर्थ — सर्वार्थसिद्धि के देवो कीसख्या मनुष्यस्त्रियो की सख्या से कोई आचार्य तिगुणी और कोई आचार्य सतगुणी वतलाते है तथा सव देवो की सख्या ज्योतिपदेवो की सख्या से कुछ अधिक है कारण सव देवो मे ज्योतिपीदेव अधिक है ॥१६३॥

॥ गति-मार्गणा-अधिकार समाप्त ॥

आगे इन्द्रियो का स्वरूप दिखाते हैं।

अहमिंदा जह देवा अविसेसं अहमहंति मण्णंता ।
ईसंति एक्कमेक्कं इंदा इव इंदिये जाण ॥१६४॥

जैसे सव अहमिन्द्र सुर, निज निज विभव स्वतंत्र ।
तैसे पांचों इंद्रियां, निज निज विषय स्वतंत्र ॥१६४॥

अर्थ—जैसे सव ग्रैवेयकादिविमानवासी देव अपने २ विभव को स्वतत्र भोगते है तैसे पाचो ही इन्द्रियाँ अपने अपने विषय को स्वतत्र जानती है ॥१६४॥

आगे इन्द्रियो के भेद दिखाते है।

मदिआवरणखओवसमुत्थविशुद्धी हु तज्जवोहो वा।
भविंदियं तु दव्व देहुदयजदेहचिण्हं तु ॥१६५॥

क्षय उपशम मति वरण से, ज्ञान उपजता भिन्न।
भावेन्द्रिय अरु द्रव्य को, देह उदय तन चिन्न ॥१६५॥

अर्थ—इन्द्रिय दो प्रकार की होती है भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय। जिसमे मतिज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से जो इन्द्रिय ज्ञान उपजता है उसको भावेन्द्रिय कहते है और शरीर नाम कर्म के उदय से जो शरीर मे इन्द्रिय चिन्ह होते है उनको द्रव्येन्द्रिय कहते है ॥१६५॥

आगे इन्द्रिय अपेक्षा से जीवो मे भेद दिखाते है।

फासरसगंधरूवे सद्दे णाणं च चिण्हयं जेसिं।
इगिवितिचदु पंचिंदिय जीवा णियभेय भिण्णाओ ॥१६६॥

चिन्ह रु उससे फरसरस, गंधवर्ण ध्वनि ज्ञान।
उनको इक वे ते चतुर, पंचेन्द्रिय जिय जान ॥१६६॥

अर्थ—जिनके द्रव्येन्द्रियो का वाह्य चिन्ह हो और उस चिन्ह से स्पर्श रस, गध, वर्ण और शव्द का ज्ञान होता हो उसको एकेन्द्रिय, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीव कहते है ॥१६६॥

आगे क्रम से इन्द्रियो की वढती दिखाते है।

एइंदियस्स फुसणं एक्कं वि य होदि सेसजीवाणं।
होंति कमउड्ढियाइं जिव्भाघाणच्छिसोत्ताइं ॥१६७॥

एकेन्द्रिय के मात्र इक, परसन इन्द्रिय मान।
क्रम से बढ़ती रसन अरु, घ्राण चक्षु अरु कान ।१६७।

अर्थ—एकेन्द्रिय के केवल स्पर्शन इन्द्रिय होती है और शेपो के

क्रम से रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन्द्रिय अधिक होती है ॥१६७॥

आगे असैनी तक इन्द्रियविषय की हद दिखाते हैं।

धणुवीसडदसयकदी जोयणछादालहीणतिसहस्सा ।
अट्ठसहस्स धणूणं विसया दुगुणा असण्णित्ति ॥१६८॥

चउ-सौ चौसठ सौ—धनुष, परसन रसना घ्राण ।
योजन तीन हजार में, छालिस कम दृग माण ॥१६८-१
यही असैनी जीव तक, दुगुणा दुगुण सँभार ।
विषय असैनी कर्ण का, धनुष साठ हज्जार ॥६८-२

अर्थ—एकेन्द्रिय के स्पर्शनइन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र ४०० धनुष है आगे असैनी पचेन्द्रिय तक दूना २ है। दो इन्द्रिय के रसना इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ६४ धनुष है आगे असैनी पचेन्द्रिय तक दूना २ है। तीन इन्द्रिय के घ्राणइन्द्रिय का उत्कृष्टविषयक्षेत्र १०० धनुष है आगे असैनीपचेन्द्रिय तक दूना २ है। चौइन्द्रिय के चक्षुइन्द्रिय का उत्कृष्टविषयक्षेत्र २९५४ योजन है आगे असैनी-पचेन्द्रिय तक दूना है और असैनी पचेन्द्रिय के कर्ण इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ८००० धनुष है ॥१६८॥

आगे सैनी के इन्द्रिय विषय की हद दिखाते हैं।

सण्णिस्स बार सोदे तिण्हं णव जोयणाणि चक्खुस्स ।
सत्तेताल सहस्सा वेसदतेसट्ठिमदिरेया ॥१६९॥

क्रम से नव नव नव तथा, सेतालीस हजार ।
दो सौ त्रेसठ कुछ अधिक, बारह योजन धार ॥१६९॥

अर्थ—सैनी के स्पर्शन, रसना और घ्राणइन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र ९-९ योजन है, चक्षुइन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र

४७२६३ से कुछ अधिक योजन है और कर्णइंद्रिय का उत्कृष्टविषय क्षेत्र १२ योजन है ॥१६९॥

आगे चक्षु के उत्कृष्ट विपय की उत्पत्ति दिखाते है।

तिण्णिसयसट्ठिविरहिदलक्खं दसमूलताडिदे मूलं ।
णवगुणिदे सट्ठिहिदे चक्खुप्फासस्स अद्धाणं ॥१७०॥

तिसत साठ कम लाख इक, दश गुण करके मूल।
फिर नव गुण कर साठ का, भाग विषय दृग थूल।।१७०

अर्थ—३६० योजन कम १००००० योजन जम्बूद्वीप के चौडे क्षेत्र का वर्ग करके और उसका दशगुना करके वर्गमूल निकाल लेने से जो राशि उत्पन्न होती है उसमे ९ का गुणा और ६० का भाग देने से चक्षु का उत्कृष्टविपयक्षेत्र होता है ॥१७०॥

भावार्थ—सूर्य के भ्रमण करने का क्षेत्र ५१२ योजन चौडा है जिसमे ३३२ योजन लवणसमुद्र मे और १८० योजन जम्बूद्वीप मे है इसलिए जम्बूद्वीप के दोनो ओर का ३६० योजन क्षेत्र कम करने से ९९६४० योजन जम्बूद्वीप की चौडाई रहती है इसकी परधि ३१५०८९ होती है इस भीतरी परिधि को सूर्य अपने भ्रमण से ६० मुहुर्त्त मे समाप्त करता है और निपधगिर के एक भाग से दूसरे भाग तक की भीतरी गली को १८ मुहुर्त मे समाप्त करता है इसके बीच मे अयोध्या नगरी है इसको ९ मुहुर्त्त मे समाप्त करता है इसलिये परवि मे ९ का गुणा और ६० का भाग देने से चक्षु का उत्कृष्ट विपय ४७२६३ से कुछ अधिक आता है कारण अयोध्या मे भरतादि चक्रवर्ती सूर्य के उदय होते ही सूर्य मे स्थित जिनविव का दर्शन करते हैं ॥१७०॥

आगे इन्द्रियो का आकार दिखाते है।

चक्खू सोदं घाणं जिब्भायारं मसूरजवणाली ।
अतिमुत्तखुरप्पसमं फासं तु अणेयसंठाणं ॥१७१॥

दृग मसूर नलिका करण, तिली फूलवत् घ्राण।
खुरपा वत् रसना तथा, बहुविधि परसन जान ॥१७१॥

अर्थ—नेत्र का मसूर नाज के समान आकार है। कर्ण का नली के समान आकार है घ्राण का तिली के फूल के समान आकार है रसना का खुरपा के समान आकार है और स्पर्शन इन्द्रिय का अनेक प्रकार का आकार है ॥१७१॥

आगे भावेन्द्रिय की अवगाहना दिखाते है।

अंगुलअसंखभागं संखज्जगुणं तदो विसेसहिय।
तत्तो असंखगुणिदं अंगुलसंखेज्जय तत्तु ॥१७२॥

अंगुल भाग असंख्य गुणि, संख्य रु भाग असंख्य।
गुणिअसंख्य क्रमसे अधिक, भागघनांगुल संख्य।१७२

अर्थ—आत्म प्रदेशो की अपेक्षा चक्षु इन्द्रियो की अवगाहनाघनागुल के असंख्यातवे भाग है इससे संख्यातगुणी अधिककर्णइन्द्रिय की अवगाहना है। इससे पल्य के असंख्यातवे भाग अधिक घ्राणइन्द्रिय की अवगाहना है इससे पल्य के असंख्यातवे भाग से गुणी अधिक रसनाइन्द्रिय की अवगाहना है किन्तु सामान्य की अपेक्षा सब की घनागुल के संख्यातवे भाग है ॥१७२॥

आगे स्पर्शन इन्द्रिय की अवगाहना दिखाते है।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयह्मि ।
अंगुलअसंखभागं जघण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥१७३॥

अपर्याप्त सूक्ष्म निगो, जन्म बाद क्षण तीन।
अंगुल भाग असंख्य वत्, अवर मच्छ वर चीन १७३।

अर्थ—स्पर्शन इन्द्रिय की जघन्य अवगाहन घनागुल के असंख्या-

तवे भाग वरावर है जो कि सूक्ष्मलब्धिअपर्याप्तनिगोदिय जीव के जन्म के तीन समय पश्चात् होती है और उत्कृष्टअवगाहन महा मच्छ के होती है जो कि सख्यातघनागुल के वरावर है ।।१७३।।

आगे सिद्ध भगवान की महिमा दिखाते है।

णवि इंदियकरणजुदा अवग्गहादीहिं गाहया अत्थे ।
णेव य इंदियसोक्खा अणिदियाणतणाणसुहा ।।१७४।।

इन्द्रिय क्रिया न इन्द्रियां, इन्द्रिय सुक्ख न कोय।
लखे न इन्द्रिय ज्ञान से, नंत ज्ञान सुख दोय।।१७४।।

अर्थ—सिद्ध भगवान के न इन्द्रिया है न इन्द्रियो की कोई क्रिया है न वे इन्द्रियज्ञान से पदार्थो को जानते है वे तो आत्मीक ज्ञान से सव पदार्थो को एक साथ जानते है और आत्मीक सुख को सदा भोगते है ।।१७४।।

आगे सव जीव राशि की सख्या दिखाते है।

थावरसंखपिपीलियभमरमणुस्सादिगा सभेदा जे ।
जुगवारमसंखेज्जाणताणंता णिगोदभवा ।।१७५।।

थावर लट चींटी भ्रमर, मनुषादिक जो होद ।
असंख्यात असंख्याते, नंतानंत निगोद ।।१७५।।

अर्थ—स्थावर (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति) लट, चीटी भ्रमर और मनुष्यादि (मनुष्य, देव, नारकी) असख्यात असख्यात है और शेप निगोद (साधारण) वनस्पति अनतानत है ।।१७५।।

आगे एकेन्द्रिय की सख्या दिखाते है।

तसहीणो संसारी एयक्खा ताण संखगा भागा ।
पुण्णाणं परिमाण संखेज्जदिम अपुण्णाण ।।१७६।।

संसारी में त्रस घटा, शेष एकेन्द्रिय लाग।
संख्य भाग में भाग बहु, पूर्ण इतर इक भाग।१७६।

अर्थ—ससारी जीवो की सख्या मे से त्रस जीवो की सख्या कम कर देने मे जो शेष रहे उतने एकेन्द्रिय जीव है। उसके सख्यात भागो मे मे एक भाग बराबर अपर्याप्त (लब्धि अपर्याप्त) जीव है शेष बहु भाग बराबर पर्याप्त जीव हैं ॥१७६॥

आगे एकेन्द्रिय के भेद दिखाते है।

बादरसुहमा तेसिं पुण्णापुण्णंत्ति छव्विहाणंपि ।
तक्कायमग्गणाये भणिज्जमाणक्कमो णेयो ॥१७७॥

बादर सूक्षम के विषैं, पूर्ण इतर चउ भंग।
काय मार्गणा के विषैं, लिखें जु संख्या अंग।१७७।

अर्थ—एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते है बादर और सूक्ष्म। इनमे भी दो-दो भेद और होते है पर्याप्त तथा अपर्याप्त। इनकी संख्या आगे काय मार्गणा मे लिखेंगे। ॥१७७॥

आगे त्रस जीवो की सख्या दिखाते है।

बितिचपमाणमसंखेणवहिद पदरंगुलेण हिदपदरं ।
हीणकमं पडिभागो आवलियासंखभागो दु ॥१७८॥

अगडित प्रांगुल भाग का, जगत प्रतर में भाग।
त्रस वे कम कम पंच तक, आवलि असंख्य भाग।१७८।

अर्थ—प्रतरागुल के असख्यातवे भाग का जगतप्रतर मे भाग देने मे जो लब्ध आवे उतने सब त्रस जीव है किन्तु दोइन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक क्रम से आवली के असख्यातवें भाग कम २ हैं ॥१७८॥

आगे प्रत्येक त्रस की सख्या स्पष्ट दिखाते है।

वहुभागे समभागो चउण्णमेदेसिमेकभागह्मि।
उत्तकमो तत्थवि वहुभागो वहुगस्स देओ दु ॥१७९॥

पल्य असंख्ये भाग का, त्रस में भाग कराय।
लब्ध अलग रख शेषकी, चउत्रस तुल्य वटाय।७६-१
चार भाग कर लब्ध के, दो को दे त्रय भाग।
शेष भाग के चार कर, त्रय को दे त्रय भाग।७६-२
शेष भाग के चार कर, चउ को दे त्रय भाग।
पंचेन्द्रिय को शेष दे, त्रस चउ संख्या जाग।७६-३

अर्थ—त्रस सख्या मे आवली के असख्यातवे भाग का भाग देकर जो लब्ध आवे उसको अलग रख कर शेप त्रस सख्या के चार भाग कर चारो त्रसो को वरावर देकर फिर उस लब्ध के चार भाग मे से तीन भाग दोइन्द्रिय को देकर फिर उस एक भाग मे से तीन भाग तेइन्द्रिय को देकर फिर उस एक भाग मे से तीन भाग चौइन्द्रिय को और एक भाग पचेन्द्रिय को देने से जितना जिस पर आता है उतनी उसकी सख्या है यहा कल्पना करिये कि त्रस सख्या २५६ है आवली का असख्यातवा भाग ४ है २५६ मे ४ का भाग देने से लब्ध ६४ आता है इसको अलग रखकर शेष त्रस सख्या १९२ को वरावर चारो त्रसो को वरावर दिये तो ४८-४८ आये फिर उस लब्ध (६४) के तीन भाग (४८) कर दोइन्द्रिय को दिये फिर उस एक भाग (१६) के तीन भाग (१२) कर तेइन्द्रिय को दिये फिर उस एक भाग (४) के तीन भाग (३) कर चौइन्द्रिय को दिये और एक भाग (१) पचेन्द्रिय को दिया तव क्रम से ९६-६०,५१ और ४९ आये ॥१७९॥

आगे पर्याप्त और अपर्याप्त की सख्या दिखाते है।

तिविपचपुण्णपमाणं पदरंगुलसंखभागहिदपदरं ।
हीणकमं पुण्णूणा बितिचपजीवा अपज्जत्ता ॥१८०॥

संख्य भाग प्रतरांगु का, जगतप्रतर में भाग ।
लब्ध तने त्रय दो पना, चउ पूर्णा जिय जाग ।८०-१।
क्रम से कम कम ये तथा, इनको निजहिं घटाय ।
अपर्याप्त संख्या वही, दो त्रय चउ पन आय ।८०-२।

अर्थ—प्रतरांगुल के संख्यातवे भाग का जगत्प्रतर मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतनी क्रमसे तीनइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पचेन्द्रिय और चौइन्द्रियपर्याप्त जीवों की संख्या है किन्तु यह संख्या उपरोक्त बटवारे के अनुसार क्रम से कम कम है और अपनी अपनी पर्याप्त संख्या अपनी अपनी संख्या मे कम करने से शेष संख्या अपने २ दो, तीन, चार और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवो की है ॥१८०॥

इन्द्रिय मार्गणा समाप्त ।

आगे काय का स्वरूप और उसके भेद दिखाते है ।

जाईअविणाभावीतसथावरउदयाजो हवे काओ ।
सो जिणमदह्मि भणिओ पुढवीकायादिछब्भेयो ॥१८१॥

इन्द्रिय साथी थावरा, त्रसहिं उदय पर्याय ।
उसे काय जिनवर कहैं, भूआदिक छै काय ।१८१।

अर्थ :—इन्द्रिय नामकर्म के साथी त्रस और थावर नाम कर्म के उदय से जो जीव के काय होती है उसको जिनमत मे काय कहते हैं वह ६ प्रकार की होती है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस ॥१८१॥

आगे चार स्थावरो की उत्पत्ति को दिखाते है।

पुढवीआऊतेऊवाऊकम्मोदयेण तत्थेव ।
णियवण्णचउक्कजुदो ताणं देहो हवे णियमा ॥१८२॥

भू जल अग्नी अरु पवन, कर्म उदय को पाय।
निज निज वर्ण चतुष्कयुत, उनका तन बन जाय।१८२।

अर्थः—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु काय के जीवो का शरीर अपने २ नाम कर्म के उदय से अपने २ योग्य रूप, रस, गध और स्पर्श सहित पृथ्वी आदि पुद्गलस्कन्ध ही शरीर रूप हो जाते हैं ॥१८२॥

आगे शरीर के भेद और स्वरूप दिखाते है।

वादरसुहुमुदयेण य वादरसुहुमा हवंति तद्देहा।
वादसरीरं थूलं अवाददेहं हवे सुहुमं ॥१८३॥

वादर सूक्षम के उदय, वादर सूक्षम देह।
बादर तन रुक जात है, सूक्षम रुके न केह ॥१८३॥

अर्थ :—वादर और सूक्ष्न नाम कर्म के उदय से वादर और सूक्ष्म शरीर मिलता है। वादरशरीर किसी पदार्थ से रुक जाता है और किसी को रोक देता है। सूक्ष्मशरीर किसी पदार्थ से नही रुकता और न किसी को रोकता है ॥१८३॥

आगे शरीर का परिमाण और आधार दिखाते है।

तद्देहमंगुलस्स असंखभागस्स विंदमाणं तु।
आधारे थूला ओ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा ॥१८४॥

भाग असंख्ये धनांगुल, भू आदिक तन मान।
थूलाश्रय आधार के, सूक्षम सब जग जान ॥१८४॥

अर्थ :—वादर और सूक्ष्मशरीर का परिमाण घनांगुल के असंख्यातवे भाग बराबर है इनमे वादरशरीर किसी न किसी के आधार स्थित है और सूक्ष्मशरीर विना आधार के सब जगत मे अतर रहित स्थित है ॥१८४॥

आगे वनस्पति काय का स्वरूप और भेद दिखाते है।

उदये दु वणप्फदिकम्मस्स य जीवा वणप्फदी होंति।
पत्तेयं सामण्णं पदिट्ठिदिदरेत्ति पत्तेयं ॥१८५॥

कर्म वनस्पति के उदय, जीव वनस्पति काय।
साधारण प्रत्येक अरु, प्रतिष्ठितेतर पाय ।१८५।

अर्थ —वनस्पति नाम कर्म के उदय से जीव वनस्पति काय वाले होते है वे दो प्रकार के होते हैं साधारण और प्रत्येक। प्रत्येक-वनस्पति काय वाले जीव भी दो प्रकार के होते है सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित ॥१८५॥

साधारण—जिस शरीर के आश्रय समान रूप से अनेक जीव रहते हो उसको साधारण वनस्पति कहते है।

सप्रतिष्ठितप्रत्येक—जिस शरीर के आश्रय एक जीव प्रधान और अनेक समान रूप से रहते हो उसको सप्रतिष्ठितप्रत्येक वनस्पति कहते है।

अप्रतिष्ठितप्रत्येक—जिस शरीर मे एक ही जीव रहता हो उसको अप्रतिष्ठितप्रत्येक वनस्पति कहते है।

आगे वनस्पति की उत्पत्ति के कारण दिखाते है।

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंदबीजबीजरुहा।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥१८६॥

कोइ गांठ खंदाग्र जड, कंद बीज उपजाय।
कोई स्वतः स्वभाव से, प्रतिष्ठितेतर काय ॥१८६॥

अर्थ :—कोई वनस्पति गाठ से, कोई शाखा से, कोई टहनी से, कोई जड़ से, कोई कंद से, कोई बीज से और कोई स्वयमेव उपजती है वे सप्रतिष्ठित अथवा अप्रतिष्ठित प्रत्येक होती है ॥१८६॥

आगे सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित की पहिचान दिखाते है।

गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं।
साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥१८७॥

गुप्त शिरा संधी परव, तोडत भाग समान।
कटें बढ़ें स-प्रतिष्ठिता, उलटा इतर पिछान ॥१८७॥

अर्थ :—जिस वनस्पति का शिरा, गाठ और पोरी पूर्ण प्रकट न हुई हो, जिसको तोड़ने से दो समान भाग हो जावे अथवा जिसको काटने से बढना बंद न हो उसको सप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति कहते हैं और इससे जो विपरीत है उसको अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति कहते हैं ॥१८७॥

आगे उसी आशय को और दिखाते है।

मूले कंदे छल्लीपवालसालदलकुसुमफलबीजे।
समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥१८८॥

कोंपल टहनी बीज दल, कंद फूल जड़ छाल।
तुल्य भाग सो प्रतिष्ठित, उलटी अपरा चाल ॥१८८॥

अर्थ—जिस किसी वनस्पति की कोपल, टहनी, बीज, पत्र, कंद, फूल, जड़ अथवा छाल तोडने से समान भाग हो जावे वह सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति है और इससे जो उलटी है वह अप्रतिष्ठितप्रत्येक-वनस्पति है ॥१८८॥

आगे उसी आशय को और भी दिखाते है।

कंदस्स अ मूलस्स व सालाखंदस्स चावि बहुलतरी ।
छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥१८९॥

कंद खंद टहनी तथा, जड़ की मोटी छाल ।
स-प्रतिष्ठित प्रत्येक है, उलटी अपरा चाल ॥१८९॥

अर्थ :—जिस वनस्पति के कद, स्कध, टहनी अथवा जड की छाल मोटी होती है वह सप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति है और इससे जो उलटी है वह अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति है ॥१८९॥

आगे अप्रतिष्ठितप्रत्येक की अवस्था दिखाते हैं ।

बीजे जोणीभूदे जीवो चंकमदि सो अ अण्णो वा ।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥१९०॥

योनि भूत बीजा विषें, वह या पर जिय आय ।
मूलादिक भी प्रथम क्षण, अप्रतिष्ठिता पाय ।१९०।

अर्थ—जिस किसी बीज मे अकुर उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट नही हुई हो उसमे वही जीव जो पूर्व था अथवा अन्य कोई जीव आकर उत्पन्न हो उस समय और उपरोक्त कहे हुए कंद मूलादिक भी अपनी उत्पत्ति के प्रथम समय मे अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति ही हैं ॥१९०॥

आगे साधारण वनस्पति के भेद और स्वरूप दिखाते है ।

साहारणोदयेण णिगोदसरीरा हवंति सामण्णा ।
ते पुण दुविहा जीवा बादर सुहुमात्ति विण्णेया ॥१९१॥

साधारण के उदय से, तन निगोद उपजाय ।
बादर सूक्षम भेद से, दो प्रकारजिन गाय ॥१९१॥

अर्थ—साधारण नाम कर्म के उदय से जीवो का शरीर निगोद

होता है उसको साधारण अथवा सामान्य कहते है इसमे एक मुख्य जीव नही होता अनतानत साधारण ही होते है इसके दो भेद है, बादर और सूक्ष्म ॥१९१॥

आगे साधारण जीवो के समान कार्य दिखाते है।

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च ।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणिय ॥१९२॥

साधारण आहार अरु, साधारण उश्वास।
साधारण उन जियों का, साधा लक्षण भास ।१९२।

अर्थ—उन एकशरीर धारी बादर और सूक्ष्म जीवो की आहारादिक पर्याप्ति एक साथ प्रारम्भ और पूर्ण होती है उन सबके श्वासोश्वास भी एक साथ आती है कारण उन साधारण जीवो का स्वभाव और कर्म का उदय समान है ॥१९२

आगे उनके जन्म और मरण भी एक साथ दिखाते है।

जत्थेक्कमरइ जीवो तत्थ दु मरण हवे अणंताणं ।
वक्कमइ जत्थ इक्को वक्कमणं तत्थ णंताणं ॥१९३॥

एक जीव मरता जबे, मरते तबे अनंत।
एक जीव जन्मे जबे, जन्मे तबे अनंत ॥१९३॥

अर्थ—जब उपरोक्त जीवो मे एक का मरण होता है तब अनंतानत (सब) का मरण होताहै और जब एक जीव का जन्म होता है तब अनतानत का जन्म होता है कारण वे सब एक अवस्था (पर्याप्त या अपर्याप्त) के धारक होते है ॥१९३॥

आगे सब स्कधादि का परिमाण दिखाते है।

खंधा असखलोगा अंडर आवासपुलविदेहा वि ।
हेट्ठिल्लजोणिगाओ असंखलोगेण गुणिदकमा ॥१९४॥

खंद असंख्ये लोकवत्, अंडर अरु आवास।
पुलवि देह उत्तरोत्तर, गुणि असंख्य जगरास ॥१९४॥

अर्थ—सब स्कधो का परिमाण असख्यात लोक बराबर है एक एक स्कंध मे असख्यात लोक बराबर अडर है एक एक अडर मे असंख्यात लोक बराबर आवास है एक एक आवास मे असख्यात लोक बराबर पुलवी हैं एक एक पुलवी मे असख्यात लोक बराबर बादर निगोदिया जीवो के शरीर है इन सब का परिमाण असख्यात लोक गुणित है ॥१९४॥

आगे उपरोक्त आशय का दृष्टान्त दिखाते है।

जम्बूदीवं भरहो कोसलसागेदतग्घराइं वा।
खंधंडरआवासापुलविसरीराणि दिट्ठंता ॥१९५॥

जम्बु द्वीप अरु भरतथल, कोशल अवधि मकान।
खंदंडर आवास अरु, पुलवि देह दृष्टान ॥१९५॥

अर्थ—जैसे जम्बू द्वीप मे भरतक्षेत्र है, भरत क्षेत्र मे कोशल देश है, कोशल देश मे अयोध्यानगरी है, अयोध्यानगरी मे अनेक नगर हैं तैसे स्कधो मे अडर है अडरो मे आवास है आवासो मे पुलवी हैं और पुलवियो मे बादर निगोदिया जीवो के शरीर है ॥१९५॥

आगे उस देह मे निगोदिया जीवो की सख्या दिखाते है।

एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वपमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥१९६॥

एक निगोद शरीर में, जीवन का परिमाण।
सिद्ध और गत समय से, नंत गुणा पहिचान ॥१९६॥

अर्थ—एक निगोद शरीर मे जीवनि का परिमाण द्रव्य की अपेक्षासिद्ध राशि से अनत गुणा है और काल की अपेक्षा भूतकाल के समयो से अनत गुणा है ।।१९६।।

आगे नित्य निगोद का स्वरूप दिखाते है ।

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंकसुपउरा णिगोदवास ण मुंचति ।।१९७।।

अमित जीव हैं जिन्होंने, लही न त्रस की काय ।
दुर्लेश्यावश नहिं तजी, निगोद की पर्याय ।।१९७।।

अर्थ—निगोद अवस्था मे ऐसे जीव अनतानत है जिन्होने अपनी दुर्लेश्या के कारण आज तक त्रस की पर्याय नही प्राप्त की वे जीव नित्यनिगोदिया कहलाते है और जिन्होने त्रस पर्याय प्राप्त कर फिर निगोद मे पहुँच गये है वे जीव इतर निगोदिया कहलाते है ।।१९७।।

आगे त्रस जीवो की पहिचान दिखाते है ।

विहि तिह चदुहि पंचहिं सहिया जे इंदिएहिं लोयह्मि ।
ते तसकाया जीवा णेया वीरोवदेसेण ।।१९८।।

द्वे ते चउ इन्द्रिय सहित, या पन इन्द्रिय भेष ।
ते त्रस कायिक जीव हैं, कहते वीर जिनेश ।।१९८।

अर्थ—जो जीव दो, तीन, चार और पाच इन्द्रिय वाले है उनको महावीर भगवान त्रस कहते है ।।१९८।।

आगे त्रसो का क्षेत्र त्रस नाली दिखाते है ।

उववादमारणंतियपरिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा ।
तसणालिबाहिरह्मि य णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।१९९।

त्रस नाली के वाह्य मर, जनमें त्रस में आय।
मरणांतिक केवलि विना, त्रस त्रसनालि न वाह्य।१६६।

अर्थ—एक स्थावर जीव त्रसनाली के वाहिर मर कर त्रस हुआ तो वहा ही त्रस कहलाया इस रीति से त्रस नाली के वाहिर त्रस का अस्तित्व ठहरा। एक त्रस ने मरणातिकसमुदघात (नये शरीर के स्थान का स्पर्श) त्रस नाली के वाहिर किया तो उसका भी अस्तित्व त्रसनाली के वाहिर ठहरा और केवलीभगवान ने केवलीसमुदघात के समय सर्वलोक का स्पर्श किया तो केवलीभगवान भी त्रस है उनका भी त्रसनाली के वाहिर अस्तित्व ठहरा इन तीन घटनाओ के अतिरिक्त त्रस नाली के वाहिर त्रस जीवो का अस्तित्व नही पाया जाता ॥१६६॥

आगे आठ शरीरो को निगोद रहित दिखाते है।

पुढवीआदिचउण्हं केवलिआहारदेवणिरयंगा।
अपदिट्ठिदा णिगोदहि पदिट्ठिदगा हवे सेसा ॥२००॥

भू जल अग्नी पवन अरु, देव नारकी मान।
केवलि अरु आहारतन, जीव निगोद न जान।२००।

अर्थ–पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, देव, नारकी, केवली और आहार शरीर मे निगोदिया जीव नही होते और शेषो मे होते है ॥२००॥

आगे त्रस स्थावर जीवो के शरीर का आकार दिखाते है।

मसूरंबुबिंदुसूईकलावधयसण्णिहो हवे देहो।
पुढवीआदिचउण्हं तरुतसकाया अणेयविहा ॥२०१॥

भू मसूर जलविन्दु जल, अग्नि सुई समुदाय।
पवन ध्वजा आकार है, त्रस तरु विविध दिखाय।१०१।

अर्थ—पृथ्वी का शरीर मसूर अन्न के आकार है, जल का शरीर जलविन्दु के आकार है, अग्नि का शरीर सूइयो के समूह के आकार है, पवन का शरीर ध्वजा के आकार है, वनस्पति और त्रस जीवो का शरीर अनेक प्रकार का है ॥२० १॥

आगे जीवो को कर्म भार ढोने वाला दिखाते है।

जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेहिऊण कावलियं ।
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकावलियं ॥२०२॥

जैसे कोई भार वह, ढोवे रथ से भार ।
कर्म भार त्यों ढोवता, जीव देह रथ धार ॥२०२॥

अर्थ—जैसे कोई रथवान रथ से किसी का भार ढोवता है तैसे यह जीव देह रूपी रथ से कर्म भार को चारो गतियो मे ढोता है देह से रहित होने पर सुखी होता है ॥२०२॥

आगे दृष्टान्त से सिद्धो को वन्धन रहित दिखाते है।

जह कंचणमग्गिगयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य ।
तह कायवंधमुक्का अकाइया झाणजोगेण ॥२०३॥

जैसे कंचन अग्नि से, कीट कालिमा मुक्त ।
तैसे जिय ध्यानाग्निसे, तन बन्धनसे मुक्त ॥२०३

अर्थ— जैसे कचन अग्नि के द्वारा कीट-कालिमा से मुक्त हो जाता है तैसे जीव ध्यान रूपो अग्नि से शरीर वन्धन से मुक्त हो जाता है ॥२०३॥

आगे पृथ्वी से पवन तक के जीवो की सख्या दिखाते है।

आउड्ढरासिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ ।
भूजलवाऊ अहिया पडिभागोऽसखपलोगो दु ॥२०४॥

अर्ध तीन जग राशि का, गुणे परस्पर आग ।

भू जल पवनाधिकाधिक, जग असंख्य प्रतिभाग ।२०४।

अर्थ—लोक की सख्या (असख्यात) मे लोक की सख्या को क्रम से साढे तीन वार परस्पर गुणा करने से अग्नि काय की सख्या निकलती है इस सख्या मे असंख्यात लोक की सख्या का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको अग्नि काय की सख्या मे मिलाने से पृथ्वी काय की संख्या होती है इसमे असख्यात लोक की सख्या का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको पृथ्वी काय की संख्या मे मिलाने से जल काय की सख्या होती है और इसमे असंख्यात लोक की सख्या का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको जल काय की सख्या मे मिलाने से पवन काय की सख्या होती है (अग्नि से पृथ्वी, पृथ्वी से जल, जल से पवनकाय के जीव अधिक है) ॥२०४॥

आगे प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठित जीवो की सख्या दिखाते है ।

अपदिट्ठिदपत्तेया असंखलोगप्पमाणया होंति ।

तत्तो पदिट्ठिदा पुण असंखलोगेण संगुणिदा ॥२०५॥

जीव प्रतिष्ठित रहित हैं, जग असंख्य परिमाण ।

इनसे गुणित असंख्य जग, सहित प्रतिष्ठित जान ।२०५

अर्थ—अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति काय के जीवो की संख्या असख्यात लोक वरावर है और इनसे असख्यात लोक गुणित सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति काय के जीव है ॥२०५॥

आगे साधारण जीवो की सख्या दिखाते है ।

तसरासिपुढविआदीचउक्कपत्तेयहीणसंसारी ।

साहारणजीवाणं परिमाणं होदि जिणदिट्ठं ॥२०६॥

संसारी में कम करो, भू जल अग्नी वायु ।
त्रस प्रत्येका से बचे, साधारणजिय पाउ ॥२०६॥

अर्थ—ससारी जीवो की सख्या मे से, पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन प्रत्येकवनस्पति और त्रस काय के जीवो की सख्या कम कर देने से शेष साधारण वनस्पति काय के जीव है ॥२०६॥

आगे वादर और सूक्ष्म जीवो की सख्या दिखाते है ।

सगसगअसंखभागो वादरकायाण होदि परिमाणं ।
सेसा सुहमपमाणं पडिभागो पुव्वणिद्दिट्ठो ॥२०७॥

बादर निज निज राशि में, हैं असंख्यवें भाग ।
शेष भाग सूक्षम जिया, जग असंख्य प्रतिभाग ।२०७।

अर्थ—वादर जीव अपनी अपनी राशि मे असख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमे एक भाग वरावर है शेप वहुभाग बरावर सूक्ष्म जीव है । यहॉ भी अग्नि काय से अधिक पृथ्वी, पृथ्वी से अधिक जल, जल से अधिक पवन है इनकी सख्या निकालने के लिए दोहा न० २०४ की रीति के अनुसार लोक के असख्यातवे भाग से निकलती है ॥२०७॥

आगे सूक्ष्म पूर्णापूर्ण की सख्या दिखाते है ।

सुहमेसु संखभागं संखा भागा अपुण्णगा इदरा ।
जस्सि अपुण्णद्धादो पुण्णद्धा संखगुणिदकमा ॥२०८॥

संख्य भाग कर सूक्ष्म के, एक भाग अन-पूर्ण ।
शेष पूर्ण अनपूर्ण से, संख्य गुणा क्षणपूर्ण ॥२०८॥

अर्थ—सूक्ष्म जीवो की सख्या मे एक भाग वरावर अपर्याप्त जीव

है और वहु भाग बराबर पर्याप्त जीव है किन्तु अपर्याप्तो का काल अन्तर्मुहूर्त है और पर्याप्तो का काल उससे सख्यात गुणा है ॥२०८॥

आगे जल, भू और प्रत्येक की सख्या दिखाते है।

पल्लासंखेज्जवहिदपदरंगुलभाजिदे जगप्पदरे ।
जलभूणिपबादरया पुण्णा आवलिअसंखभजिदकमा ॥२०९॥

पल्य असंख्ये भाग का, प्रतरांगुल में भाग ।
उस फल का जगप्रतर में, भाग दिये फल लाव ।९-१।
थूल पूर्ण जल और भू, आवलि असंख्य भाग ।
प्रतिष्ठताप्रतिष्ठत को, वही रीत से पाग ॥९-२॥

अर्थ— पल्य के असंख्यातवें भाग का प्रतरांगुल मे भाग देने से जो लब्ध आवे उसका जगत्प्रतर मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतने बादरपर्याप्त जलकाय के जीव है इसमे आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने बादरपर्याप्तपृथ्वी काय के जीव है इसमे आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने पर्याप्तसप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकाय के जीव है और इसमे आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने पर्याप्तअप्रतिष्ठित-प्रत्येकवनस्पतिकाय के जीव है और अपनी २ राशि मे पर्याप्त जीवो की सख्या कम कर देने से जो शेष रहे उतने अपर्याप्त जीव है॥२०९॥

आगे बादर अग्नि और पवन की सख्या दिखाते है।

बिदावलिलोगाणमसंखं संखं च तेउवाऊणं ॥
पज्जत्ताण पमाणं तेहिं विहीणा अपज्जत्ता ॥२१०॥

घनवलि असंख्य भाग अरु, लोक संख्य इक भाग ।
थूल पूर्ण अग्नी पवन, इन बिन अपूर्ण जाग ।२१०।

अर्थ—घनावली (आवली के समयो मे घनकार) के असख्यात भागो मे से एक भाग वरावर वादरपर्याप्तअग्निकाय के जीव है शेष वहु भाग वादरअपर्याप्तअग्निकाय के जीव है तथा लोक के असख्यात भागो मे से एक भाग बरावर वादरपर्याप्तवायुकाय के जीव है और शेप वहुभाग वरावर वादरअपर्याप्तवायुकाय के जीव है ॥२१०॥

आगे साधारण वादर पूर्णापूर्ण की सख्या दिखाते है।

साहरणवादरेसु असंखं भागं असंखगा भागा।
पुण्णाणमपुण्णाणं परिमाणं होदि अणुकमसो ॥२११॥

साधारण बादर विषें, अगणित भाग कराय।
एक भाग पर्याप्त हैं, शेष अपूर्ण कहाय ॥२११॥

अर्थ—साधारणवादरवनस्पतिकाय के जीवो की सख्या मे असख्यात भाग करने पर एक भाग वरावर पर्याप्त जीव है शेप वहु भाग वरावर अपर्याप्त जीव है ॥२११॥

आगे पूर्णापूर्ण त्रसो की सख्या दिखाते है।

आवलिअसंखसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं।
कमसो तसतप्पुण्णा पुण्णूणतसा अपुण्णा हु ॥२१२॥

आवलि असंख्य भाग का, प्रतरांगुल में भाग।
उस फल का जग प्रतर में, वह फल सब त्रसकाय।।१२-१
संख्य आवली भाग का, प्रतरांगुल में भाग।
फेरि जगत में पूर्ण त्रस, शेष अपूरण जाग ॥१२—२॥

अर्थ—आवली के असख्यातवे भाग का प्रतरागुल मे भाग देने से जो लब्ध आवे उसका जगत्प्रतर मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतने सव त्रसजीव है तथा आवली के सख्यातवे भाग का प्रतरागुल मे भाग

देने से जो लब्ध आवे उसका जगत्प्रतर में भाग देने से जो लब्धआवे उतने पर्याप्तत्रसजीव है और सब त्रसो की सख्या मे से पर्याप्तत्रसो की सख्या कम कर देने से जो सख्या शेष रहे उतने अपर्याप्त त्रसजीव है ॥२१२॥

आगे बादर अग्नि आदि के अर्धच्छेद दिखाते हैं।

आवलिअसंखभागेणवहिदपल्लूणपायरद्धछिदा ।
बादरतेपणिभूजलवादाणं चरिमसायरं पुण्णं ॥२१३॥

आवलि असंख्य भाग का, इक से लग पन वार।
पल्य भाग सागर घटा, क्रम से थूल अँगार॥१३-१॥
अ-प्रतिष्ठित सप्रतिष्ठित, वादर भू जल काय।
पूरण सागर पवन के, अर्ध छेद जिन गाय॥१३-२॥

अर्थ— आवली के असख्यातवे भाग का क्रम से एक वार, दो वार, तीन वार, चार वार और पाँच वार पल्य की सख्या मे भाग देने से जो लब्ध आवे उसको सागर की सख्या मे घटाने से जो सख्या शेष रहे उतने क्रम से बादरअग्निकाय, अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति, सप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति, बादरपृथ्वीकाय, बादरजलकाय के जीवो के अर्धच्छेद है और बादरपवनकाय के अर्ध छेदो की सख्या पूर्णसागर के बराबर है। अर्ध छेद किसी भी सख्या को आधा आधा करते करते अन्त मे एक शेष रहे उसको अर्धच्छेद सख्या कहते है। जैसे दो का एक वार आधा करने से एक रहता और ३२ को पाँच वार आधा करने से एक रहता है ॥२१३॥

आगे अर्ध छेदो की अधिकता स्पष्ट दिखाते है।

तेवि विसेसेणहिया पल्लासंखेज्ज भाग मेत्तेण ।
तम्हा ते रासीओ असखलोगेण गुणिदकमा ॥२१४॥

परें परें ये सब अधिक, पल्य असंख्ये भाग।
इस कारण ये राशियां, जग असंख्य गुणि जाग।२१४।

अर्थ—बादरअग्निकाय, अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकाय, सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकाय, बादरपृथ्वीकाय, बादरजलकाय और बादरपवन काय के जीवो के अर्धच्छेद पल्य के असख्यातवे भाग उतरोत्तर अधिक है कारण अग्निकाय के जीवो से पवनकाय तक के जीवो की सख्या उत्तरोत्तर असख्यातलोक गुणित अधिक है ॥२१४॥

आगे असख्यात लोक गुणित निकालने की विधि दिखाते हैं।

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे।
लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥२१५॥

भाग देय के छेद से, इष्ट छेद के संग।
उस फल का फिर भाग दे, प्रकृति विरलन संग।१५-१।
फल आवे उतनी जगह, इष्ट राशि रखवाय।
गुणा परस्पर करें से, प्रकृती धन उपजाय ॥१५-२॥

अर्थ – देय राशि के अर्धच्छेद (एक) से भक्त इष्ट राशि के अर्धच्छेदों का प्रकृत विरलन राशि मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतनी जगह इष्ट राशि को रखकर परस्पर गुणा करने से प्रकृत घन होता है इसकी अक संदृष्टि इस प्रकार है कि जब १६ जगह २ के अक रखकर परस्पर गुणा करने से सख्या ६५५३६ उत्पन्न होती है तब ६४ जगह दो के अक रखकर परस्पर गुणा करने से कितनी सख्या उत्पन्न होगी ? तो दो के अर्धच्छेद एक का इष्ट राशि की सख्या के अर्धच्छेद १६ में भाग देने से लब्ध १६ का भाग प्रकृत विरलन राशि ६४ मे दिया इससे ४ की सख्या लब्ध आई इसलिये ४ जगह पर

संख्या को रखकर परस्पर गुणा करने से प्रकृतधन होता है। इसी प्रकार अर्थ संदृष्टि में जब इतनी जगह (अर्धच्छेदों की राशि का परिमाण) दो के अंक रखकर परस्पर गुणा करने से इतनी उत्पन्न होती है तब इतनी जगह (आगे की राशि के अर्धच्छेदों का परिमाण) दो का अंक रखकर परस्पर गुणा करने से कितनी राशि उत्पन्न होगी ? इस प्रकार ऊपर कहे हुये क्रम अनुसार गणित करने से अग्निकायादिक जीवों की संख्या उत्तरोत्तर असंख्यात लोक गुणी सिद्ध होती है। तात्पर्य केवल इतना है कि ये राशियां उत्तरोत्तर अधिक है।२१५।

कायमार्गणा समाप्त

आगे योग का स्वरूप दिखाते हैं।

पुग्गल विवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्स ।
जीवस्स जा हु सत्ती कम्मागमकारणं जोगो ॥२१६॥

मूर्त विपाकी तन उदय, मन वच तन संयोग ।
कर्मागम का हेतु जो, वही शक्ति है योग ॥२१६॥

अर्थ — पुद्गलविपाकी शरीरनामकर्म के उदय से मन, वचन और काय सहित जीव की जो शक्ति कर्म और नोकर्म ग्रहण करने में कारण होती है इसको योग कहते है ॥२१६॥

आगे मन और वचन योग का स्वरूप दिखाते है।

मणवयणाणपउत्ती सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु ।
तण्णामं होदि तदा तेहि दु जोगा हु तज्जोगा ॥२१७॥

मन वच वृत्ती सत असत, उभयरु अनुभय अर्थ ।
वही नाम उन चार का, कहलाता सत्यार्थ ॥२१७॥

अर्थ—जब मन और वचन की क्रिया सत्य, असत्य, उभय अथवा अनुभय पदार्थो के जानने के लिये अथवा कहने के लिये होती है तब मन को सत्यादि मन और वचन को सत्यादि वचन कहते है और उनके सम्बन्ध से योग को भी सत्यादि योग कहते है इत्यादि॥ २१७॥

आगे सत्यासत्य और उभय मनयोग को दिखाते है।

सब्भावमणो सच्चो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो।
तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥२१८॥

सच्चे मन को सत्य मन, उस वृत्ती मन जोग।
उससे उलटा मृषा मन, उभयउभय संयोग ॥२१८॥

अर्थ—सच्चे मन को सत्यमन और उसकी क्रिया को सत्यमन-योग कहते हैं इससे उलटे को मिथ्यामन और उसकी क्रिया को मिथ्या मनयोग कहते हैं तथा सत्यासत्य से मिले हुये मन को उभय मन और उसकी क्रिया को उभयमनयोग कहते हैं ॥२१८॥

आगें अनुभयमनयोग का स्वरूप दिखाते है।

ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो तेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो ॥२१९॥

जो मन सत्यासत्य नहिं, सो अनुभय मन योग।
उसके द्वारा जो क्रिया, सो अनुभय मन योग॥२१९॥

अर्थ—जो मन न सत्य रूप हो न असत्य रूप हो उसको अनुभय मन कहते हैं और उसकी क्रिया को अनुभयमनयोग कहते है ॥२१९॥

आगे सत्यासत्य और उभयवचन योग को दिखाते है।

दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो।
तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥२२०॥

सत्य वचन को सत्य बच, उस वृत्ती वच योग ।
उससे उलटा मृषा वच, उभय उभय संयोग ॥२२०॥

अर्थ—सत्यवचन को सत्यवचन और उसकी क्रिया को सत्य-वचनयोग कहते हैं इससे उलटे को असत्यवचन और उसकी क्रिया को असत्यवचनयोग कहते हैं तथा सत्यासत्य से मिले हुए वचन को उभय-वचन और उसकी क्रिया को उभयवचनयोग कहते हैं ॥२२०॥

आगे अनुभयवचन योग का स्वरूप दिखाते हैं ।

जो णेव सच्चमोसो सो जाण असच्चमोसवचिजोगी ।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणी आदी ॥२२१॥

जो वच सत्यासत्य नहिं, सो अनुभयवचयोग ।
अमना के सब वचन अरु, समना के कुछ वोग ॥२२१॥

अर्थ—जो वचन न सत्य रूप हो न असत्य रूप हो उसको अनु-भयवचन और उसकी क्रिया को अनुभय वचन योग कहते हैं असैनी-जीवों के सब वचन अनुभय वचन कहे जाते हैं और सैनी जीवों के बुलाने आदि के वचन अनुभय वचन कहे जाते हैं ॥२२१॥

आगे सत्यवचन के भेद दिखाते हैं ।

जणवदसम्मदिठवणाणामे रूवे पडुच्चववहारे ।
संभावणे य भावे उवमाए दसविहं सच्चं ॥२२२॥

जनपद सम्मति थापना, नाम रूप विश्वास ।
अरु भविष्य संभावना, भावरु उपमा वास ॥२२२॥

अर्थ—जनपदसत्य, सभावनासत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूप-सत्य, प्रतीतिसत्य, भविष्यसत्य, सभावनासत्य, भावसत्य, और उपमा-सत्य ये दश भेद लोक व्यवहार सत्य के हैं ॥२२२॥

आगे दृष्टान्त से दश प्रकार के सत्य को दिखाते है।

भत्तं देवी चंदप्पहपडिमा तह य होदि जिणदत्तो।
सेदो दिग्घो रज्झदि कूरोत्ति य जं हवे वयणं ॥२२३॥

सक्को जंबूदीपं पल्लट्टदि पाववज्जवयणं च।
पल्लोवम च कमसो जणवदसच्चादिदिट्ठंता ।२२४।

भात रु देवी मूर्ति-प्रभु, जिनदत्ता अरु मान।
शुक्ल दीर्घ लम्बा तथा, भातपका पहिचान ।२२३।
इन्द्र पलट सकता जगत, अरु अघ वर्जित बैन।
औरपल्य दृष्टान्त दश, जनपद आदिक ऐन ।२२४।

अर्थ—भात, देवी, मूर्ति, जिनदत्त, शुक्ल, दीर्घ, लम्बा, भातपका, इन्द्रजम्बू द्वीप को पलट सकता है, अघवर्जित वचन, और पल्य ये दश जनपदादि सत्य के दृष्टान्त है ॥२२३–२२४॥

भातसत्य, जैसे चावल वनाते समय लोग कहते है कि भात वनाते हैं। यह जनपद सत्य है।

सम्मतिसत्य—जैसे किसी स्त्री को लोग देवी कहते है। यह सम्मतिसत्य है।

स्थापनासत्य—जैसे किसी मूर्ति को लोग भगवान कहते हैं यह स्थापनासत्य है।

नामसत्य—जैसे किसी का नाम जिनदत्त रख लिया है जिन भगवान का दिया नही किन्तु यह नामसत्य है।

रूपसत्य—जैसे किसी का गोरा शरीर देखकर गोरा कह देना यह रूपसत्य है।

प्रतीतसत्य—जैसे किसी पुरुप की अपेक्षा किसी पुरुप को लम्बा कहना यह प्रतीत सत्य है।

भविष्यसत्य—जैसे भविष्य मे चावल पकने वाले है उनको वर्तमान मे कहना यह भविष्यसत्य है।

सभावनासत्य—जैसे इन्द्र की सामर्थ्य देखकर कहना कि इन्द्र जगत को पलट सकता है यह सभावनासत्य है।

भावसत्य—जैसे पाप रहित वचनों को भावसत्य कहना यह भावसत्य है।

उपमासत्य—जैसे किसी की आयु को बताने के लिए पल्य की उपमा दे देना यह उपमा सत्य है।

आगे अनुभयवचनो के भेद दिखाते है।

आमंतणि आणवणी याचणिया पुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमा य ॥२२५॥
णवमी अणक्खरगदा असच्चमोसा हवंति भासाओ।
सोदाराणं जम्हा वत्तावत्तंससंजणया ॥२२६॥

आओ आज्ञा याचना, प्रश्न रु सूचक वैन।
त्याग वचन संशय वचन, इच्छा निर्गत बैन॥२२५॥
अन अक्षर युत नव वचन, अनुभय वचन पिछान।
सुनकर इनके अंश का, व्यक्ताव्यक्त सुज्ञान॥२२६॥

अर्थ-बुलाने रूपवचन, आज्ञावचन, याचनावचन, प्रश्नरूपवचन, सूचकवचन, त्यागवचन, संशयवचन, इच्छानिर्गतवचन और अनाक्षर-वचन ये ९ प्रकार के अनुभय वचन है इनको सुनकर सुनने वाले के प्रकट और अप्रकट शब्द अंशो का ज्ञान होना है ॥२२ -२२६॥

बुलाने रूप वचन—जैसे आओ।

आज्ञा वचन—जैसे ऐसा करो।

याचना वचन—जैसे मुझको कुछ दो ।

प्रश्न रूप वचन—जैसे यह क्या है ।

सूचक वचन—जैसे मैं क्या करूँ ।

त्याग वचन—जैसे मे यह छोडता हूँ ।

संशय वचन—जैसे यह हस पक्ति है या धुजा है ।

इच्छा निर्गत वचन—जैसे मुझको भी ऐसा करना चाहिये ।

अनाक्षर वचन—जैसे जिस शब्द का अक्षर न वन सके ।

आगे मन योग और वचन योग के कारण दिखाते है ।

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुण्णदेहउदओ दु ।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं ॥२२७॥

मूल निमित मन वचन का, उदय देह पर्याप्त ।
मृषा उभय मन वचन का, निज निज ढक्कन ख्यात २२७

अर्थ—सत्यमनयोग, अनुभयमनयोग, सत्यवचनयोग और अनुभयवचनयोग का मूल कारण शरीर पर्याप्त नाम कर्म का उदय है और असत्यमनयोग, उभयमनयोग, असत्यवचनयोग और उभयवचन योग का कारण अपना अपना आवरण कर्म है ॥२२७॥

आगे सयोगकेवली के मनयोग दिखाते है ।

मणसहियाणं वयणं दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगह्मि ।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणह्मि ॥२२८॥

मनयुत जीवों के वचन, मन पूर्वक ही मान ।
मूर्त ज्ञान विन प्रभू के, मन उपचार कहान ॥२२८॥

अर्थ—मनसहित जीवो के वचन मनपूर्वक ही होते है और

इन्द्रिय ज्ञान से रहित सयोगकेवली भगवान के वचन मनपूर्वक नही होते किन्तु मन उनके उपचार से माना है ॥२२८॥

आगे उस उपचार का कारण दिखाते है ।

अंगोवंगुदयादो दव्वमणट्ठं जिणिंद चंदह्मि ।
मणवग्गणाखंधाणं आगमणादो दु मणजोगो ॥२२९॥

आंगोपांगसु कर्म के, उदय द्रव्य मन जोय ।
मनोवर्गणा खंद का, उसमें आना होय ॥२२६॥

अर्थ--सयोगकेवलीभगवान के आगोपागनामकर्म के उदय से द्रव्यमन विद्यमान है जिसके कारण मनोवर्गणाओं का आगमन होता है इसलिये उपचार से उनके मनोयोग माना है ॥२२६॥

आगे औदारिक शरीर का स्वरूप दिखाते हैं ।

पुरुमहदुदारुरालं एयट्ठो संविजाण तह्मि भवं ।
औरालियं तमुच्चइ औरालियकायजोगो सो ॥२३०॥

सर्व तनों में प्रथम तन, थूल लखा जिन लोग ।
औदारिक अरु क्रिया को, औदारिक तन योग ।२३०॥

अर्थ—सव शरीरो मे औदारिक शरीर स्थूल है इसलिये इसको औदारिक कहते है और इसकी क्रिया को औदारिककाययोग कहते हैं ॥२३०॥

आगे औदारिकमिश्रकाय योग का स्वरूप दिखाते है ।

औरालिय उत्तन्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्स जोगो सो ॥२३१॥

पूर्ण शरीर न जब तलक, औदारिक मिस बोग ।
उसके द्वारा जो क्रिया, औदारिक मिस योग ॥२३१॥

अर्थ — जबतक औदारिक शरीर की पर्याप्तिया पूर्ण नही होती तबतक इसको औदारिकमिश्रकाय कहते है और इसकी क्रिया को औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं ॥२३१॥

आगे विक्रियकाय योग का स्वरूप दिखाते है।

विविहगुणइड्ढिजुत्तं विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्व।
तिस्से भवं च णेय वेगुव्वियकायजोगो सो ॥२३२॥

विविधि ऋद्धि अठ गुण सहित, तन को विक्रियवोग।
उसके द्वारा जो क्रिया, सो विक्रिय तन योग ॥२३२॥

अर्थ—नाना ऋद्धियो सहित और नाना गुण सहित देव और नारकियो के शरीर को विक्रियकशरीर कहते हैं और उसकी क्रिया को विक्रियककाययोग कहते हैं ॥२३२॥

आगे विक्रियक की अन्य जगह भी सभावना दिखाते हैं।

वादरतेऊवाऊ पंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति।
औरालिय सरीरं विगुव्वणप्पं हवे जेसिं ॥२३३॥

चक्रि भोग भू किसी मुनि, समन पूर्ण पशु कोय।
किसी थूल पवनाग्नि के, कभी विक्रियक होय ।२३३।

अर्थ— किसी वादरअग्निकाय, किसीबादरपवनकाय, किसी सैनीपर्याप्तपशु, किसी मुनि, सब चक्रवर्त्ती तथा सब भोगभूमिवासी पर्याप्तपचेन्द्रियतिर्यंच और मनुष्यो को औदारिक शरीर कभी विक्रियक शरीर हो जाता है इनमे चक्रवर्त्ती और भोगभूमियों के पृथक विक्रिया होती है और शेषो के अपृथक विक्रिया होती है ॥२३३॥

आगे विक्रियक मिश्र काय योग का स्वरूप दिखाते हैं।

वेगुव्वियउत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्ण तं।
जो तेण संपजोगो वेगुव्वियमिस्सजोगोसो ॥२३४॥

पूर्ण शरीर न जब तलक, विक्रियतन मिस योग।
उसके द्वारा जो क्रिया, सो विक्रिय मिसयोग ॥२३४॥

अर्थ— जबतक विक्रियकशरीर की पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होती तबतक उसको विक्रियकमिश्रकाय कहते हैं और उसके द्वारा जो क्रिया होती है उसको विक्रियकमिश्रकाययोग कहते हैं ॥२३४॥

आगे आहारककाययोग को दिखाते हैं।

आहारस्सुदयेण य पमत्तविरदस्स होदि आहारं।
असजमपरिहरणट्ठं संदेहविणासणट्ठं च ॥२३५॥

आहारक तन उदय से, प्रमत विरत मुनि कोय।
किसि शंका परिहार को, आहारक तन होय ॥२३५॥

अर्थ— आहारकशरीरनामकर्म के उदय से किसी प्रमत्तविरत मुनि के किसी शंका के निवारण करने के लिये आहारक शरीर होता है ॥२३५॥

आगे आहारक शरीर की उत्पत्ति के कारण दिखाते हैं।

णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुदिकल्लाणे।
परखेत्ते संवित्ते जिणजिणघरवंदणट्ठं च ॥२३६॥

मुनि के निकट न केवली, श्रुतधर जिन गृह कोय।
कल्याणक तप ज्ञान शिव, वंदन को तब होय ॥२३६।

अर्थ—किसी एक प्रमत्त मुनि के केवलीभगवान, श्रुतकेवली, जिन चैत्यालय, तपकल्याणक, ज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणक देखने की तीव्र इच्छा हो और ये उसकी सामर्थ्य से दूर हो तब उसके तप के प्रभाव से आहारक शरीर होता है ॥२३६॥

आगे आहारक शरीर की उत्तमता दिखाते है ।

उत्तमअंगम्हि हवे धादुविहीण सुह असहणणं ।
सुहसंठाण धवलं हत्थपमाणं पसत्थुदयं ॥२३७॥

शीश जन्म सब धातु बिन, सब सँहनन से हीन ।
एक हाथ व्रत् शुभ उदय, संसथान शुभ चीन ॥२३७॥

अर्थ—वह आहारकशरीर सब धातुओ से रहित होता है सब सहनन से रहित होता है समचतुरस्रसस्थान सहित होता है चन्द्र-कान्त मणि के समान श्वेत होता है एक हाथ बराबर होता है शुभ नाम कर्म के उदय से होता है और शीश से जन्म होता है ॥२३७॥

आगे आहारक शरीर की स्थिति आदि दिखाते है ।

अव्वाघादी अंतोमुहुत्त कालट्ठिदी जहण्णिदरे ।
पज्जत्तीसपुण्णे मरणंपि कदाचि सभवइ ॥२३८॥

अन्तर्मुहूर्त सर्व थिति, रुके न रोके कोय ।
पूर्ण भये पर्याप्त के, कभी मरण भी होय ॥२३८॥

अर्थ—आहारक शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मु-हूर्त मात्र है यह शरीर किसी पदार्थ से रुकता नही न किसी पदार्थ को रोकता है और आहारादि पर्याप्तियो के पूर्ण होने पर मरण भी हो सकता है ॥२३८॥

आगे आहारककाययोग का स्वरूप दिखाते है ।

आहरदि अणेण मुणी सुहमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारगो जोगो ॥२३९॥

निज संदेह निवारवे, जा जहँ केवलि लोग ।
सूक्ष्म अर्थ उनसे गहे, यों आहारक योग ॥२३९॥

अर्थ—उपरोक्त प्रमत्त मुनि अपने संदेह निवारने के लिये केवली-भगवान के पास इस शरीर के द्वारा पहुँचकर अपने संदेह का निवारण करता है अर्थात् सूक्ष्म तत्व का ग्रहण करता है इसलिये इस शरीर द्वारा होने वाली क्रिया को आहारककाययोग कहते हैं ॥२३९॥

आगे आहारकमिश्रयोग का स्वरूप दिखाते हैं।

आहारयमुत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्ण तं।
जो तेण संपजोगो आहारय मिस्सजोगो सो ॥२४०॥

पूर्ण शरीर न जब तलक, आहारक मिस योग।
इसके द्वारा जो क्रिया, आहारक मिस योग ॥२४०॥

अर्थ—जबतक आहारक शरीर की पर्याप्तियां पूर्ण नहीं होती तबतक उसको आहारकमिश्रकाय योग कहते हैं ॥२४०॥

आगे कार्माणकाय योग का स्वरूप दिखाते हैं।

कम्मेव य कम्मभवं कम्मइयं जो दु तेण संजोगो।
कम्मइयकायजोगो इगिविगतिगसमयकालेसु ॥२४१॥

कर्म उदय से कर्म तन, उससे योगहिं चीन।
वही कर्म तन योग है, थितिछण इक दो तीन ॥२४१॥

अर्थ—कर्माण शरीर नाम कर्म के उदय से होने वाले शरीर को कार्माणकाय कहते हैं और इसके द्वारा होने वाली क्रिया को कार्माणकाययोग कहते हैं इसकी स्थिति एक, दो अथवा तीन समय तक होती है ॥२४१॥

आगे विक्रियक और आहारक शरीर का विरोध दिखाते हैं।

वेगुव्वियआहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्हि।
जोगोवि एक्ककाले एक्केव य होदि णियमेण ॥२४२॥

आहारक विक्रिय क्रिया, युगपत प्रमत न होय।
एक समय में नियम से, एक योग ही होय ॥२४२॥

अर्थ—विक्रियक और आहारक शरीर की क्रिया प्रमत्त गुण-स्थान मे होती है किन्तु युगपत् नही होती कारण एक समय मे एक ही योग होता है ॥२४२॥

आगे योग रहित का स्वरूप दिखाते हैं।

जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया।
ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंतबलकलिया ॥२४३॥

जिसके योग न शुभाशुभ, पुण्य पाप का कोय।
सो अनुपम बल नंतयुत, योग रहित जिय होय।२४३।

अर्थ—जिसके पुण्य और पापास्रव के कारण शुभासुभ योग नही हैं उसको अयोगी जिन भगवान कहते है वह उपमा रहित और अनंतबल सहित है ॥२४३॥

आगे शरीरो मे कर्म और नोकर्म सज्ञा दिखाते हैं।

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजामकम्मुदये।
चउणोकम्मसरीरा कम्मेव य होदि कम्मइयं ॥२४४॥

नाम कर्म के उदय से, होवें सर्व शरीर।
आदि चार नोकर्म हैं, शेष कर्म वच वीर ॥२४४॥

अर्थ—औदारिक, विक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण शरीर नाम कर्म के उदय से होते हैं इनमे आदि के शरीर को नो कर्म कहते हैं और शेप शरीर को कर्म कहते है ॥२४४॥

आगे एक समयप्रबद्ध मे अणुओ की सख्या दिखाते हैं।

परमाणूहि अणंतहिं वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु ।
ताहि अणंतहि णियमा समयपवद्धो हवे एक्को ।।२४५।।

अमित राशि परमाणु की, एक वर्गणा मान ।
राशि वर्गणा कीअमित, समयप्रवद्ध पिछान ।२४५।

अर्थ—अनत परमाणुओ की राशि को एक वर्गणा कहते हैं अनत-वर्गणा की राशि को एक समयप्रवद्ध कहते हैं ।।२४५।।

आगे औदारिकादि मे समय प्रवद्धो की सख्या दिखाते हैं ।

ताणं समयपवद्धा सेढिअसखेज्जभागगुणिदकमा ।
णंतेण य तेजदुगा परं परं होदि सुहम खु ।।२४६।।

श्रेणी भाग असंख्य गुणि, त्रय के समय - प्रवद्ध ।
गुणि अनंत तेजादि तक, परें परें सूक्ष्माद्ध ।।२४६।।

अर्थ—औदारिक से विक्रियक के और विक्रियक से आहारक के समयप्रवद्ध श्रेणी के असख्यातवे भाग से गुणे अधिक २ हैं तथा आहारक से तैजस के और तैजस से कार्माण शरीर के समयप्रवद्ध अनत गुणे अधिक २ हैं किन्तु ये पाचो शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं ।।२४६।।

आगे उन समयप्रवद्ध और वर्गणाओ की अवगाहना दिखाते है ।

ओगाहणाणि ताणं समयपवद्धाण वग्गणाण च ।
अंगुलअसंखभागा उवरुवरिमसंखगुणहोणा ।।२४७।।

समय - प्रवद्धरु वर्गणा, अवगाहना उन चीन ।
अंगुल असंख्य भाग अग, अग असंख्य गुण हीन ।२४७।

अर्थ—इन सव शरीरो के समयप्रवद्ध और वर्गणाओ की अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग वरावर है किन्तु पूर्व पूर्व की

अपेक्षा आगे आगे के शरीरो के समयप्रवद्ध और वर्गणाओ की अवगाहना सामान्य से अगुल के असख्यातवे भाग वरावर है किन्तु आगे आगे के शरीरो के समयप्रबद्ध और वर्गणाओ की अवगाहना का परिणाम क्रम से असंख्यात २ गुणा हीन है ॥२४७॥

आगे उसी आशय को माधव चन्द्रदेव के मत से दिखाते है।

तस्समयवद्धवग्गणओगाहो सुहुमअंगुलासंख— ।
भागहिदविंदअंगुलमुवरुवरिं तेण भजिदकमा ॥२४८॥

समय-प्रवद्ध रु वर्गणा, अवगाहन थल लाग।
सूक्षम अंगुल एक है, असंख्यातवें भाग ॥४८-१॥
भक्त घनांगुल बराबर, माधव का मत चीन।
परें परें अवगाहना, है असंख्य गति हीन ।४८-२।

अर्थ—श्री माधवचन्द्र देव के मत से उपरोक्त शरीरो के समयप्रवद्ध और वर्गणा की अवगाहना का क्षेत्र सूक्ष्मागुल के असख्यातवे भाग से घनागुल मे भाग देने से जो परिमाण आता है उसके वरावर है किन्तु पूर्व पूर्व की अपेक्षा आगे आगे की अवगाहना का क्षेत्र असख्यात २ गुणा हीन है ॥२४८॥

आगे विस्रसोपचय का स्वरूप दिखाते है।

जीवादोणंतगणा पडिपरमाणुम्हि विस्ससोपचया ।
जीवेण य समवेदा एक्केक्कं पडि समाणाहु ॥२४९॥

जिय प्रदेश से वंधे हैं, कर्म नोकर्म खंत।
इनके इक इक अणू पर, जीवराशि है नंत ॥४६-१॥
विस्रस – उपचय के अणू, बंधे तुल्यता ठान।
कर्म रूप वे हैं नहीं, आगत आशावान ॥४६-२॥

अर्थ—जैसे जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ कर्म और नोकर्म के परमाणु बँधे है तैसे प्रत्येक कर्म और नोकर्म के परमाणु के साथ जीवराशि से अनत गुणे विस्रसोपचय के परमाणु विना जीव के निमित्त के स्वत. स्वभाव समान रूप से बँधे है वे कर्म रूप तो है नही किन्तु कर्म वनने की आशा मे है इस कारण इनको विस्रसोप-चय कहते हैं ॥२४९॥

आगे पाच देह धारियो के उत्कृष्ट सचय को दिखाते है।

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे सगसगउक्कस्ससंचओ होदि ।
पणदेहाणं वरजोगादिससामग्गिसहियाणं ॥२५०॥

जेष्ठ योग को आदि ले, जो सामग्री मान।
वर संचय का हेतु है, उस उस मिले पिछान।२५०-१।
पंच देह के धरनि के, वर तिथि अतिम काल।
अपने अपने योग्य ही, संचय करें विशाल ॥२५०-२॥

अर्थ—उत्कृष्ट योग को आदि लेकर जो जो सामग्री उस कर्म और नोकर्म के उत्कृष्ट संचय मे कारण है उस उस सामग्री के मिलने पर औदारिकादि पाँचो ही शरीर वालों के उत्कृष्ट स्थिति के अत समय मे अपने २ योग्य कर्म और नोकर्म का उत्कृष्ट संचय होता है ॥२५०॥

आगे उस उत्कृष्ट संचय की सामग्री को दिखाते है।

आवासया हु भवअद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य ।
ओकट्टुक्कट्टणया छच्चेदे गुणिदकम्मंसे ॥२५१॥

आवश्यक भव अद्ध अरु, आयु योग संक्लेश।
अपकर्षण उत्कर्षणा, छै वर संचय भेष ॥२५१॥

अर्थ–जिस जीव के कर्मो का उत्कृष्ट सचय होता है उसके पूर्व उसके उत्कृष्ट सचय करने के लिये भवाद्धा, आयु, योग, सक्लेश, अपकर्षण और उत्कर्षण ये छै. आवश्यक कारण होते हैं ॥२५१॥

भवाद्धा—पर्याय सवधीकाल को भवाद्धा कहते है।

आयु—आयु के परिमाण को आयु कहते है।

योग—मन, वचन और काय की क्रिया को योग कहते हैं।

सक्लेश—तीव्रकपाय भाव को सक्लेश भाव कहते हैं।

अपकर्षण–ऊपर के परमाणुओ को नीचे के परमाणुओ मे मिलाने को अपकर्पण कहते हैं।

उत्कर्षण—नीचे के परमाणुओ को ऊपर के परमाणुओं मे मिलाने को उत्कर्षण कहते है।

आगे पाच शरीरो की उत्कृष्ट स्थिति को दिखाते है।

पल्लतियं उवहीण तेत्तीसांतेमुहुत्त उवहीणं।
छावट्ठी कम्मट्ठिदि बंधुकस्सट्ठिदीताणं ॥२५२॥

तीन पल्य तेतीस दधि, अन्तर्मुहूर्त्त हार।
छासठ सागर तेज की, शेष बंध अधिकार ॥२५२॥

अर्थ–औदारिक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य की है विक्रियक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर की है आहारक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है तैजस शरीर की उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर की है और कार्माण शरीर की उत्कृष्ट स्थिति बध अधिकार (७० कोटा कोटी सागर) मे लिखी है उतनी है ॥२५२॥

आगे उपरोक्त स्थिति की गुणहानि (लम्बाई) दिखाते है।

अंतोमुहुत्तमेत्तं गुणहाणी होदि आदिमतिगाणं।
पल्लासंखेज्जदिमं गुणहाणी तेजकम्माणं ॥२५३॥

अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है, आदि तीन गुणहान ।
पल्य असंख्ये भाग है, तैजे कर्म गुणहान ॥२५३॥

अर्थ—औदारिक, विक्रियक और आहारक शरीर की गुणहानि का परिमाण अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है और तैजसशरीर और कार्माणशरीर की गुणहानि का परिमाण पल्य के असख्यातवे भाग है ॥२५३॥

आगे समयप्रवद्ध का वधादि मे द्रव्य संख्या दिखाते है ।

एक्कं समयपवद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि ।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपवद्धं हवे सत्तं ॥२५४॥

प्रतिक्षण समय-प्रवद्ध का, बंध उदय पहिचान ।
सत्व अन्त में हीन कुछ, गुणित डेड गुण हान ॥२५४॥

अर्थ—प्रतिसमय एक समयप्रवद्ध का वध और उदय होता है किन्तु अत मे कुछ कम डेड गुणहानि गुणित समयप्रवद्धो की सत्ता रहती है भावार्थ—तैजस और कार्माण शरीर के समयप्रवद्धो का वध, उदय और सत्ता प्रतिसमय होती ही रहती है किन्तु किसी अत निषेक के अत समय कुछ कम डेड गुणिहानि गुणित समयप्रवद्धो की सत्ता रहती है। औदारिक और विक्रियक शरीर के समयप्रवद्धो का वध, उदय और सत्ता अपने २ शरोर ग्रहण के समय से प्रारभ होकर अपने २ शरीर के अत समय तक ही रहती है किन्तु स्थिति के अत समय कुछ कम डेड गुणहानि गुणित समयप्रवद्धो की सत्ता रहती है और आहारकशरीर का उस शरीर ग्रहण के प्रथम समय से लेकर अन्त-र्मुहूर्त्त स्थिति तक कुछ कम डेड गुण हानि से गुणित समयप्रवद्धो का उदय और सत्व रहता है और वध पूर्व किया था ॥२५४॥

आगे औदारिक और विक्रिय की विशेषता दिखाते है ।

णवरि य दुसरीराणं गलिदवसेसाउमेत्तठिदिबंधो ।
गुणहाणीण दिवड्ढं संचयमुदयं च चरिमम्हि ॥२५५॥

किन्तु आदि दो तन विषें, शेष आयु थिति बंध।
अंत डेड गुण हानि का, सत्ता उदय प्रबन्ध ॥२५५॥

अर्थ—औदारिक और विक्रियक शरीर के बँधे हुये समयप्रबद्धो की स्थिति आयु के अन्त तक ही होती है और आयु के अन्त समय मे कुछ कम डेढ गुणहानि समयप्रवद्धो का उदय और सत्व रहता है अर्थात् इन शरीरो की स्थिति तक ही इनके परमाणु सत्व और उदय मे आते है स्थिति के पश्चात् सत्व और उदय नही रहता ॥२५५॥

आगे औदारिक शरीर के उत्कृष्ट सत्व को दिखाते है।

ओरालियवरसंचं देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स।
तिरियमणुस्सस्स हवे चरिमदुचरिमे तिपल्लठिदिगस्स ॥२५६॥

ओदा वर संचय करे, देवोत्तर नर ढोर।
आदि एक दो समय में, तीन पल्य थिति मोर ॥२५६॥

अर्थ—औदारिक शरीर का उत्कृष्ट सचय ३ पल्य की आयु वाले देवकुरु और उत्तरकुरु के भोगभूमिया मनुष्य और तिर्यंचो के जन्म के प्रथम समय अथवा द्वितीय समय मे होता है ॥२५६॥

आगे विक्रियक का उत्कृष्ट सचय दिखाते है।

वेगुव्वियवरसंचं वावीससमुद्दआरणदुगम्हि ।
जह्मा वर जोगस्स य वारा अण्णत्थ णहि वहुगा ॥२५७॥

विक्रिय वर संचय करे, आरण दधि बाईस।
सामग्री बहु योग वर, अन्य थान नहिं दीस ॥२५७॥

अर्थ— विक्रियकशरीर का उत्कृष्ट सचय २२ सागर की आयु

वाले आरण और अच्युत स्वर्ग के देवो के होता है कारण विक्रियक-शरीर का उत्कृष्टयोग और उस योग्य सामग्री अनेक वार अन्य स्थान पर प्राप्ति नही होती ॥२५७॥

आगे तैजस और कार्माण का उत्कृष्ट सचय दिखाते है।

तेजासरीरजेट्ठ सत्तमचरिमम्हि विदियवारस्स ।
कम्मस्स वि तत्थेव य णिरये वहुवारभमिदस्स ॥२५८॥

तैजस वर संचय करे, द्वितिय जन्म भू सात ।
नरक भ्रमण बहु वार कर, कर्म रीति उस जात ।२५८।

अर्थ—तैजस शरीर का उत्कृष्ट सचय सातवे नरक मे दूसरी वार उत्पन्न होने वाले जीव के होता है और कार्माण शरीर का उत्कृष्ट सचय अनेक वार नरक मे भ्रमण कर फिर सातवें नरक मे उत्पन्न होने वाले जीव के होता है। इसके अतिरिक्त आहारक शरीर का उत्कृष्ट सचय आहारक शरीर के प्रारभ करने वाले के होता है ।२५८।

आगे अग्नि, पवन, विक्रिया कायवालो की सख्या दिखाते है।

वादरपुण्णा तेऊ सगरासीए असंखभागमिदा ।
विक्किरियसत्तिजुत्ता पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥२५९॥

थूल अग्नि पर्याप्त में, विक्रिय अगणित भाग ।
थूल पवन पर्याप्त में, विक्रिय अगणित भाग ।२५९।

अर्थ—वादरपर्याप्तअग्निकाय के जीवो की जितनी सख्या है उसमे असख्यातवें भाग विक्रियाशक्ति के धारकजीव है और वादर पर्याप्त-पवनकाय के जीवो की जितनी सख्या है उसमे असख्यातवे भाग विक्रिया शक्ति के धारक जीव है ॥२५९॥

आगे मनुष्य और पशुओ मे विक्रियधारियों की सख्या दिखाते है।

पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु ।
वेगुव्वियपंचक्खा भोगभुमा पुह विगुव्वंति ॥२६०॥

पल्य असंख्ये भाग से, गुणित घनांगुल मान ।
जगश्रेणी उसमें गुणे, जो फल उपजे मान ॥६०-१॥
पंचेन्द्रिय पर्याप्त पशु, अ–पृथक विक्रिय धार ।
भोग भूमियां पशु मनुष, चक्री पृथक संभार ।६०-२।

अर्थ — अपृथकविक्रियाशक्ति के धारक पर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यंच पल्य के असख्यातवें भाग से गुणित घनागुल का जगत्श्रेणी के साथ गुणा करने से जो सख्या होती है उतने है और भोगभूमि के सब मनुष्य और तिर्यंच तथा सब ही चक्रवर्त्ती पृथकविक्रियाशक्ति के धारक है ॥२६०॥

पृथक विक्रिया—अपने ही शरीर मे से अलग अनेक प्रकार के शरीर बनाने को पृथक विक्रिया कहते है ।

अपृथक विक्रिया—अपने शरीर के अनेक आकार बनाने को अपृथक विक्रिया कहते है ।

आगे एक दो और तीन योग वालो की सख्या दिखाते है ।

देवहिं सादिरेया तिजोगिणो तेहिं हीण तसपुण्णा ।
वियजोगिणो तदूणा संसारी एक्कजोगा हु ॥२६१॥

देवों से कुछ अधिक हैं, तीन योग के धार ।
त्रस पूरण में वे घटें, दोय योग के धार ॥६१-१॥
संसारी में कम करो, द्वय त्रय योगी राश ।
एक योगियों का वही, संख्या उपजे खास ॥६१-२॥

अर्थ—देवो से कुछ अधिक तीन योग (मन, वचन, काय) वालों की सख्या है पर्याप्त त्रसो की सख्या मे तीन योग वालो की संख्या घटाने से जो सख्या शेप रहती है उतने दो योग वाले है और संसारी जीवो की सख्या मे दो योग और तीन योग वालो की सख्या घटाने से जो सख्या शेप रहती है उतने एक योग वाले जीव है ॥२६१॥

आगे चारो मन और वचन योग वालो का काल दिखाते है।

अंतोमुहुत्तमेत्ता चउमणजोगा कमेण संखगुणा ।
तज्जोगो सामण्ण चउवचिजोगा तदो दु संख गुणा ॥२६२॥

अन्तर्मुहूर्त मात्र है, चउ मन योगी काल ।
पूर्व पूर्व से संख्य गुणि, अंतर पड़ा विसाल ।६२-१।
संख्य गुणा मन योग से, वचन योग का काल ।
अंतर इनमें संख्य गुणि, अन्मुर्हूर्त काल ॥६२-२॥

अर्थ—सत्यमनयोग, असत्यमनयोग, उभयमनयोग और अनुभय मनयोगो मे से प्रत्येक का काल अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है। तो भी पूर्व पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर काल क्रम से सख्यात गुणा अधिक है और चारों का जोड भी अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है तथा चारो मन योगो के जोड का जितना परिमाण है उससे सख्यात गुणा अधिक काल चारो वचन योगो का है और प्रत्येक वचन योग का काल भी अन्तर्मुहूर्त्त है तो भी पूर्व २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर काल क्रम से सख्यात गुणा अधिक है और चारो का जोड भी अन्तर्मुहूर्त्तमात्र है ॥२६२॥

आगे सत्य मन योगादि की सख्या दिखाते है।

तज्जोगो सामण्णं काओ संखाहदो तिजोगमिदं ।
सव्वसमासविभजिदं सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी ।२६३।

बचन योग सामान्य से, संख्य गुणा तन काल।
तीन योग जिय राशि में, तीन योग रख काल।६३-१।
भाग दयें जो फल कढे, उसका रख एक भाग।
निज निज संख्या गुणा कर, निज निज संख्या जाग ३-२

अर्थ - जितना सामान्य वचन योग का काल है उससे सख्यात गुणा काल काययोग का है तीनो योगो के काल की सख्या को जोड देने से जो सख्या आवे उसको उपरोक्त तीन योग वाले जीवो की सख्या मे भाग देने से जो लब्ध आवे उससे सत्यमनयोगी के काल के जितने समय है उनका गुणा करने से जो सख्या आवे उतने सत्यमनयोगी जीव है इसी प्रकार असत्यमनयोग से लेकर काययोग तक जीवो की सख्या निकालने की रीति है ॥२६३॥

आगे कार्माण और औदारिक योगियो की सख्या दिखाते है।

कम्मोरालियमिस्सयओरालद्धासु संचिदअणंता।
कम्मोरालियमिस्सय ओरालियजोगिणो जीवा ॥२६४॥

कर्मौदारिक मिश्र अरु, औदासंचित वंत।
कर्मौदारिक मिश्र अरु, औदा योगी नंत ॥२६४॥

अर्थ—कार्माणकाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और औदारिक काययोग के समय मे इकट्ठे होने वाले कार्माणकाययोगी, औदारिक-मिश्रकाययोगी और औदारिककाययोगीजीव प्रत्येक अननानत है ॥२६४॥

आगे उसी आशय को स्पष्ट दिखाते है।

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी।
सगगुणगुणिदे थोवो असंखसंखाहदो कमसो ॥२६५॥

त्रयक्षण अरु संख्यावली, संख्य गुणावलि ख्यात।
इन तीनों के जोड़ से, क्षण संख्या जो प्राप्त २६५-१
इक योगी में भाग दे, उसका फल जो पाग।
निज निज क्षण से गुणा कर, निज निज संख्या जाग ॥२
कर्म योग कम उन्हो से, मिश्रा गुणे असंख्य।
औदारिक तन योगिया, उनसे गुणे जु संख्य ॥३

अर्थ—कार्माणकाययोग का काल तीन समय है औदारिकमिश्र-काययोग का काल सख्यात आँवली है, और औदारिककाययोग का काल उससे सख्यात गुणी (औदारिक मिश्र काययोग के काल से) आवली अधिक है इन तीनो के काल की संख्या के जोड़ का एक योगी की सख्या मे भाग देने से जो लब्ध आवे उसका कार्माण काययोग के काल की संख्या मे गुणा करने से जो सख्या आवे उतने कार्माण काययोगी है उसी लब्ध का औदारिकमिश्रकाययोग के काल की सख्या मे गुणा करने से जो सख्या आवे उतने औदारिकमिश्रकाययोगी है और उसी लब्ध का औदारिककाययोग के काल की सख्या मे गुणा करने से जो सख्या आवे उतने औदारिककाययोगी है इनमे सबसे थोडे कार्माणकाय योगी है इनसे असख्यात गुणे औदारिकमिश्रकाययोगी है और इनसेसख्यात गुणे औदारिककाययोगी है ॥२६५॥

आगे व्यतरों का उत्पन्न काल दिखाते है।

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे।
आवलिअसंख्यभागो संखेज्जावलिपमा कमसो ॥२६६॥

उपजें या उपजें नहीं, आवलि असंख्य भाग।
बारह मुहूर्त्त व्यंतरा, आयु सहस दश लाग ॥२६६॥

अर्थ—यदि १० हजार वर्ष की आयु वाले व्यतर देव लगातार उत्पन्न होते ही रहे तो उनका उत्कृष्ट काल आवली के असख्यातवे भाग है यदि नही उपजे तो उनका उत्कृष्ट काल १२ मुहूर्त है इसके पश्चात् वहा कोई न कोई व्यतर देव १० हजार वर्ष की आयु वाला अवश्य उपजता है ॥२६६॥

आगे उपज काल के भेदों का परिमाण दिखाते है ।

तहिं सव्वे सुद्धसला सोवक्कमकालदो दु सखगुणा ।
तत्तो सखगुणूणा अपुण्णकालम्हि सुद्धसला ॥२६७॥

उपज भेद संख्यात गुणि, उपज काल से मान ।
संख्य गुणे उससे जु कम, अपूर्ण क्षण भेदान ॥२६७॥

अर्थ—उस दश हजार वर्ष की जघन्य स्थिति मे अउपजकाल (१२ मुहूर्त) को छोड कर केवल पर्याप्त और अपर्याप्त के उपज काल के भेदों का परिमाण उपज काल के परिमाण से संख्यात गुणा है और इससे सख्यात गुणा कम अपर्याप्त काल के उपज काल के भेदो का परिमाण है ॥२६७॥

आगे मिश्रयोग के धारक व्यतरो की सख्या दिखाते है ।

तं सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकाललद्धाहिं ।
सुद्धसलागाहिं गुणे वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु ॥२६८॥

उपज भेद का भाग दे, व्यंतर में लब्धाय ।
उपज काल अन पूर्ण गुणि, व्यंतर तन मिश्राय ।२६८॥

अर्थ—व्यतर देवो की सख्या (दश हजार वर्ष) मे उपजकाल के भेदो (उपजकाल से संख्यात गुणे) का भाग देने से जो लब्ध आवे उसका अपर्याप्तकाल के उपजकाल के भेदो (उससे सख्यात गुणे कम) के साथ गुणा करने से जो सख्या आवे उतने विक्रियमिश्र-

योग के धारक व्यंतर देव हैं ॥२६८॥

आगे विक्रियमिश्र और काययोग की संख्या दिखाते है।

तहिं सेसदेवणारयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं।
सुरणिरयकायजोगा वेगुव्वियकायजोगा हु ॥२६९॥

और शेष सुर नरक मिस, मिल विक्रिय मिस योग।
सुर नारक तन योग मिल, सब विक्रिय तन योग।२६९।

अर्थ—उपरोक्त व्यंतर देवो के मिश्रकाययोग की सख्या मे शेष देव और नारकियों के मिश्रकाययोग की सख्या मिला देने से सब विक्रियकमिश्रकाययोग की संख्या होती है तथा देव और नारकियो के काययोग की सख्या मिलाने से सब विक्रियककाययोग की सख्या होती है ॥२६९॥

आगे आहारकमिश्र और काययोग की सख्या दिखाते है।

आहारकायजोगा चउवण्णं होंति एकसमयम्हि।
आहारमिस्सजोगा सत्तावीसा दु उक्कस्सं ॥१७०॥

आहारक तन योगिया, चउवन हों इक काल।
आहारक मिस योगिया, सत्ताइस इक काल ॥२७०॥

अर्थ—आहारककाययोगवाले जीव एक काल मे अधिक से अधिक ५४ हो सकते है और आहारक मिश्रकाययोग वाले जीव अधिक से अधिक एक काल मे २७ हो सकते है २७०॥

योग मार्गणा समाप्त

आगे भाव और द्रव्य वेद का स्वरूप दिखाते है।

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा ॥२७१॥

नारि षंड नर उदय से, भाव षंड नर नार।
नाम उदय से द्रव्यता, कहीं विषम सम धार ॥२७१॥

अर्थ—जीव पुरुष, स्त्री अथवा नपुसकवेदमोहकर्म के उदय से भाव पुरुष, स्त्री अथवा नपुसक होता है तथा पुदगल आगोंपांगनाम-कर्म के उदय से द्रव्य पुरुष, स्त्री अथवा नपुसक होता है ये (द्रव्यवेद और भाववेद) अधिकास चारो गतियो मे एक से (जैसा द्रव्य-वेद वैसा भाववेद) होते है किन्तु किसी मनुष्य अथवा तिर्यंच के कभी विपम (कोई द्रव्यवेद कोई भाव) भी होता है ॥२७१॥

आगे वेद उदय का कार्य दिखाते है।

वेदस्सुदीरणाए परिणामस्स य हवेज्ज संमोहो।
संमोहेण ण जाणदि जीवो हि गुणं व दोष वा ॥२७२॥

उदय उदीरण वेद के, भावविषें हो मोह।
मोह भये गुण दोष की, बुद्धि सर्वथा खोय ॥२७२॥

अर्थ—वेद नामक मोहकर्म के उदय अथवा उदीरणा से जीव के मोह उत्पन्न होता है और मोह से गुण अथवा दोष का विचार सर्वथा नही रहता ॥२७२॥

आगे पुरुप का स्वरूप दिखाते है।

पुरुगुणभोगे सेदे करोदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं।
पुरुउत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो २७३॥

जो होवे नर चिन्ह युत, इच्छे तिय से भोग।
अरु गुण दोष विचार युत, उसको कहते लोग ।२७३।

अर्थ—जो पुरुष के चिन्ह सहित हो जो स्त्री संभोग की इच्छा रखता हो और गुण तथा दोषो का विचार रखता हो उसको पुरुष कहते हैं ॥२७३॥

आगे स्त्री का स्वरूप दिखाते हैं।

छादयदि सयं दोसे णयदो छाददि परं वि दोसेण।
छादणसीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी ॥२७४॥

जो नारी के चिन्ह युत, इच्छे नर संभोग।
अरु गुण दोष विचार विन, उसको नारी वोग॥२७४॥

अर्थ—जो स्त्री के चिन्ह सहित हो जो पुरुष से संभोग करने की इच्छा रखती हो और जो गुण तथा दोषो का विचार नही रखती हो उसको स्त्री कहते है ॥२७४॥

आगे नपुंसक का स्वरूप दिखाते है।

णेवित्थी णेव पुमं णउंसओ उहयलिंगविदिरित्तो।
इट्टावग्गिसमाणगवेदणगरुओ कलुसचित्तो ॥२७५॥

जो न नारि अरु पुरुष हो, उभय लिंग विन पंड।
अवा अग्निवत् वेदना, कलुषित चिन्ह अखंड॥२७५॥

अर्थ—जो न स्त्री हो न पुरुष हो अर्थात् दोनो लिंग से रहित हो जिसकी भट्टा की अग्नि के समान तीव्र कामवेदना हो और जो प्रति समय अपने हृदय में कलुषित परिणाम रखता हो उसको नपुंसक कहते है ॥२७५॥

आगे वेद रहित का स्वरूप दिखाते है।

तिणकारिसिट्ठपागग्गिसरिसपरिणामवेदणुम्मुक्का ।
अवगयवेदा जीवा सगसंभवणंतवरसोक्खा ॥२७६॥

तृण कोला अरु अवा की, अग्नि तुल्य त्रयवेद ।
इन विन अपगत वेद है, सुख अनंत निज वेद ॥२७६॥

अर्थ—जो तृण, कोला और अवा (ढकी अग्नि) की अग्नि के समान होने वाले तीनो वेदो के परिणाम से रहित हो उसको अपगत (वेदरहित) वेद वाला जीव कहते है। वह आत्मीक सुख का भोगता है ॥२७६॥

आगे ज्योतिष, व्यतर और पशुवेदियो की सख्या दिखाते है ।

जोइसियवाणजोणिणितिरिक्खपुरुसा य सण्णिणो जीवा ।
तत्तेउपम्मलेस्सा संखगुणूणा कमेणेदे ॥२७७॥

ज्योतिष व्यंतर नारि पशु, पशु नर सैनी चीन ।
तैज पद्मा लेश्यापशु, संख्य संख्य गुण हीन ॥२७७॥

अर्थ—ज्योतिषीदेव, व्यतरदेव, पशुस्त्री, पुरुषवेदीतिर्यच, सैनीपशु, तैजलेश्यावालेपशु और पद्मलेश्या वाले पशुओ की सख्या क्रमसे एक दूसरे से सख्यात सख्यात गुणीहीन है ॥२७७॥

आगे देव और देवियो की संख्या दिखाते है ।

इगिपुरिसे बत्तीस देवी तज्जोगभजिददेवोघे ।
सगगुणगारेण गुणे पुरुषा महिला य देवेसु ॥२७८॥

एक देव बत्तीस तिय, इसे भक्त सुर राश ।
गुणि इक या बत्तीस से, सुर या सुरी प्रकाश ॥२७८॥

अर्थ—एक देव के कम से कम ३२ देवाँगना होती है इसलिये एक

और वत्तीस मिलकर ३३ सख्या होती है इसका सव देव सख्या मे भाग देने से जो लब्ध आवे उसको एक से गुणा करने से देव सख्या और ३२ से गुणा करने से देवियो की सख्या निकलती है ॥२७८॥

आगे स्त्री, पुरुप और नपुसको की सख्या दिखाते है।

देवेहिं सादिरेया पुरिसा देवीहिं साहिया इत्थी।
तेहिं विहीण सवेदो रासी संढाण परिमाणं ॥२७९॥

देवों से साधिक पुरुष, सुर तिय साधिक नार।
वेद राशि में उभय तज, संख्या षंड सँभार॥२७६॥

अर्थ—देवो की संख्या से कुछ अधिक पुरुप वेद वाले है। देवियो की संख्या से कुछ अधिक स्त्री वेद वाले है तथा सव वेद राशि (६वें गुण स्थान तक की जीव राशि) मे से स्त्री और पुरुप वेद वालो की सख्या कम करने से शेप नपुंसक वेद वाले है ॥२७६॥

आगे ११ स्थानो मे अधिकता का क्रम दिखाते है।

गब्भणपुइत्थिसण्णी सम्मुच्छणसण्णिपुण्णगा इदरा।
कुरुजा असण्णिगब्भजणपुइत्थीवाणजोइसिया ॥२८०॥
थोवा तिसु संखगुणा तत्तो आवलिअसंखभाग गुणा।
पल्लासंखेज्जगुणा तत्तो सव्वत्थ संखगुणा ॥२८१॥

गर्भज सैनी नपुंसक, नर अरु नारी योग।
समन समूच्छन पूर्ण अरु, अरुअपूर्ण भू भोग।२८०-१।
मनविन गर्भज नपुंसक, नर अरु नारी मान।
व्यंतर ज्योतिष ग्यारहा, क्रम सेरख स्थान।२८०-२।

पहिला थोड़ा फोरि लय, संख्य संख्य गुणि थान ।
आवलि असंख्य भाग गुणि, पंचम थल को मान ८१-१
पल्य असंख्ये भाग गुणि, छट्टे थल को मान ।
संख्य संख्य गुणि शेष को, अधिक अधिक सब जान ८१-२

अर्थ—गर्भजसैनीनपुँसक सब ही से थोडे है इन से गर्भजसैनी-पुरुपवेद वाले सख्यात गुणे अधिक है इनसे गर्भजसैनीस्त्रीवेद वाले सख्यात गुणे अधिक है इनसे संमूच्छनसैनीपर्याप्त सख्यात गुणे अधिक है इनसे समूच्छनसैनीअपर्याप्त आवली के असख्यातवे भाग गुणे अधिक है इनसे भोगभूमिया (स्त्री, पुरुष) पल्य के असंख्यातवे भाग गुणे अधिक है इनमे असैनीगर्भज नपुसकवेदवाले सख्यातगुणे अधिक है इनसे असैनीगर्भजपुरुषवेद वाले सख्यात गुणे अधिक है इनसे गर्भज-असैनी स्त्रीवेदवाले सख्यातगुणे अधिक है इन से व्यतरदेव सख्यात-गुणे अधिक है और इनसे ज्योतिपीदेव सख्यात गुणे अधिक है ॥२८०-२८१॥

वेदमार्गणा समाप्त ।

आगे कपाय का स्वरूप दिखाते है ।

सुहदुक्खसुबहुसस्सं कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स ।
संसारदूरमेरं तेण कसाओत्ति णं वेंति ॥२८२॥

सुख दुख बहु फल जीव को, कर्म चेत्र उपजाय ।
बहुत दूर संसार हद, सो कषाय कहलाय ॥२८२॥

अर्थ—जीव के जिस कर्म से अनेक प्रकार के ससारी सुख अथवा दुक्ख उपजते है और जिसके फल से सुख अथवा दुक्ख रूपी ससार की

सीमा बहुत दूर होजाती है उस कर्म को कषाय कहते ॥२८२॥

आगे कषाय का स्वरूप दूसरी रीति से दिखाते है।

सम्मत्तदेशसयलचरित्तजहक्खादचरणपरिणामे।

घादंति वा कषाया चउसोलअसखलोगमिदा ॥२८३॥

समकित देश सकल तथा, यथाख्यात परिणाम।

जो घाते तु कषाय है, चउ अरु सोलह नाम ॥२८३॥

अर्थ—जो सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यात चारित्त के भावो का विनाश करती है उसको कषाय कहते है वह अनतानुवधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सज्वलन के भेद से चार प्रकार की है और इन चारो भेद मे क्रोध, मान माया और लोभ के भेद से ४-४ भेद है इस कारण उसके १६ भेद भी है ॥२८३॥

आगे क्रोध कपाय के भेद दिखाते है।

सिलपुढविभेदधूलीजलराइसमाणओ हवे कोहो।

णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥२८४॥

शिला भूमि अरु धूलि जल, रेखा वत् है क्रोध।

नारक तिर्यग मनुष सुर, उत्पादक इन बोध ।२८४।

अर्थ—क्रोध कपाय चार प्रकार की होती है, पत्थर रेखा समान, पृथ्वी रेखा समान, धूलि रेखा समान और जल रेखा समान ये भेद क्रमसे नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति देने वाले है ॥२८४॥

आगे मान कपाय के भेद दिखाते है।

सेलट्ठिकट्ठवेत्ते णियभेएणणुहरंतओ माणो।

णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥२८५॥

पत्थर हड्डी काठ अरु, बैंत तुल्य चउ मान ।
नारक तिर्यंग मनुष सुर, इन उत्पादक जान ॥२८५॥

अर्थ –मान कषाय चार प्रकार की होती है । पत्थर के समान, हड्डी के समान, काठ के समान और बेत के समान ये भेद क्रम से नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के देने वाले है ॥२८५॥

आगे मायाकपाय के भेद दिखाते है ।

वेणुवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तए य खोरप्पे ।
सरिसी माया णारयतिरियणरामरगईसु खिवदि जिय ॥२८६॥

वांस मूल बकरा सिंगा, गाय मूत्र त्रय भेव ।
खुरपावत् माया करे, नारक पशु नर देव ॥२८६॥

अर्थ–माया कपाय चार प्रकार की होती है वास की जड समान, वकरा के सीग समान, गाय मूत्र समान (चलता हुआ कोई भी चौपाया मूत्र करता है तो उसकी पृथ्वी पर टेडी रेखा वनती है) और खुरपा के वेट समान ये भेद क्रमसे नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव गति के देने वाले है ॥२८६॥

आगे लोभ कपाय के भेद दिखाते है ।

किमिरायचक्कतणुमलहरिद्दरासण सरिस लोहो ।
नारयतिरिक्खमाणुस देवे सुप्पायओ कमसो ॥२८७॥

नीलि रु औंगन मैल तन, हद्द रंग चउ लोभ ।
नारक तिर्यग मनुष सुर, उत्पादक इन दोह ॥२८७॥

अर्थ—लोभ कपाय चार प्रकार की होती है पक्के नील के रग समान गाढी के ओकानसमान, देह के मैल समान और हल्दी के रंग समान ये भेद क्रमसे नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति के देने वाले है ॥२८७॥

आगे चारगतियों में क्रोधादि का उदय दिखाते है।

णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालम्हि।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥२८८॥

नारक तिर्यंग मनुष सुर, जनमत पहिले काल।
क्रोध रु माया मान अरु, लोभ उदय बहुख्याल।२८८॥

अर्थ—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति मे उत्पन्न होने के प्रथम समय मे अधिकांश क्रमसे क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय का उदय होता है ॥२८८॥

आगे कषाय रहित जीव का स्वरूप दिखाते है।

अप्पपरोभयबाधणबंधा संजमणिमित्तकोहादी।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥२८९॥

निज पर वाधा असंयम, वंधन निमित न क्रोध।
वाह्याभ्यंतर उपधि विन, ते कषाय बिन बोध ॥२८६॥

अर्थ—जिनके निज और पर के लिये वाधा पहुँचाने को, वधन मे डालने को और असंयम करने को क्रोध भाव नहीं है तथा वाह्याभ्यंतर परिग्रह से रहित हैं वे कषाय रहित जीव हैं ॥२८६॥

आगे क्रोधादिकषाय के शक्ति भेद दिखाते है।

कोहादिकसायाणं चउ चउदसवीस होंति पदसखा।
सत्तीलेस्साआउगबंधाबंधगदभेदेहि ॥२९०॥

क्रोधादिक जु कषाय के, शक्ति चार थल पाउ।
चौदह लेश्या वीस थल, वंधाबंधजु आउ ॥२६०॥

अर्थ—क्रोधादि कषाय के शक्ति की अपेक्षा ४ भेद है लेश्या की

अपेक्षा १४ भेद है और आयु बंधाबंध की अपेक्षा २० भेद है ।।२९०।।

आगे शक्ति की अपेक्षा कषाय के ४-४ भेद दिखाते है ।

सिलसेलवेणुमूलक्किमिरायादी कमेण चत्तारि ।
कोहादिकसायाणं सत्तिं पडि होंति णियमेण ।।२९१।।

शिला शैल अरु बांस जड़, नील रंग उर धार ।
क्रोधादिक जु कषाय के, शक्ति भेद चउ चार ।।२९१।।

अर्थ—पत्थर रेखा आदिक ४ प्रकार का क्रोध, शैल थव आदिक ४ प्रकार का मान, वास जड़ आदिक ४ प्रकार की माया और नील रग आदिक ४ प्रकार का लोभ होता है इस प्रकार क्रोधादिककषाय के शक्ति भेद से ४-४ भेद है ।।२९१।।

आगे लेश्या की अपेक्षा कषाय के १४ भेद दिखाते है ।

किण्हं सिलासमाणे किण्हादी छक्कमेण भूमिम्हि ।
छक्कादी सुक्कोत्ति य धूलम्मि जलम्मि सुक्केक्का ।।२९२।।

सिला विषें लेश्या कृषण, भू क्रम से कृष्णादि ।
धूलि विषे शुक्लादि क्रम, जल में शुक्ल अनादि ।२९२।

अर्थ—पत्थर रेखा क्रोध मे केवल कृष्ण लेश्या का एक स्थान है। पृथ्वी रेखा क्रोध मे क्रम से कृष्ण, कृष्ण-नील, कृष्ण से कपोत तक, कृष्ण से पीत तक, कृष्ण से पद्म तक और कृष्ण से शुक्ल तक ये छै स्थान है। धूलि रेखा क्रोध मे क्रम से कृष्ण से शुक्ल तक, नील से शुक्ल तक, कपोत से शुक्ल तक, पीत से शुक्ल तक, पद्म-शुक्ल और शुक्ल ये छै स्थान है तथा जल रेखा क्रोध मे केवल शुक्ल लेश्या का एक स्थान है ।।२९२।।

आगे आयु वधावध की अपेक्षा २० भेद दिखाते है ।

सेलगकिण्हे सुण्णं णिरयं च य भूगएगविट्ठाणे ।
णिरयं इगिवितिआऊ तिट्ठाणे चारि सेसपदे ॥२९३॥
धूलिगछक्कट्ठाणे चउराऊतिगदुगं च उवरिल्लं ।
पणचदुठाणे देवं देवं सुण्णं च तिट्ठाणे ॥२९४॥
सुण्णं दुगइगिठाणे जलम्हि सुण्णं असंखभजिदकमा ।
चउचोदसवीसपदा, असखलोगा हु पत्तेयं ॥२९५॥

शैल कृष्ण नें आदि सुन, दुतिय नरक स्थान ।
भू में अठ थल उन्हों में, नरक आयु त्रय थान।२९३-१।
चौथे नरक रु पशुवय, नरक पशू नर पांच ।
शेष तीन में आयु सब, बंधे लेउ श्रुत जांच ॥२९३-२॥
धूलि भेद नें छै उदय, बंधे सर्व त्रय दोय ।
पांच चार के उदय सुर, तीन देव सुर जोय ॥२९४॥
सून्य दोय इक सून्य जल, क्रम असंख्य गुणि हीन।
चउ चौदह अरु बीस पद, जग असंख्य थल चीन २९५

अर्थ—पत्थर रेखा के समान कृष्णलेश्या के प्रथम स्थान मे आयु बंध नही होता और द्वितीय स्थान मे नरक आयु का बध होता है। पृथ्वी रेखा के समान कृष्णलेश्या के प्रथम स्थान मे और कृष्ण-नील लेश्या के द्वितीय स्थान में केवल नरक आयु का बध होता है। कृष्ण-नील-कपोत लेश्या के तृतीयस्थान मे क्रमसे नरकआयु का, नरक तिर्यंच आयु का अथवा नरक-तिर्यंच-मनुष्य आयु का बध होता है। कृष्ण से पीत तक के, कृष्ण से पद्म तक के और कृष्ण से शुक्ल लेश्या तक के तीनो स्थानो मे सब आयुओ का बध होता है। धूलिरेखा के समान

छै लेश्या के प्रथम स्थान मे सब आयुयो का बध होता है द्वितीय स्थान मे तिर्यंच-मनुष्य-देव आयु का वध होता है तृतीय स्थान मे मनुष्य-देव-आयु का वध होता है नील से शुक्ल लेश्या तक के स्थान मे, कपोत से शुक्ल लेश्या तक के स्थान मे देव आयु का वध होता है। पीत से शुक्ल लेश्या तक के प्रथम स्थान मे देव आयु का वध होता है और द्वितीय स्थान मे वध नही होता। पद्म से शुक्ललेश्या तक के स्थान मे और केवल शुक्ल लेश्या के स्थान मे किसी आयु का वध नही होता तथा जल रेखा समान शुक्ल लेश्या के स्थान मे भी किसी आयु का वध नही होता इस प्रकार कषायो के शक्ति की अपेक्षा ४ भेद है लेश्या की अपेक्षा १४ भेद है और आयु वधावध की अपेक्षा २० भेद है इनमे प्रत्येक के असख्यातलोक बरावर भी भेद है और अपने अपने उत्कृष्ट से अपने २ जघन्य भेद तक क्रम से असख्यात २ गुणे हीन भेद है ॥२९३-२९५॥

आगे देव और नारकियो के लोभादि का काल दिखाते है।

पुह पुह कषायकालो णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो।
लोहादी संखगुणो देवेसु य कोहपहुदीदो ॥२९६॥

नरक विषें लोभादि क्षण, अन्तर्मुहूर्त्त मान।
पृथक पृथक संख्यात गुणि, उस उलटा सुर थान।२९६।

अर्थ—नरक मे नारकियो के लोभादि कषायो का काल समान्य से अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है फिर भी लोभ से माया का, माया से मान का मान से क्रोध का काल सख्यात गुणा अधिक है और देवो मे क्रोधादि कषायों का काल सामान्य से अन्तर्मुहूर्त्तमात्र है फिर भी क्रोध से मान का, मान से माया का, माया से लोभ का काल सख्यात गुणा अधिक है ॥२९६॥

आगे देव और नारकियो मे कषाय वालो की सख्या दिखाते है।

सव्वसमासेणवहिदसगसगरासी पुणोवि संगुणिदे।
सगसगगुणगारेहिं य सगसगरासीणपरिमाणं ॥२९७॥

निज निज राशि हिं भाग दे, क्रोधादिक क्षण जोड़।
गुणाकार निज निज हिं से, निज निज संख्या तोड़ २६७

अर्थ—अपनी २ गति (देव या नारकी) की सख्या मे सब कपाय के उदयकाल के जोड का भाग देने से जो लव्व आवे उसका अपने २ (देव या नारकी) कपाय (क्रोध, मान, माया या लोभ) काल से गुणा करने से अपनी २ (देव या नारकी) सख्या निकल आती है ॥२६७॥

उदाहरण—कल्पना कीजिये कि-देवो की सख्या १७०० है और क्रोधादिक का उदय काल क्रम से ४, १६, ६४, २५६ है इनका जोड ३४० होता है इसका १७०० मे भाग देने से लव्ध ५ आता है इसका जिस कपाय के उदय काल की सख्या से गुणा करने पर उस कपाय वाले देवों की सख्या निकल आती है इसी प्रकार नारकियो की सख्या निकल आती है केवल अतर यह है कि कपायो के उदयकाल की संख्या को उलटा करना पडेगा ॥२६७॥

आगे मनुष्य और तिर्यंचों मे कपाय वालो की सख्या दिखाते है।

णरतिरिय लोहमायाकोहो माणो विइंदियादिव्व।
आवलिअसंखभज्जा सगकालं वा समासेज्ज ॥२९८॥

ज्यों दो इन्द्रिय आदि की, संख्या पूर्व पिछान।
त्यों नर पशु के लोभ अरु, माया क्रोध रु मान २६८-१
आवलि असंख्य भाग से, संख्या इनकी ढाल।
अथवा निज निज काल से, संख्या लेहु निकाल।२६८-२॥

अर्थ—कषाय रहित मनुष्यों की सख्या को छोडकर शेष मनुष्योकी सख्या मे अथवा तिर्यचो की सख्या मे आवली के असख्यातवे भाग का अथवा अन्तर्मुहूर्त्त के समयो की सख्या का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको अलग रख कर शेष सख्या के चार भाग कर चारों कषायो को बराबर २ देकर फिर उस लब्ध के चार भाग कर तीन भाग लोभको देकर फिर उस एक भागके चार भाग करके तीन भाग माया को देकर फिर उस एक भाग के चार भाग कर तीन भाग क्रोध को देकर शेष एक भाग मान को देना चाहिए इस बटवारे से जितना जिस कषाय पर धन आया उतनी उस कपाय वाले मनुष्य या तिर्यच की सख्या है विशेष दोहा न० १७९ से समझ लेना चाहिये ॥२९८॥

॥ कषायमार्गणासमाप्त ॥

आगे ज्ञान का स्वरूप दिखाते है ।

जाणइ तिकालविसए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे ।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणेत्ति ण वेंति ॥२९९॥

तीन काल के विषय सब, द्रव्य रु गुण पर्याय ।
लखे भेद युत ज्ञान वह, प्रकट परोक्ष कहाय ॥२९९॥

अर्थ—जो द्रव्य वर्तमान है भूतकाल मे थे और भविष्य काल मे होगे उनको और उनके गुण और पर्यायो को भेद सहित जानता है उसको ज्ञान कहते है ॥२९९॥

प्रत्यक्ष ज्ञान—जो ज्ञान इन्द्रियो की सहायता के बिना जानता है उसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते है ।

परोक्ष ज्ञान—जो ज्ञान इन्द्रियो की सहायता से जानता है उसको परोक्ष ज्ञान कहते है ।

आगे ज्ञान मे भेद और क्षायिकतादि दिखाते है।

पंचेव होंति णाणा मदिसुदओहीमणं च केवलयं।
खयउवसमिया चउरो केवलणाण हवे खइय ॥३००॥

मति श्रुत अवधी मनपरय, केवल पन विधि ज्ञान।
क्षयउपशमिका चार हैं, केवल क्षायिक जान॥३००॥

अर्थ—मति, श्रुत, अवधि, मनपर्यय और केवल ये पाँच भेद ज्ञान के है इनमे आदि के चार क्षयोपशमिक ज्ञान है और केवल क्षायिक ज्ञान है ॥३००॥

आगे आदि के तीन ज्ञान मिथ्या रूप दिखाते है।

अण्णाणतियं होदि हु सण्णाणतियं खु मिच्छअणउदये।
णवरि विभंगं णाणं पंचिंदियसण्णिपुण्णेव ॥३०१॥

आदि तीन सत असत हैं, हेतु उदय मिथ्यात।
कहें विभंगा तृतिय को, समन पूर्ण के ख्यात ॥३०१॥

अर्थ :—आदि के तीन ज्ञान मिथ्या भी होते है और सच्चे भी होते है ज्ञान मिथ्या होने का अतरग कारण मिथ्यात्व और अनतानुबधी कर्मका उदय है ज्ञान सम्यक् होनेका अतरग कारण उपरोक्त कर्म (मिथ्यात्व, अनतानुबंधी) का अनुदय है मिथ्याअवधि दो प्रकार की होती है कुअवधि और विभगा। कुअवधि मिथ्यादृष्टि सैनीपर्याप्त-तिर्यच, मनुष्य और देवो के होती है, विभगा मिथ्यादृष्टि नारकियों के होती है ॥३०१॥

सुअवधिज्ञान :—जो धर्मात्माओ के सकट मे राग उत्पन्न करावे उसको सुअवधि कहते है।

कुअवधिज्ञान—जो पूर्वजन्म के उपकारी से राग और अपकारी से द्वेष उत्पन्न करावे उसको कुअवधि कहते है।

विभगाअवधिज्ञान .—जो पूर्व जन्म के उपकार और अपकार करने वाले पर द्वेष उत्पन्न करावे उसको विभगाअवधि कहते है।

आगे मिश्रज्ञान का कारण और मनपर्यय को दिखाते है।

मिस्सुदये सम्मिस्स अण्णाणतियेण णाणतियमेव ।
संजमविसेसहिए मणपज्जवणाणमुद्दिट्ठं ॥३०२॥

मिश्र उदय से आदि त्रय, भये सदासद ज्ञान ।
जहाँ होय संयम अधिक, मनपर्यय तहँ जान॥३०२॥

अर्थ—मोह कर्म की मिश्र प्रकृति के उदय से आदि के तीन ज्ञानो मे सम्यक् पना और मिथ्यापना दोनो एक काल मे पाये जाते है इस कारण इन तीनो ज्ञानो को मिश्रज्ञान कहते हैं और जिसका संयम विशेष निर्मल होता है उस श्री मुनि के मनपर्ययज्ञान होता है ॥३०२॥

आगे दृष्टान्त से कुमति ज्ञान का स्वरूप दिखाते हैं।

विसजंतकूडपंजरबंधादिसु विणुवएसकरणेण ।
जा खलु पवट्टइ मई मइअण्णाणंत्तिणं वेंति ॥३०३॥

यंत्र कूट विष पींजरा, गड्ढा आदि खुदाय ।
विन उपदेश जु मति बने, सो मति ज्ञान कहाय ॥३०३॥

अर्थ—जो विना उपदेश के स्वतः बुद्धि से पर को बाधा पहुँचाने के लिये विष, कूट, पिजरा और गड्ढा खोदने की बुद्धि उपजती है उसको कुमतिज्ञान कहते है इससे विपरीति बुद्धि को सुमतिज्ञान कहते है ॥३०३॥

आगे कुश्रुतज्ञान का स्वरूप दिखाते है।

आभीयमासुरक्खं भारहरामायणादि उवएसा ।
तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाणंति णं वेंति ॥३०४॥

हिंसा झूंठ रु तस्करी, अब्रह्म पोषक बैन।
सो सब मिथ्या शास्त्र हैं, कहें जिनेश्वर ऐन ॥३०४॥

अर्थ—जिस शास्त्र मे हिंसा, झूंठ, चोरी और व्यभचार पोषक शब्द लिखे है सो सब शास्त्र मिथ्याश्रुतज्ञान से भरे है ॥३०४॥

आगे कुअवधिज्ञान का स्वरूप दिखाते है।

विवरीय मोहिणाण खओवसमियं च कम्मवीजं च।
वेभंगोत्ति पउच्चइ समत्तणाणीण समयम्हि ॥३०५॥

कर्म बीज क्षय-उपशमी, विपरीतावधि ज्ञान।
इस कारण इस ज्ञान को, कहें विभंगा ज्ञान ॥३०५॥

अर्थ—मिथ्याअवधिज्ञान अवधिज्ञानावरणीकर्म के क्षयोपशम से ही उत्पन्न होता है किन्तु दीर्घ कर्म बध का कारण है इस कारण इस ज्ञान को नरक मे तो विभगाअवधि कहते है और शेष गतियो मे कुअवधिज्ञान कहते हैं ॥३०५॥

आगे मतिज्ञान का स्वरूप दिखाते हैं।

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं।
अवगहईहावायाधारणगा होंति पत्तेयं ॥३०६॥

मति इन्द्रिय मन निमित से, जाने परमित चीज।
अव-ग्रह ईहावाय अरु, धारण भेद कहीज ॥३०६॥

अर्थ—जो मन और पाच इन्द्रियो से परमित पदार्थो को जानता है उसको मतिज्ञान कहते हैं उसके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद है ॥३०६॥

आगे अवग्रह के भेद दिखाते हैं।

वेंजणअत्थअवग्गहभेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे ।
कमसो ते वावरिदा पढमं ण हि चक्खुमणसाणं ॥३०७॥

गुप्त प्रकट के भेद से, अव–ग्रह में दो भाग
क्रम से वर्त्तें प्रथम में, चक्षू मन का त्याग ॥३०७॥

अर्थ—अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का होता है अप्रकट और प्रकट। जो अप्रकट पदार्थो को जानता है उसको अप्रकट अवग्रह ज्ञान कहते है और जो प्रकट पदार्थो को जानता है उसको प्रकट अवग्रह ज्ञान कहते हैं इनमे अप्रकटअवग्रहज्ञान प्रथम होता है उसके पीछे प्रकट-अवग्रहज्ञान होता है अप्रकटअवग्रहज्ञान चक्षु और मन के विना शेष इन्द्रियो से होता ॥३०७॥

आगे अवग्रहादि ज्ञान का स्वरूप दिखाते हैं।

विसयाणं विसईणं संजोगाणंतरं हवे णियमा।
अवगहणाणं गहिदे विसेसकंखा हवे ईहा ॥३०८॥
ईहणकरणेण जदा सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु ।
कालांतरेवि णिण्णिदवत्थुसमरणस्स कारणं तुरियं ॥३०९॥

इन्द्रिय वस्तू मिले जब, पीछे लख आकार।
गहे ज्ञान वह अवग्रह, ईहा अधिक प्रकार ॥३०८॥
पीछे ईहा ज्ञान के, निश्चित वस्तु अवाय।
उसको कभी न भूलना, सो धारण कहलाय ॥३०९॥

अर्थ—जो किसी इन्द्रिय और पदार्थ के सयोग होने पर ज्ञान होता है कि कुछ है उसको दर्शन कहते हैं। उसके पश्चात् जब किसी चिन्ह से यह निर्णय होता है कि यह जीव है या अजीव है उसको

अवग्रह ज्ञान कहते है। उसके पश्चात् जब यह निर्णय होता है कि पखों वाला कोई जीव है उसको ईहाज्ञान कहते है। उसके पश्चात् जब यह निर्णय होता है कि हस है उसको अवायज्ञान कहते है। और उस जाने हुए को कालातर मे न भूलने को धारणाज्ञान कहते है ॥३०८-३०६॥

आगे मतिज्ञान सवधी १२ द्रव्यो को दिखाते हैं।

वहु वहुविह च खिप्पाणिस्सिदणुत्त धुवं च इदरं च।
तत्थेक्केक्के जादे छत्तीसं तिसयभेदं तु ॥३१०॥

वहु इक वहुविधि एक विधि, शीघ्र देर कुछ भान।
अधिक प्रकट विन सुना अरु, सुना थिराथिर जान।१०-१।
इनमें व्यक्ताव्यक्त से, द्वादश द्वादश थान।
प्रकट द्रव्य का होता है, अवग्रह आदिक ज्ञान।१०-२।
और द्रव्य अव्यक्त का, केवल अव-ग्रह ज्ञान।
मन अरु चक्षू के विना, होता दीसे जान॥१०-३॥

अर्थ—वहु, वहुविधि, एक, एकविधि, शीघ्रगामी, विलवगामी, अल्पप्रकट, वहुप्रकट, विनासुना, सुनाहुआ, स्थिर और अस्थिर ये १२ प्रकार के द्रव्य हैं इनमे व्यक्त और अव्यक्त के भेद से २४ भेद हैं व्यक्त द्रव्यो का ज्ञान अवग्रहादि रूप पाच इन्द्रियो से और मन से होता है इसके २८८ भेद होते है और अव्यक्त द्रव्यो का ज्ञान केवल अवग्रह रूप होता है वह चक्षु और मन के विन होता है इसके ४८ भेद होते है इस प्रकार कुल मतिज्ञान के ३३६ भेद होते है ॥३१०॥

आगे दृष्टान्त से १२ द्रव्यो को दिखाते है।

वहुवत्तिजादिगहणे वहुवहुविहमियरमियरगहणम्हि।
सगणामादो सिद्धा खिप्पादी सेदरा य तहा ॥३११॥

एक जाति की बहुत बहु, एक जाति इक एक।
बहु विधि बहु जाती बहुत, इक विधि बहु जति एक॥१-१
शीघ्रादिक अरु उन्हों के, उलटे सब पहिचान।
नाम मात्र से अर्थ का, स्वतः होत है ज्ञान॥३११—२॥

अर्थ—एक जाति की बहुत द्रव्य को बहु कहते है जैसे सैना। एक जाति की एक वस्तु को एक कहते है जैसे सैनापति। बहुत जाति की बहुत द्रव्यो को बहु विधि कहते है जैसे चतुरग सैना। बहुत जाति के एक द्रव्य को एक विधि कहते हैं जैसे पैदल सैना। शीघ्र गमन करने वाली वस्तु को शीघ्र गामी कहते है जैसे जल प्रवाह। विलब से गमन करने वाली वस्तु को विलबगामी वस्तु कहते है जैसे कछवा। कुछ प्रकट और अधिक गुप्त वस्तु को अल्प प्रकट कहते है जैसे जल मे हाथी। अधिक प्रकट और कुछ गुप्त वस्तु को बहु प्रकट वस्तु कहते है जैसे वृक्ष। जो कभी सुनने मे न आयी हो उसको विना सुनी वंस्तु कहते है जैसे कर्ण इन्द्रिय के अतिरिक्त विषय। जो पूर्व की सुनी हुई हो उसको सुनी वस्तु कहते है जैसे कर्ण विषय। जो एक स्थान पर अचल हो उसको स्थिर वस्तु कहते है जैसे पहाड और जो एक स्थान पर अचल न हो उसको अस्थिर वस्तु कहते है जैसे लक्ष्मी ॥१११॥

आगे अप्रकट वस्तु का स्वरूप दिखाते है।

वत्थुस्स पदेसादो वत्थुग्गहणं तु वत्थुदेसं वा।
सकलं वा अवलंविय अणिस्सिदं अण्णवत्थुगई ॥३१२॥

एक अंग वस्तू निरख, सर्व वस्तू का ज्ञान।
इक या सब लख अन्य का, हो सो अ-प्रकट ज्ञान।३१२।

अर्थ—वस्तु के एक अग को देखकर सर्व वस्तु को जान लेना

तथा वस्तु के एक अंग को देखकर अथवा वस्तु के सर्व अग को देखकर अन्य वस्तु का अनुमान लगा लेना वह सब अप्रकट वस्तु जनित ज्ञान कहलाता है ॥३१२॥

आगे दृष्टान्त से उपरोक्त ज्ञान को दिखाते है।

पुक्खरगहणे काले हत्थिस्स य वदणगवयगहणे वा ।
वत्थंतरचदस्स य घेणुस्स य वोहणं च हवे ॥३१३॥

जल डूवे गज सूंड लख, तत्क्षण गज का ज्ञान ।
गाय देख कर गाय या, मुख लख शशि पहिचान ।३१३।

अर्थ—जल मे डूवे हुये हाथी की केवल सूड को देखकर हाथी को जान लेना कि जल मे हाथी है अथवा किसी के सुन्दर मुख को देखकर चन्द्रमा को जान लेना अथवा किसी गाय को देखकर अन्य किसी गाय को जान लेने को अप्रकटवस्तु का ज्ञान करना कहते है ॥३१३॥

आगे मतिज्ञान के २४—१६८—३३६ भेद दिखाते है।

एक्कचउक्क चउवीसट्ठावीसं च तिप्पडिं किच्चा ।
इक्कछव्वारसगुणिदे मदिणाणे होंति ठाणाणि ॥३१४॥

एक चार चौवीस अरु, अठ्ठाइस स्थान ।
इक छै अरु वारह गुणें, इक अध पूरण थान ॥३१४॥

अर्थ—मति ज्ञान का सामान्य से एक भेद है अवग्रह, ईहा अवाय और धारणा के भेद से ४ प्रकार का है पाच इन्द्रियो और मन के भेद से छै प्रकार का है इन ६ और ४ को गुणा करने से २४ भेद होते है इन २४ भेदो मे अप्रकट के चक्षु और मन के विना ४ भेद जोडने से २८ भेद होते है इन १, ४, २४, २८ मे क्रम से १, ६, १२ द्रव्यो का गुणा करने से मतिज्ञान के सामान्य, अर्थ और

पूर्ण भेद निकल आते है ॥३१४॥

आगे श्रुतज्ञान का सामान्य स्वरूप दिखाते है।

अत्थादो अत्थंतरमुवलभंतं भणंति सुदणाणं ।
अभिणिवोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥३१५॥

भिन्न विषय श्रुत ज्ञान का, मति से लेहु पिछान ।
मति के पीछे होय यह, मुख्य शब्द श्रुत ज्ञान ।३१५।

अर्थ—मतिज्ञान के विषय से श्रुतज्ञान का विपय भिन्न है और मतिज्ञान के पश्चात् यह श्रुतज्ञान होता है इसके दो भेद है शब्द जन्य और अशब्दजन्य जिसमे शब्द जन्य श्रुतज्ञान मुख्य है ॥३१५॥

आगे अक्षरानक्षरात्मक श्रुतज्ञान के भेद दिखाते हैं।

लोगाणमसंखमिदा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा ।
वेरूवछट्ठवग्गपमाणं रूऊणमक्खरगं ॥३१६॥

छै थल से अनक्षर के, जग असंख्य सब भेद ।
दु-रूप में छै वर्गवत्, इक कम अक्षर भेद ॥३१६॥

अर्थ—अनतभागवृद्धि (अनतवे भाग अधिक) असख्यातभाग-वृद्धि, सख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि (संख्यात गुणी वृद्धि) असख्यातगुणवृद्धि और अनंतगुणवृद्धि इन छै स्थानो द्वारा वृद्धि होती है इनकी अपेक्षा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के जघन्य से लेकर उत्कृष्ट स्थान तक असख्यात लोक बराबर भेद हैं और दो रूप वर्गधारा मे छट्टे वर्ग की जितनी संख्या है उसमे एक कम करने पर जितनी सख्या शेप रहती है उतनी अक्षरात्मक श्रुतज्ञान की सख्या है ॥३१६॥

आगे श्रुतज्ञान के दूसरी रीति से भेद दिखाते है।

पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पूव्वं च ॥३१७॥

तेसिं च समासेहि य वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं ।
आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंतित्ति ॥३१८॥

पर्यय अक्षर पद मिलन, प्रतिपत्तिक अनुयोग ।
प्राभ्रत प्राभ्रत प्राभ्रतक, वस्तु पूर्व का योग ।३१७।
इस ही रीति समास मिल, वीस भेद श्रुत ज्ञान ।
वीस भेद आवरण के, पर्यय आगे जान ॥३१८॥

अर्थ—पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास संघात, संघातसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभ्रतप्राभ्रत, प्राभ्रतप्राभ्रतसमास, प्राभ्रत, प्राभ्रतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पुर्वसमास ये वीस भेद श्रुतज्ञानके है इस लिये श्रुतज्ञानावरण के भेद भी वीस हैं ॥३१७-३१८॥

आगे पर्यायज्ञान का स्वरूप दिखाते है ।

णवरि विसेसं जाणे सुहुमजहण्णं तु पज्जयं णाणं ।
पज्जायावरणं पुण तदणंतरणाण भेदम्हि ॥३१९॥

सूक्ष्म के लघु ज्ञान को, कहते पर्यय ज्ञान ।
वहां न पर्यय आवरण, उपरि भेद से जान ।३१९।

अर्थ—जो सूक्ष्मलब्धिअपर्याप्तनिगोदिया के ज्ञान होता है उसको पर्ययज्ञान कहते हैं इस ज्ञान मे यह विशेषता है कि इसको आवरण करने वाला (कम करने वाला) कोई कर्म नही है किन्तु इसके पश्चात् होने वाले ज्ञान (पर्यायसमास) के लिए आवरण करने वाला कर्म होता है ॥३१९॥

आगे जघन्यज्ञान को निरावरण दिखाते है ।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि ।
हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घडं णिरावरणं ॥३२०॥

सूक्ष्म अपूर्ण निगोद के, जन्मप्रथम क्षण मान ।
सबसे जघन्य ज्ञान है, निरावरण नित ज्ञान ॥३२०॥

अर्थ—सूक्ष्मलब्धिअपर्याप्तकनिगोदिया जीव के उत्पन्न होने के प्रथम समय मे सबसे जघन्यज्ञान होता है उसको पर्यायज्ञान कहते है वह सदा निरावरण (कम नही होता) और प्रकाशमान रहता है ॥३२०॥

आगे जघन्यज्ञान के स्वामी को दिखाते है ।

सुहमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण ।
चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ।३२१।

सूक्ष्म अपूर्ण निगोद के, निज संभव भव ठान ।
अंत अपूर्ण त्रय मोड के, आदि मोड लघु ज्ञान ॥३२१॥

अर्थ—सूक्ष्मलब्धिअपर्याप्तनिगोदिया जीव के होने योग्य (६०१२) भवो मे भ्रमण कर अत के अपर्याप्त शरीर के भव मे तीन मोडाओ के द्वारा शरीर ग्रहण करने वाले जीव के प्रथम मोडा के समय मे सबसे जघन्यज्ञान होता है ॥३२१॥

आगे उस निगोदिया के जघन्यश्रुतज्ञान दिखाते है ।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि ।
फासिंदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥३२२॥

सूक्ष्म अपूर्ण निगोद के, जन्म प्रथम क्षण मान ।
फर्श जनित मति अनंतर, मिलेनित्य श्रुतज्ञान ।३२२।

अर्थ—सूक्ष्मलब्धिअपर्याप्तनिगोदिया जीव के जन्म लेने के प्रथम समय मे स्पर्शन इन्द्रिय जनित कुमतिज्ञान के पश्चात् जिसका कभी नाश (कम) न हो ऐसा कुश्रुत ज्ञान होता है ॥३२२॥

आगे जघन्यज्ञान के वढती का क्रम दिखाते है।

अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं सखं च भागवड्ढीए।
संखमसंखमणंतं गुणवड्ढी होंति हु कमेण ३२३॥

आगे अमित असंख्य अरु, संख्य भाग वढ वार।
संख्य असंख्य अनंत गुणि, क्रमसे वाढि संभार।३२३।

अर्थ—सवसे जघन्य पर्यायज्ञान के आगे क्रम से अनतभागवृद्धि, असख्यातभागवृद्धि, सख्यातभागवृद्धि, सख्यातगुणीवृद्धि, असख्यातगुणीवृद्धि और अनतगुणीवृद्धि होती है ॥३२३॥

आगे अनतभागवृद्धि आदि का परिमाण दिखाते है।

जीवाण च य रासी असंखलोगा वरं खु संखेज्जं।
भागगुणम्हि य कमसो अवट्ठिदा होंति छट्ठाणा ॥३२४॥

जीव राशि जग असंख्ये, जेष्ट संख्य त्रय जोय।
भाग गुणा छै थान सें, क्रमज राशि थिति होय।३२४।

अर्थ—अनतभागवृद्धि और अनतगुणीवृद्धि इन दोनो के भाग और गुणाकार से जीवराशि वरावर वृद्धि होती है असख्यातभागवृद्धि और असख्यातगुणीवृद्धि इन दोनो के भाग और गुणाकार से असख्यात लोक वरावर वृद्धि होती है और सख्यातभागवृद्धि तथा सख्यातगुणीवृद्धि इन दोनो के भाग और गुणाकार से उत्कृष्ट सख्यात वरावर वृद्धि होती है ॥३२४॥

आगे सदृष्टि के लिये छै वृद्धियो के नाम दिखाते है।

उव्वंकं चउरंकं पणछस्सत्तंक अट्ठअंकं च।
छव्वड्ढीणं सण्णा कमसो संदिट्ठिकरणट्ठं ॥३२५॥

क्रमसे उर्वक चार पन, छै जु सात अठ मान।
छै वृद्धि के नाम छै, चिन्ह हेतु पहिचान ॥३२५॥

अर्थ–लघु सहष्टि करने के लिये क्रमसे छै वृद्धियो के ये छै नाम है अनतभागवृद्धि के लिये उर्वक (उ) का अक है असख्यातभागवृद्धि के लिये चार (४) का अक है सख्यातभागवृद्धि के लिये पाच (५) का अक है सख्यातगुणीवृद्धि के लिये छै (६) का अक है असख्यातगुणी वृद्धि के लिये सात (७) का अक है और अनतगुणीवृद्धि के लिये आठ (८) का अक है ॥३२५॥

आगे वृद्धियो के परिणमन का क्रम दिखाते है।

अंगुलअसंखभागे पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी।
एक्कं वारं होदि हु पुणो पुणो चरिमउड्ढित्ती ॥३२६॥

अंगुल असंख्य भाग सम, अमित वृद्धि गत होय।
असंख्यात इक वार हो, यही नियम सब जोय।३२६।

अर्थ—जब सूक्ष्मागुल के असख्यातवे भाग बराबर अनतभाग-वृद्धि होती है तब एक वार असख्यातभागवृद्धि होती है जब सूक्ष्मागुल के असख्यातवे भाग बराबर असख्यातभागवृद्धि होती है तब एक वार सख्यातभागवृद्धि होती है इसी प्रकार शेप वृद्धिया होती है ॥३२६॥

आगे प्रथम स्थान मे पाच वृद्धिया दिखाते है।

आदिमछट्ठाणम्हि य पच य वड्ढी हवंति सेसेसु।
छव्वड्ढीओ होंति हु सरिसा सव्वत्थ पदसंखा ॥३२७॥

आदि छहों स्थान में, पांच वृद्धियां मान ।
शेष थान में छहों हों, पद संख्या सम जान ॥३२७॥

अर्थ—असंख्यात लोक बराबर छै स्थानो मे से प्रथम छै स्थानो मे अष्ट अंक वृद्धि (अनन्तगुणीवृद्धि) को छोडकर शेष पाच वृद्धिया होती हैं आगे शेष सब स्थानो मे छहों वृद्धियां होती हैं ये सब सूक्ष्मांगुल के असंख्यातवे भाग बराबर है इसलिये यह संख्या सब जगह समान है ॥३२७॥

आगे अष्ट अंक वृद्धि न होने का कारण दिखाते है।

छट्ठाणाणं आदी अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकं ।
जम्हा जहण्णणाणं अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं ॥३२८॥

छै थानों में आदि थल, कहलाता अष्टांक ।
अंत उर्वकं इसलिये, जघन ज्ञान अष्टांक ॥३२८॥

अर्थ—सब छै स्थानो मे आदि के स्थान (अनतगुणीवृद्धि) को अष्टांक कहते है और अन्त के स्थान (अनन्तभागवृद्धि) को उर्वक कहते है कारण जघन्यपर्यायज्ञान भी अगुरुलघु गुण के अविभागी प्रतिच्छेद (अंश रहित) की वृद्धि अपेक्षा आगे अष्टाक हो सकता है ॥३२८॥

आगे अष्टाकादि होवे की संख्या दिखाते है।

एक्कं खलु अट्ठंकं सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा ।
रूवहियकंडएण य गुणिदकमा जावमुव्वंकं ॥३२९॥

इक थल इक अष्टांक अरु, उस थल सप्तक कांड ।
इक इक धिक कांडक गुणित, उर्वक तक क्रम मांड ।२९

अर्थ—एक छै स्थान मे एक अष्टांक होता है और सप्ताक

सूक्ष्मांगुल के असंख्यातवे भाग मात्र होता है। छै अंक दो बार, पंचांक तीन बार, चउ अंक चार बार और उर्वंक पांच बार सूक्ष्मांगुल के असंख्यातवे भाग से गुणित होता है ॥३२९॥

आगे छै वृद्धियों की संख्या दिखाते है।

सव्वसमासो णियमा रूवाहियकंडयस्स वग्गस्स।
विंदस्स य संवग्गो होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३३०॥

इकधिक कांडक के वरग, अरु घन को गुणिडार।
सोफल इक छै थल पतित, वृद्धी संख्या सार ॥३३०॥

अर्थ—एक अधिक कांडक (समयों का समूह) के वर्ग और घन को परस्पर गुणा करने से जो लब्ध आवे उतनी एक छै स्थान की पतित वृद्धियों की संख्या का जोड है भावार्थ—एक अधिक सूक्ष्मांगुल के असंख्यातवे भाग को पांच स्थान मे रखकर परस्पर गुणा करने से जो संख्या आवे उतनी बार एक छै स्थान मे अनंतभागवृद्धि आदि होती है ॥३३०॥

आगे जघन्य ज्ञान के बढ़ने की रीति दिखाते है।

उक्कस्ससंखमेत्तं तत्तिचउत्थेक्कदालछप्पण्णं।
सत्तदसमं च भागं गंतूणय लद्धिअक्खरं दुगुणं॥३३१॥

वर संख्यात जु मात्र है, त्रय चउ इकतालीस।
छप्पन सत्रह भाग सम, जघन दुगण से दीस ॥३३१॥

अर्थ—एक अधिक कांडक से गुणित सूक्ष्मांगुल के असंख्यातवे भाग बराबर अनंतभागवृद्धि के स्थान और सूक्ष्मांगुल के असंख्यातवे भाग बराबर असंख्यातभागवृद्धि के स्थान इन दो वृद्धियों को जघन्य ज्ञान के ऊपर हो जानेपर एकबार संख्यात भागवृद्धि का स्थान होता है। इनके आगे उपरोक्त क्रमानुसार उत्कृष्ट संख्यात मात्र संख्यात

भाग वृद्धियों के होजाने पर उनमें प्रक्षेपकवृद्धि के होने से लब्धि अक्षर (जघन्य ज्ञान) का परिमाण दूना हो जाता है। किन्तु प्रक्षेपक की वृद्धि कहाँ २ पर कितनी २ होती है यह दिखाते है उत्कृष्ट संख्यात मात्र पूर्वोक्त संख्यात भाग वृद्धि के स्थानों मे से तीन-चौथाई भाग बराबर स्थानों के हो जाने पर प्रक्षेपक और प्रक्षेपक-प्रक्षेपक वृद्धियों को जघन्यज्ञान के ऊपर हो जाने से जघन्यज्ञान का परिमाण दूना हो जाता है पूर्वोक्त संख्यातभागवृद्धि सहित उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थानों के छप्पन भागो मे से इकतालीस भागो के बीत जाने पर प्रक्षेपक और प्रक्षेपक-प्रक्षेपक की वृद्धि होने से कुछ अधिक जघन्य ज्ञान का परिमाण दूना हो जाता है अथवा संख्यातभाग वृद्धि के उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थानों में से सत्रह स्थानों के पश्चात् प्रक्षेपक-प्रक्षेपक-प्रक्षेपक और पिशूलि (एक जाति की वृद्धि) वृद्धियों को कुछ अधिक जघन्यज्ञान के ऊपर रखने से कुछ अधिक जघन्य-ज्ञान का परिमाण दूना हो जाता है ॥३३१॥

आगे अनक्षर ज्ञान के असंख्यात लोक बराबर भेद दिखाते है।

एवं असंखलोगा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।

ते पज्जायसमासा अक्खरगं उवरि वोच्छामि ॥३३२॥

इस प्रकार अनक्षर के, जग असंख्य छै थान।

ये पर्याय समास सब, आगे अक्षर ज्ञान ॥३३२॥

अर्थ—इस प्रकार से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के असंख्यात लोक बराबर छै स्थान होते है ये सब पर्यायसमासज्ञान के भेद है अब अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का वर्णन सुनो ॥३३२॥

आगे अक्षर ज्ञान का परिमाण दिखाते है।

चरिमुव्वंकेणवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं।

अत्थक्खरं तु णाणं होदित्ति जाणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३३३॥

भाग अंत उर्वङ्क का, अर्थाक्षर में ठान।
लब्ध अंत उर्वङ्क गुणि, अर्थाक्षर परिमाण ॥३३३॥

अर्थ—अंत के उर्वक का अर्थाक्षर के समूह मे भाग देने से जो लब्ध आवे उसका अत के उर्वक से गुणा करने पर अर्थाक्षर का परिमाण आता है भावार्थ—असख्यात लोक बराबर छै स्थानो मे अंत के छै स्थान की अन्तिम उर्वक वृद्धि से सहित उत्कृष्टपर्याय-समासज्ञान से अनंत गुणा अर्थाक्षर ज्ञान होता है। यह (अर्थाक्षरज्ञान) सवश्रुत ज्ञान रूप है इसमे एक कम एकट्ठी (एक जाति की सख्या) का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना ही अर्थाक्षर ज्ञान (एक अक्षर) का परिमाण आता है ॥३३३॥

आगे थोड़े द्रव्यो का उलेख श्रुत मे दिखाते है।

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाण।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिवद्धो ॥३३४॥

अमित भाग जिन ज्ञान से, वचन गम्य द्रव्यान।
अमित भाग वच गम्य से, लिखी शास्त्र में जान॥३३४

अर्थ—जितनी द्रव्य केवल ज्ञान मे आई है उनसे अनंतवे भाग वचन से कही गई है और जितनी वचन से कहने मे आई है उनसे अनतवे भाग शास्त्र मे लिखी गई है ॥३३४॥

आगे पद नामक श्रुतज्ञान का स्वरूप दिखाते है।

एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो।
संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं ॥३३५॥

अक्षर ऊपर एक इक, बढ़कर हो संख्यात।
पद नामक श्रुतज्ञान वह, जिनमत में विख्यात।३३५।

अर्थ—जब अक्षरज्ञान के ऊपर क्रम से एक एक अक्षर बढते बढते सख्यात अक्षर हो जाते है तब उसको पद नाम का श्रुतज्ञान कहते हैं और एक अक्षर ज्ञान के ऊपर तथा पदज्ञान के पहिले जितने ज्ञान के भेद हैं वे सब अक्षरसमासज्ञान के भेद है ॥३३५॥

आगे पद श्रुतज्ञान के अक्षरो की सख्या दिखाते है।

सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव।
सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥३३६॥

कोटि सोल सौ तीसचउ, लाख तिरासी सात।
सहस आठ सौ अठासी, पद अक्षर विख्यात।३३६।

अर्थ—सोलह सौ चौतीस कोटि, तिरासीलाख, सात हजार, आठ सौ अट्ठासी (१६३४८३०७८८८) अक्षर पदश्रुतज्ञान के होते है ॥३३६॥

आगे सघातश्रुतज्ञान का परिमाण दिखाते है।

एयपदादो उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो।
सखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुदं ॥३३७॥

इक पद ऊपर एक इक, अक्षर बढ़ता जाय।
बढे सहंस संख्यात लग, श्रुत संघात कहाय ॥३३७॥

अर्थ—जब एक पद के ऊपर एक एक अक्षर बढते २ सख्यात हजार अक्षर बढ जाते हैं तब उसको एक सघात नाम का श्रुतज्ञान कहते हैं इन दोनो के बीच मे पदसमासज्ञान के भेद है ॥३३७॥

आगे प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञान का परिमाण दिखाते है।

एक्कदरगदिणिरूवयसंघातसुदादु उवरिं पुव्वं वा।
वण्णे संखेज्जे ंघा दे उड्ढम्हि पडिवत्ती ॥३३८॥

इक गति पटु संघात में, वर्ण बढे गत मान।
संख्य सहस संघात हो, तब प्रतिपत्तिक जान॥३३८॥

अर्थ—जब चारो गति मे से किसी एक गति का वर्णन करने वाले सघातश्रुतज्ञान के ऊपर एक एक अक्षर बढते बढते सख्यात हजार सघात श्रुतज्ञान की बढती हो जाती है तब उसको एक प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान कहते है इन दोनो के बीच मे सघातसमास ज्ञान के भेद है ॥३३८॥

आगे अनुयोगश्रुतज्ञान का परिमाण दिखाते है।

चउगइसरूवरूवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुव्व वा।
वण्णे संखेज्जे पडिवत्ती उड्ढम्हि अणियोग ॥३३९॥

चहुँ गति पटु प्रतिपत्ति में, वर्ण बढें गत मान।
संख्य सहस प्रति पत्ति हों, तब अनुयोग पिछान।३३९।

अर्थ—जब चारों गति का वर्णन करने वाले प्रतिपत्तिज्ञान के ऊपर पूर्वक्रम के अनुसार एक एक अक्षर बढते २ सख्यात हजार प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान की बढती हो जाती है तब उसको एक अनुयोगश्रुतज्ञान कहते है इन दोनो के बीच मे प्रतिपत्तिसमास ज्ञान के भेद है ॥३३९॥

आगे प्राभ्रतप्राभ्रतश्रुतज्ञान का परिमाण दिखाते है।

चोद्दसमग्गणसंजुदअणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे।
चउरादीअणियोगे दुगवारं पाहुडं होहि ॥३४०॥

चौदह मारगणा कथक, अनुयोगा में वर्ण।
बढ़कर चउ अनुयोग हों, प्राभ्रत प्राभ्रत वर्ण ॥३४०॥

अर्थ—जब चौदह मार्गणा का वर्णन करने वाले अनुयोगश्रुत

ज्ञान के ऊपर पूर्वक्रम के अनुसार एक एक अक्षर वढते वढते चारो अनुयोगों तक पहुँच जाते है तव उसको एक प्राभ्रतप्राभ्रतश्रुतज्ञान कहते है इन दोनो के वीच मे अनुयोगसमास ज्ञान के भेद है ।३४०।

आगे प्राभ्रत और अधिकार का अर्थ दिखाते है ।

अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो ।
पाहुडपाहुडणामं होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३४१॥

प्राभ्रत अरु अधिकार का, एक अर्थ पहिचान ।
प्राभ्रत के अधिकार को, प्राभ्रत प्राभ्रत ज्ञान ।३४१।

अर्थ –प्राभ्रत और अधिकार ये दोनो एक अर्थ के वोधक है इसलिए प्राभ्रत के अधिकार को प्राभ्रत-प्राभ्रत कहते है ॥३४१॥

आगे प्राभ्रत श्रुतज्ञान का परिमाण दिखाते है ।

दुगवारपाहुडादो उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे ।
दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥३४२॥

प्राभ्रत प्राभ्रत के उपरि, वर्ण वढें क्रम ठान ।
प्राभ्रत प्राभ्रत वीस चउ, तब इक प्राभ्रत ज्ञान ॥३४२॥

अर्थ—जव प्राभ्रत प्राभ्रत श्रुतज्ञान के ऊपर पूर्व क्रम के अनुसार एक एक अक्षर वढते २ चौवीस प्राभ्रत-प्राभ्रत तक पहुँच जाते है तव उसको एक प्राभ्रतश्रुतज्ञान कहते है इन दोनो के वीच मे प्राभ्रत-प्राभ्रतसमासज्ञान के भेद है ॥३४२॥

आगे वस्तुश्रुतज्ञान का परिमाण दिखाते है ।

वीस वीसं पाहुडअहियारे एक्कवत्थुअहियारो ।
एक्केक्कवण्णउड्ढी कमेण सव्वत्थ णायव्व ॥३४३॥

वीसजु प्राभ्रत खंड का, एक वस्तु अधिकार।
इक इक अक्षर बढ़त है, पूर्व रीति अनुसार ।३४३॥

अर्थ— उपरोक्त क्रम के अनुसार प्राभ्रतश्रुतज्ञान के ऊपर एक एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब बीस प्राभ्रत हो जाते है तब उसको एक वस्तु-अधिकार कहते है इन दोनो के बीच मे प्राभ्रत-समासज्ञान के भेद है ।।३४३।।

आगे पूर्वज्ञान और उसमे वस्तु अधिकार दिखाते है ।

दस चोदसट्ठ अट्ठारसयं बारं च बार सोलं च ।
वीसं तीसं पण्णारसं च दस चदुसु वत्थूणं ।।३४४।।

दश चौदह अठ अठारह, बारह बारह सोल।
विस तिस पन्द्रह शेष में, दश दश वस्तु ओल ।।३४४।।

अर्थ—पूर्वश्रुतज्ञान के चौदह भेद है जिनमे से प्रत्येक मे क्रम से १०, १४, ८, १८, १२, १२, १६, २०, ३०, १५, १०, १०, १० और १० वस्तु अधिकार है ।।३४४।।

आगे चौदह पूर्वो के नाम दिखाते है ।

उप्पायपुव्वगाणियविरियपवादत्थिणत्थियपवादे ।
णाणासच्चपवादे आदाकम्मपपवादे य ।।३४५।।
पच्चक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य ।
किरियाविसालपुव्वे कमसोथ तिलोयविंदुसारे य ।।३४६।।

उत्पाद पूर्व अग्रहणी, अरु है वीर्य प्रवाद।
अस्ति नास्ति अरु ज्ञान अरु, सत्य आतमावाद ।।३४५।।

कर्म त्याग भाषा तथा, और वाद कल्याण।
प्राण क्रिया अरु लोकयुत, चौदह पूर्व पिछान ॥३४६॥

अर्थ—उत्पाद, नयभेद, शक्तिभेद, स्याद्वाद, ज्ञानभेद, सत्यभेद, आत्मभेद, कर्मभेद, त्यागभेद, भाषाभेद, कल्याणभेद, प्राणभेद, क्रिया-भेद और लोकभेद ये चौदह पूर्वों के नाम है ॥३४५-३४६॥

आगे १४ पूर्वो मे वस्तु और प्राभृतो की सख्या दिखाते है।

पणणउदिसया वत्थू पाहुडया तियसहस्सणवयसया।
एदेसु चोद्दसेसु वि पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि ॥३४७॥

वस्तू चौदह पूर्व में, एक सौ नव्वे पाँच।
तीन सहस नव सौ सरव, प्राभ्रत उनमें जाँच ॥३४७॥

अर्थ—उपरोक्त १४ पूर्वो मे सब वस्तुओ का जोड १९५ है और एक एक वस्तु मे वीस वीस प्राभ्रत होते है इसलिये सब प्राभ्रतो का जोड ३९०० है पद सख्या दोहा नं० ३६५-३६६ मे देखो ॥३४७॥

आगे द्रव्यश्रुत और ज्ञानश्रुत के भेद दिखाते है।

अत्थक्खरं च पदसंखातं पडिवत्तियाणिजोगं च।
दुगवारपाहुड च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥३४८॥
कमवण्णुत्तर वड्ढिय ताण समासा य अक्खरगदाणि।
णाणवियप्पे वीसं गंथे वारस य चोद्दसयं ॥३४९॥

अक्षर पद संघात अरु, प्रतिपत्तिक अनुयोग।
प्राभ्रत प्राभ्रत प्राभ्रतक, वस्तु पूर्व जब योग ॥३४८॥
क्रम अक्षर बढ भेद नव, वर्ण समासा पंथ।
ज्ञान भेद से वीस अरु, बारह चौदह ग्रंथ ॥३४९॥

अर्थ—अक्षर, पद, सघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभ्रत-प्राभ्रत, प्राभ्रतक, वस्तु और पूर्व ये नव और इनमे क्रम से एक एक अक्षर की वढवारी द्वारा उत्पन्न होने वाले नव अक्षर समासआदि इस प्रकार कुल द्रव्यश्रुत के अठारह भेद होते है इममे पर्याय और पर्यायसमास को मिलाने से ज्ञान श्रुत के वीस भेद होते है ये भेद पूर्व दोहा न० ३१७–३१८ मे भी दिखाये थे अग भेद से वारह भेद होते हैं पूर्व भेद से चौदह भेद होते है और द्रव्य तथा भाव के भेद से श्रुत के मुख्य दो भेद है ॥३४८–३४९॥

आगे द्वादशाग की पद सख्या दिखाते है।

वारुत्तरसयकोडी तेसीदी तहय होंति लक्खाण।
अट्ठावरणसहस्सा पचेव पदाणि अंगाणं ॥३५०॥

इक सौ बारह कोटि में, लाख तिरासी जोड़।
सहस अट्ठावन पाँच पद, द्वादशांग के जोड़ ।३५०।

अर्थ—एक सौ वारह कोटि, तिरासी लाख, अट्ठावन हजार और पांच (११२८३५८००५) पद सव जिन वाणी के होते है ॥३५०॥

आगे अंगवाह्यश्रुत के अक्षरो की सख्या दिखाते है।

अडकोडिएयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च।
पण्णत्तरि वण्णाओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५१॥

आठ कोटि इक लाख अरु; आठ हजार पिछान।
इक सौ पिचहत्तर वरण; अंग बाह्य के जान॥३५१॥

अर्थ–आठ करोड, एक लाख, आठ हजार और एक सौ पिचहत्तर (८०१०८१७५) अक्षर अग वाह्यश्रुत के है ॥३५१॥

आगे वर्णमाला के ६४ अक्षर दिखाते है।

तेत्तीस वेंजणाइं सत्तावीसा सरा तहा भणिया ।
चत्तारि य जोगवहा चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥३५२॥

तेतिस व्यंजन और स्वर, सत्ताइस हैं मूल ।
योगवाह चउ इसतरह, चौंसठ अक्षर मूल ॥३५२॥

अर्थ—व्यजन तेतीस है, स्वर (नव छोटे, नव बडे, नव ३ मात्रा वाले) सत्ताईस है और योगवाह (अनुसार, विसर्ग, जिह्वामूली, उपध्मानी) चार है इसतरह कुल ६४ अक्षर वर्णमाला के होते है ।३५२।

आगे श्रुत की सख्या निकालने की विधि दिखाते है ।

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा ।
रूऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥३५३॥

चौंसठ पद विरलन करे, दो से गुणा कराय ।
लब्ध विषैं कर एक कम, सब श्रुत अक्षर आय ॥३५३॥

अर्थ—उपरोक्त ६४ अक्षरो को अलग २ रख करके पश्चात् उन प्रत्येक के ऊपर दो का अक रख कर परस्पर उनका गुणा करने से जो सख्या आवे उसमे एक कम कर जो शेष सख्या रहे उतनी सब श्रुतज्ञान के अक्षरो की सख्या है ॥३५३॥

आगे उपरोक्त सख्या को स्पष्ट दिखाते है ।

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता ।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥३५४॥

इक अठ चउ चउ छै सपत, चउ चउ सुन सत तीन ।
सात शून्य नव पांच पनै, इक छै इक पन चोन ॥३५४॥

अर्थ—१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इतने अगप्रविष्ट और

अगवाह्य श्रुत के सव अपुनरुक्त (जो दो वार न आये) अक्षर है और पुनरुक्त अक्षर सख्या रहित है ॥३५४॥

आगे इन अक्षरो मे अगप्रविष्ट अगवाह्य के भेद दिखाते है ।

मज्झिमपदक्खरवहिदवण्णा ते अगपुव्वगपदाणि ।
सेसक्खरसखा ओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५५॥

मध्य पदाक्षर भाग दे, उपरोक्ताक्षर गाय ।
अंग पूर्व के उते पद, शेषाक्षर अंग बाह्य ॥३५५॥

अर्थ—जो मध्य (एक) पद के अक्षर दोहा न० ३३६ मे हैं उनका दोहा न० ३५४ के अक्षरो मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतने पद द्वादशाग के है शेप अक्षर अग वाह्य श्रुत के है ॥३५५॥

आगे ग्यारह अगो के नाम दिखाते है ।

आयारे सुद्दयडे ठाणे समवायणामगे अगे ।
तत्तो विक्खापणत्तीए णाहस्स धम्मकहा ॥३५६॥
तोवासयअज्झयणे अतयडे णुत्तरोववाददसे ।
पण्हाणं वायरणे विवायसुत्ते य पदसखा ॥३५७॥

मुनिचर्य्या धर्म क्रिया, द्रव्यांतर सम–द्र्व ।
जीवसुसिद्धि पुराण अरु, श्रावकचर्य्या सर्व॥३५६॥
दश उपसर्ग सिद्ध अरु, दश अनुत्तर उपसर्ग ।
ज्योतिष फल खंडन तथा, कर्म उदय पद वर्ग ॥५७

अर्थ—मुनिचर्य्या, धर्मक्रिया, द्रव्यातर, द्रव्यतुलना, जीवसिद्धि, पुराण, श्रावकचर्य्या, दश-उपसर्ग-सिद्धि, दश-उपसर्ग-अनुत्तर, ज्योतिपफलखडन और कर्मोदय ये ११ अगो के नाम है ॥३५६-५७

आगे ११ अंगो की पद संख्या दिखाते है ।

अट्ठारस छत्तीस बादाल अडकडी अडवि छप्पण्णं ।
सत्तरि अट्ठावीस चउदाल सोलससहस्सा ॥३५८॥
इगिदुगपंचेयार तिवीसदुतिणउदिलक्ख तुरियादी ।
चुलसीदिलक्खमेया कोडी य विवागसुत्तम्हि ॥३५९॥

अष्टादश छत्तीस पद, सहस वियालिस गाय ।
एक लाख चौंसठ सहस, दो लख सहस अठाय ५८-१
पांच लाख छप्पन सहस, पदसंख्या क्रम ठान ।
आगे ग्यारह लाख अरु, सत्तर सहस पिछान ॥५८-२
लाख वीस त्रय के परें, अट्ठाईस हजार ।
लाख बानवें के परे, चवालीस हज्जार ॥३५९-१॥
लाख त्रानवें के परें. सोलह सहस पिछान ।
एक कोटि चौरासि लख, पद संख्या क्रम जान ॥५९-२

अर्थ—अठारह हजार (१८०००), छत्तीस हजार (३६०००), ब्यालीस हजार (४२०००) एक लाख चौंसठ हजार (१६४०००), दो लाख अट्ठाईस हजार (२२८०००), पांच लाख छप्पन हजार (५५६-०००), ग्यारह लाख सत्तर हजार (११७००००), तेईस लाख अट्ठाईस हजार (२३२८०००), बानवे लाख चवालीस हजार (९२-४४०००), तिरानवे लाख सोलह हजार (९३१६०००) और एक करोड़ चौरासी लाख (१८४,०००००) पद क्रम से ग्यारह अंगों के हैं ॥३५८-३५९॥

आगे सब पदों की संख्या दिखाते है ।

वापणनरनोनानं एयारगे जुदी हु वादम्हि ।
कनजतजमताननम जनकनजयसोम वाहिरे वण्णा ॥३६०॥

चार कोटि अरु पन्द्रहा, लाख दोय हज्जार ।
पद एकादश अंग के, गाये लेउ संभार ॥३६०-१॥
एक लाख अठ कोटि अरु, अरसठ लाख पिछान ।
छप्पन सहस रु पांच पद, दृष्टिवाद के जान ॥३६०-२॥

अर्थ—उपरोक्त ग्यारह अगो के पदो की सख्या का जोड चार करोड, पन्द्रह लाख, दो हजार (४१५०२०००) होता है और वारहवे दृष्टिवाद अग के सव पदो की सख्या एक लाख आठ कोटि अडसठ लाख, छप्पन सहस, पाच (१०८६८५६००५) पद है ॥३६०

आगे दृष्टिवाद अग के भेदप्रभेद को दिखाते है ।

चदरविजवुदीवयदीवसमुद्दयवियाहपण्णत्ती ।
परियम्म पचविह सुत्त पढमाणिजोगमदो ॥३६१॥
पुव्वं जलथलमाया आगासयरूवगयमिमा पंच ।
भेदा हु चूलियाए तेसु पमाण इणं कमसो ॥३६२॥

शशि रवि जम्बूद्वीप अरु, द्वीप उदधि व्याख्यान ।
पांच भेद भूगोल के, सूत्र कथा पूर्वान ॥३६१॥
जल थल माया नभगता, रूपगता ये पांच ।
भेद मंत्र खंडन कहे, संख्या क्रम से वांच ॥३६२॥

अर्थ—वारहवे दृष्टिवादअग के मुख्य भेद पाच है भूगोल, मतमतातरखडन, पुण्यकथा, पूर्व और मंत्रादिखडन । भूगोलदृष्टिवाद

अग के पाच भेद है चन्द्रकथन, सूर्यकथन, जम्बूद्वीपकथन, द्वीपसमुद्र कथन और प्रश्नोत्तर। मतमतातर खडन दृष्टिवाद अग मे भेद नही है पूर्वनामकदृष्टिवादअग के चौदह भेद है उत्पाद, नयभेद, शक्तिभेद, स्याद्वाद, ज्ञानभेद, सत्यभेद, आत्मभेद, कर्मभेद, त्यागभेद, भाषाभेद, कल्याणभेद, प्राणभेद, क्रियाभेद और लोकभेद। मन्त्रादिखडनदृष्टिवाद-अग के पाच भेद है जलसम्बन्धी, थलसम्बन्धी, आकाशसम्बन्धी, इन्द्र-जालसम्बन्धी और बहुरूपसम्बन्धी ॥३६१-३६२॥

आगे दृष्टिवाद अग के भेदो की पदसख्या दिखाते है।

गतनम मनग गोरम मरगत जवगातनोनन जजलक्खा।
मननन धममननोननाम रनधजधराननजलादी ॥३६३
याचकनामेनाननमेदाणि पदाणि होंति परिकम्मे।
कानवधिवाचनाननमेसो पुण चूलियाजोगो ॥३६४॥

छत्तिस लख अरु पन सहस, पांच लाख शत तीस।
तीन लाख पच्चिस सहस, शशि रवि जम्बू दीस॥६३-१
बावनलख छत्तिस सहस, द्वीप उदधि के मान।
लखचौरासी अरु सहस, छत्तिस पद व्याख्यान॥६३—२
लाख अठासी सूत्र पद, कथा पॉच हज्जार।
पूर्व कोटि पंचानवे, लखपचास पनधार॥६३—३
दो किरोड़ नव लाख अरु, सहस नवासी मान।
दो सौ पद प्रत्येक के, जल थल आदिक जान॥६४—१
एक कोटिइक्यासिलख, पांच सहस शशि आदि।
दश किरोड उनचास लख, छतिस सहस जल आदि ६४-२

अर्थ--चन्द्रकथन के छत्तीस लाख पाच हजार (३६०५०००) पद हैं सूर्यकथन के पाच लाख तीन हजार (५०३०००) पद है जम्बूद्वीप-कथन के तीन लाख पच्चीस हजार (३२५०००) पद है द्वीपसागर कथन के बावन लाख छत्तीस हजार (५२३६०००) पद है प्रश्नोत्तर कथन के चौरासी लाख छत्तीस हजार (८४३६०००) पद हैं इन चन्द्रकथन आदि पाँचो के पदो का जोड एक किरोड इक्यासी लाख पाँच हजार (१८१०५०००)पद है मत-मतान्तर खडन के अठासी लाख (८८०००००) पद है पुण्यकथा के पॉच हजार (५०००) पद है चौदह पूर्वो के पचानवे किरोड पचास लाख पाच (९५५०००००५) पद है जलसम्वधी आदि पाचो मे से प्रत्येक के दो किरोड नो लाख, नवासी हजार दो सौ (२०९८९२००) पद है और इन जल सम्वन्धी आदि पॉचो के पदों का जोड दश किरोड उनचास लाख, छियालीस हजार (१०४९४६०००) है ॥३६३-३६४॥

आगे प्रत्येक पूर्व के पदो की सख्या दिखाते है ।

पण्णट्ठदाल पणतीस तीस पण्णास पण्ण तेरसदं ।
णउदी दुदाल पुव्वे पणवण्णा तेरससयाइं ॥३६५॥
छस्सय पण्णासाइं चउसयपण्णास छसयपणुवीसा ।
विहि लक्खेहि दु गुणिया पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे ॥३६६॥

प्रथम पूर्व इक कोटि पद, लाख छयानवे जोड़ ।
सत्तर लाख रु साठ लख, इक कम एक किरोड ॥
एक कोटि छै पद अधिक, पद छब्बीस किरोड ।
एक कोटि लाखं असी, लाख चुरासी जोड़ ॥
एक कोटि दश लाख पद, पद छब्बीस करोड़ ।
तेरह कोटि रु कोटि नव, साढेबारह कोड़ ॥

अर्थ—चौदह पूर्वो के क्रम से एक किरोड (१०००००००) पद है छानवे लाख (९६०००००) पद है सत्तर लाख (७००००००) पद है साठ लाख (६००००००) पद है एक कम एक किरोड (९९९९-९९९) पद है एक किरोड और छै (१००००००६) पद है छब्बीस किरोड (२६०००००००) पद है एक किरोड अस्सी लाख (१८०००-०००) पद है चौरासी लाख (८४०००००) पद है एक किरोड दश लाख (११००००००) पद है छब्बीस किरोड (२६०००००००) पद है तेरह किरोड (१३०००००००) पद है नव किरोड (९०००००००) पद है और बारह किरोड पच्चास लाख (१२५००००००) पद है ॥३६५-३६६॥

आगे अंगबाह्यश्रुत के भेद दिखाते है।

सामाइयचउवीसत्थयं तदो वंदणा पडिक्कमणं।
वेणइयं किदियम्मं दसवेयालं च उत्तरज्झयणं ॥३६७॥
कप्पववहारकप्पाकप्पियमहकप्पियं च पुंडरियं।
महपुंडरीयणिसिहियमिदि चोद्दसमंगबाहिरयं ॥३६८॥

सामायिक श्रुत वंदना, प्रतिक्रमण विनवाय।
क्रतिकर्म रु विशेप क्षण, थिर उपसर्ग कराय ।३६७॥
उचित क्रिया उचिताउचित, महा उचित विधि मान।
कुतप महातप फलकथक, प्रायश्चित श्रुत जान।३६८।

अर्थ—सामायिकविधि, स्तुतिविधि, वन्दनाविधि, प्रतिक्रमणविधि, विनयविधि, कृतिकर्मविधि, विशेषकालविधि, उपसर्गसहनविधि, योग्यक्रियाविधि, योग्यायोग्यक्रियाविधि, महाक्रियाविधि, कुतपफल-बोधक, महातपफलबोधक और प्रायश्चित्तविधि ये चौदह अंगबाह्य श्रुत के भेद है ये मुनियो के क्रियाकाड के शास्त्रो के नाम है इनके

अक्षरो का परिमाण दोहा न० ३५१ मे लिखा है ॥३६७-३६८॥

आगे श्रुत का महात्म दिखाते है।

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं ॥३६९॥

श्रुत अरु केवल ज्ञान द्वय, तुल्य ज्ञान इक पद्य।
परि श्रुतज्ञान परोक्ष है, केवलज्ञान प्रत्यक्ष।३६९।

अर्थ—ज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान और केवलज्ञान समान है किन्तु अन्तर यह है कि श्रुतज्ञानपरोक्ष है और केवलज्ञानप्रत्यक्ष है॥३६९॥

आगे अवधिज्ञान के भेद और स्वरूप दिखाते है।

अवहीयदित्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णिय समये।
भवगुणपच्चयविहियं जमोहिणाणेति ण वेंत्ति ॥३७०॥

विषयअवधि जिसकी नियत, अवधि ज्ञान सो मान।
भव अरु गुण के हेतु से, उसमें भेद पिछान।३७०।

अर्थ– जिसके विषय की सीमा हो उस ज्ञान को अवधिज्ञान कहते है वह भवकारण और गुणकारण के भेद से दो प्रकार का है ॥३७०॥

आगे अवधिज्ञान के योग्य पात्र दिखाते है।

भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थेवि सव्वअंगुत्थो।
गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादि चिह्नभवो ॥३७१॥

जो भव कारण अवधि है, सुर नारक के होय।
संखादिक के चिन्हसे, नरपशु के गुणजोय।३७१।

अर्थ—भवकारण अवधि देव और नारकियो के सब अग से

उत्पन्न होती है और गुणकारण अवधि मनुष्य और तिर्यंचो के नाभि के ऊपर सख, पद्म, वज्र और कलशादि शुभचिन्हों से उत्पन्न होती है। तीर्थंकरों के गुण कारण अवधि होती है ॥३७१॥

आगे गुण कारण के भेद प्रभेद दिखाते है।

गुणपच्चइगो छद्धा अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा ।
देसोही परमोही सव्वोहित्ति य तिधा ओही ॥३७२॥

देश परम सव अवधि से, गुण कारण त्रय मान ।
अनुगामी वढ़वार थिर, अपर देश छै जान ॥३७२॥

अर्थ—गुणकारण अवधि तीन प्रकार की होती है देशावधि परमावधि और सर्वावधि। देशावधि छै प्रकार की होती है परभव गामी, अपरभवगामी, वढता हुआ, घटता हुआ, स्थिर और अस्थिर ॥३७२॥

आगे भवकारण अवधि को देशावधि दिखाते है।

भव पच्चइगो ओही देसोही होदि परमसव्वोही ।
गुणपच्चइगो णियमा देसोही वि य गुणे होदि ॥३७३॥

जो भवकारण अवधि है, देशावधि ही मान ।
देश परम अरु सर्व से, गुण कारण त्रय जान ॥३७३॥

अर्थ— भवकारण अवधि देशावधि ही होती है इसकारण इस मे कोई भेद नही है और गुणकारण अवधि देश, परम और सर्व के भेद से तीन प्रकार की होती है जैसा कि ऊपर दोहा न० ३७२ मे वता चुके है ॥३७३॥

आगे देशावधि के योग्य पात्र दिखाते है।

देसोहिस्स य अवरं णरतिरिये होदि संजदम्हि वरं ।
परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्य ॥३७४॥

जघन देश नर पशु के, ज्येष्ठव्रती के होय ।
अंत देह धर व्रती के, परम सर्व वधि होय ॥३७४॥

अर्थ—जघन्य देशावधि व्रती और अव्रती मनुष्य और तिर्यंचो के होती है उत्कृष्टदेशावधि महाव्रती के ही होती है और परमावधि तथा सर्वा-वधि अतदेहधारी महाव्रती (मुनि) के ही होती है ॥३७४॥

आगे देशावधि को पतन सहित दिखाते है ।

पडिवादी देसोही अप्पडिवादी हवति सेसा ओ ।
मिच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे ॥३७५॥

देशावधि है पतन युत, पतन रहित द्वय शेष ।
नहिं अविरत मिथ्यात को, प्राप्त होंहिं वे लेश ॥३७५॥

अर्थ—देशावधि पतन सहित है और परमावधि तथा सर्वा-वधि पतन रहित है इसलिये इनके धारी महामुनि अव्रत और मिथ्यात्व अवस्था को प्राप्त नही होते ॥३७५॥

आगे देशावधि का विपय दिखाते है ।

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि रूवि जाण दे ओही ।
अवराद्क्कस्सोत्ति य वियप्परहिदो दु सव्वोही ॥३७६॥

द्रव्य क्षेत्र क्षण भाव से, अवधि रूप तक ज्ञान ।
सर्वा-वधि में भेद नहिं, जघन ज्येष्ट का जान ॥३७६॥

अर्थ—जघन्य और उत्कृष्ट भेद तक सव ही अवधिज्ञान, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षारूपी द्रव्य को जानते है किन्तु सर्वा-वधिज्ञान मे जघन्य और उत्कृष्ट भेद नही होते ॥३७६॥

आगे देशावधि के जघन्य द्रव्य की सख्या दिखाते हैं ।

णोकम्मुरालसंचं मज्झिमजोगज्जियं सविस्सचयं ।
लोयविभत्तं जाणदि अवरोही दव्वदो णियमा ॥३७७॥

संचय मध्यम योग से, विस्रसउपचय सर्व ।
औदारिक नोकर्म में, लोक भाग लघु दर्व ॥३७७॥

अर्थ—मध्यम योग से सचित विस्रसोपचय (आशावान कर्म) सहित औदारिकनोकर्मवर्गणा मे लोक (असख्यात) का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने द्रव्य को जघन्य देशावधिज्ञान जानता है ॥३७७॥

आगे देशावधि के जघन्य क्षेत्र को दिखाते है ।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि ।
अवरोगाहणमाणं जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ॥३७८॥

सूक्ष्म अपूर्ण निगोद के, जन्म वाद क्षण तीन ।
जो जघन्य अवगाहना, अवधि क्षेत्र लघु चीन॥३७८॥

अर्थ—सूक्ष्मलब्धअपर्याप्तनिगोदिया जीव के उत्पन्न होने से तीसरे समय मे जो जघन्य अवगाहना होती है उसका जितना क्षेत्र होता है उतना क्षेत्र जघन्यदेगावधि का है ॥३७८॥

आगे उपरोक्त आगय को दृढ कर दिखाते है ।

अवरोहिखेत्तदीहं वित्थारुस्सेहय ण जाणामो ।
अण्णं पुण समकरणे अवरोगाहणपमाणं तु ॥३७९॥

जघन अवधि के क्षेत्र का, नहिं जाने विस्तार ।
समीकरण तो भी करे, जघन गाहना सार ॥३७९॥

अर्थ—जघन देगावधि के क्षेत्र की उचाई, लम्वाई और चौडाई का भिन्न-भिन्न परिमाण हम नही जानते तो भी हम यह जानते है कि

सबको बराबर करने से जितना निगोदिया जीव की जघन्य अवगाहना का परिमाण आता है उतना जघन्य देशावधि का क्षेत्र है ॥३७९॥

आगे जघन्य अवगाहना के बराबर जघन्यदेशावधि दिखाते है।

अवरोगाहणमाण उत्सेहंगुलअसंखभागस्स ।

सूइस्स य घणपदर होदि हु तक्खेत्तसमकरणे ॥३८०॥

मांगुल असंख्य भाग वत्, उच्च लंब चौडान ।

गुणि घन असंख्य भाग वत्, लघु गाहन लघु थान ३८०

अर्थ—उत्सेधांगुल (सूक्ष्मागुल) के असख्यातवे भाग बराबर लबाई, चौडाई और ऊँचाई मे परस्पर गुणा करने से घनागुल के असख्यातवे भाग बराबर परिमाण आता है उतना जघन्यअवगाहन का परिमाण होता है और उतना ही जघन्यदेशावधि का क्षेत्र है ॥३८०॥

आगे जघन्यअवधि का क्षेत्र उत्सेधागुल से दिखाते है।

अवरं तु ओहिखेत्तं उस्सेहं अंगुल हवे जम्हा ।

सुहमोगाहणमाणं उवरि पमाण तु अंगुलयं ॥३८१॥

जघन अवधि का क्षेत्र सब; सेधांगुल से मान ।

सूक्ष्म गाहना के परे, प्रमाण-अंगुल जान ॥३८१॥

अर्थ—जो जघन्य देशावधि का क्षेत्र सूक्ष्मलब्धिअपर्याप्तनिगोदिया जीव की अवगाहना के बराबर दोहा नं० ३७८ मे वतलाया है वह उत्सेधागुल की नाप से माना गया है इसके आगे जो देशावधि का क्षेत्र है वह प्रमाणांगुल से माना गया है कारण आगम मे शरीर, घर, ग्राम और नगर आदि का परिमाण उत्सेधागुल से माना गया है जो कि जघन्य देशावधि का विषय है ॥३८१॥

आगे जघन्य देशावधि के द्रव्य का परिमाण दिखाते है।

अवरोहिखेत्तमज्झे अवरोही अपरदव्वमवगमदि ।
तद्दव्वस्सवगाहो उस्सेहासखघणपदरा ॥३८२॥

जघन अवधि निज क्षेत्र में, जघन द्रव्य का ज्ञान ।
उस अवगा उत्सेध के, अगणित घन प्रतरान ॥३८२॥

अर्थ—जघन्य देशावधि अपने जघन्य क्षेत्र में जितने जघन्य द्रव्य हैं उन सबको जानता है उस द्रव्य का घनरूप परिमाण उत्सेधांगुल के असंख्यातवें भाग बराबर है ॥३८२॥

आगे जघन्य देशावधि को काल और भाव से दिखाते हैं ।

आवलिअसंखभागं तीदभविस्सं च कालदो अवरं ।
ओही जाणदि भावे कालअसंखेज्जभाग तु ॥३८३॥

लखे अवधि लघु काल से, आवलि असंख्य भाग ।
गत आगत की भाव से, काल असंख्ये भाग ।३८३।

अर्थ—जघन्यदेशावधि, काल की अपेक्षा द्रव्य की प्रदेश पर्यायो को आवली के असख्यातवे भाग बराबर जानता है और काल की अपेक्षा से जितनी पर्यायो को जानता है उसके असख्यातवे भाग बराबर भाव की अपेक्षा से वर्तमानकाल की पर्यायो को जानता है ॥३८३॥

आगे देशावधि के अन्य भेदो को दिखाते है ।

अवरद्दव्वादुवरिमदव्ववियप्पाय होदि धुवहारो ।
सिद्धाणंतिमभागो अभव्वसिद्धादणंतगुणो ॥३८४॥

परें द्रव्य लघु द्रव्य के, भेद अर्थ ध्रुवहार ।
नंत भाग वह सिद्ध से, अभवि नंत गुणि धार ।३८४।

अर्थ—जघन्य द्रव्य के ऊपर द्रव्य के अन्य भेद निकालने के लिये

एक ध्रुवहार होता है उसका परिमाण सिद्ध राशि से अनतवे भाग और अभव्य राशि से अनतगुणा है ॥३८४॥

आगे अवधि विषय मे समयप्रवद्धका परिमाण दिखाते है।

धुवहारकम्मवग्गणगुणगारं कम्मवग्गणं गुणिदे।
समयपवद्धपमाणं जाणिज्जो ओहिविसयम्हि ॥३८५॥

ध्रुवहारा के रूप में, कर्म - वर्गणा कोय।
गुणाकार का तथा अरु, कर्म वर्गणा जोय ॥३८५-१॥
गुणा परस्पर करें से, अवधि विषय में मान।
समय-प्रवद्धा का कढे, तव परिमाण पिछान।३८५-२।

अर्थ—ध्रुवहार रूप कार्माणवर्गणा के गुणा का और कार्माण-वर्गणा का परस्पर गुणा करने से अवधि के विषय मे समयप्रवद्ध (अनतवर्गणा) का परिमाण निकलता है ॥३८५॥

आगे ध्रुवहार का परिणाम दिखाते है।

मणदव्ववग्गणाण वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो।
अवरुक्कस्सविसेसा रूवहिया तव्वियप्पा हु ॥३८६॥

मनोवर्गणा द्रव्य के, वर में अवर घटाय।
शेषहिं एक मिलाय के, मनोद्रव्य भेदाय।३८६-१।
इनका जितना मान है, अमित भेद उर धार।
एक भाग की बराबर, अवधि विषय ध्रुवहार।३८६-२।

अर्थ-द्रव्य मनोवर्गणा के उत्कृष्ट परिमाण मे से उसके जघन्य परिमाण को घटाने से जो शेष रहता है उसमे एक मिलाने से द्रव्य

मनोवर्गणा के भेदो का परिमाण निकलता है इन भेदो का जितना परिमाण है उसके अनतभागो मे से एक भाग की बराबर अवधि के विषयभूत द्रव्य के ध्रुवहार का परिमाण है ॥३८६॥

आगे मनोवर्गणा के जघन्य और उत्कृष्ट का परिमाण दिखाते है।

अवरं होदि अणंतं अणंतभागेण अहियमुक्कस्स।
इदि मणभेदाणंतिमभागो दव्वम्मि धुवहारो ॥३८७॥

जघन नंत उस नंत में, एक भाग मिल ज्येष्ठ।
नंत भेद त्यों मनोके, एक भाग ध्रुव श्रेष्ठ ॥३८७॥

अर्थ—द्रव्यमनो वर्गणा का जघन्य परिमाण अनत है इसमे इसी (जघन्य) के अननभागो मे मे एक भाग मिलाने से द्रव्य मनोवर्गणा का उत्कृष्ट परिमाण होता है इसप्रकार जितने द्रव्यमनोवर्गणा के भेद हुये उनके अनन भागो मे से एक भाग बराबर अवधि के विषय भून द्रव्य के ध्रुवहार का परिमाण होता है ॥३८७॥

आगे और रीति से ध्रुवहार का परिमाण दिखाते है।

धुवहारस्स पमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्त पि।
समयपवद्धणिमित्तं कम्मणवग्गणगुणादो दु ॥३८८॥
होदि अणंतिमभागो तग्गुणगारो वि देसओहिस्स।
दोऊणदव्वभेदपमाणद्धुवहारसवग्गो ॥३८९॥

सिद्ध राशि से अमितवां, भाग तुल्य ध्रुवहार।
कर्म वर्गणा समय का, भाग नंत गुणाकार ॥३८८॥
कर देशावधि द्रव्य के, भेदनि में दो हान।
शेष रहे ध्रुवहार के, गुणाकार का मान ॥३८९॥

अर्थ—यद्यपि ध्रुवहार का परिमाण सिद्ध राशि के अनतवे भाग बराबर है तो भी अवधि के विषयक समयप्रबद्ध का परिमाण निकालने के निमितभूत कार्माणवर्गणा के गुणाकार के अनतवे भाग ध्रुवहार का परिमाण होता है। द्रव्य की अपेक्षा देशावधि के जितने भेद है उनमे दो कम करने से जो परिमाण शेष रहता है उसका और ध्रुवहार के परिमाण का परस्पर गुणा करने से कार्माणवर्गणा के गुणाकारक का परिमाण आता है ॥३८८–३८९॥

आगे देशावधि के द्रव्य की अपेक्षा भेद दिखाते है।

अंगुलअसंख्यगुणिदा खेत्तवियप्पा य दव्वभेदा हु।
खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ ॥३९०॥

अंगुल असंख्य गुणाकर, क्षेत्र भेद द्रव भेद।
वर में जघन घटाय कर, एक मिले थल भेद ॥३९०॥

अर्थ—क्षेत्र की अपेक्षा देशावधि के जितने भेद है उनको सूक्ष्मांगुल के असख्यातवे भाग से गुणा करने से जो सख्या उत्पन्न होती है उतनी सख्या द्रव्य की अपेक्षा देशावधि के भेद है। और क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट, परिमाण मे से जघन्य परिमाण को घटाने से तथा उसमे एक मिलाने से जो परिमाण आता है उतने ही क्षेत्र की अपेक्षा अवधि के भेद है ॥३९०॥

आगे क्षेत्र से जघन्य और उत्कृष्ट परिमाण दिखाते है।

अंगुलअसंख्यभागं अवरं उक्कस्सयं हवे लोगो।
इदि वग्गणगुणगारो असंखधुवहारसंवग्गो ॥३९१॥

अंगुल असंख्य भाग लघु, वर है लोक समान।
यों असंख्य ध्रुवहार का, गुणा वर्गणा जान।३९१।

अर्थ—जो दोहा न० ३८० मे लब्धिअपर्याप्तनिगोदिया जीव की

अवगाहना के बराबर (घनागुल के असख्यातवे भाग बराबर) जघन्य देशावधि के क्षेत्र का परिमाण बतलाया था उतना है और उत्कृष्ट देशावधि का क्षेत्रलोक के बराबर है इसलिए असख्यात ध्रुवहारो का परस्पर गुणा करने से कार्माण वर्गणा का गुणाकार निकलता है ॥३६१॥

आगे कार्माण वर्गणा का परिमाण दिखाते है।

वग्गणरासिपमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
दुगसहियपरमभेदपमाणवहाराण संवग्गो ॥३६२॥

वर्गण का परिमाण है, सिद्ध अमितवां भाग ।
परम भेद में दो मिलें, ध्रुव रख गुण फल लाग ॥३६२॥

अर्थ—यद्यपि कार्माण वर्गणा का परिमाण सिद्धराशी से अनतवां भाग है तोभी परमावधि के भेदो मे दो मिलाने से जो परिमाण होता है उतनी जगह ध्रुवहार को रखकर फिर उन दोनो मे परस्पर गुणा करने मे जो परिमाण आता है उतना परिमाण कार्माणवर्गणा का है ॥३६२॥

आगे परमावधि के भेद निकालने की विधि दिखाते है।

परमावहिस्स भेदा सगओगाहणवियप्पहदतेऊ ।
इदि ध्रुवहारं वग्गणगुणगारं वग्गणं जाणे ॥३६३॥

अग्नि काय के भेद अरु, अग्नि गाहना भेद ।
गुणा परस्पर करें से, परमावधि के भेद ॥३६३-१॥
इस प्रकार ध्रुवहार अरु, वर्गणा का गुणकार ।
अरुस्वरूप वर्गणा का, जानो यथा विचार।३६३-२।

अर्थ—अग्नि काय के जीवो की अवगाहना के भेदो का और

अग्नि काय के जीवो की सख्या का परस्पर गुणा करने से जो सख्या होती है उतने द्रव्य की अपेक्षा परमावधि के भेद है। इस प्रकार ध्रुव-हार का परिमाण है वर्गणा के गुणाकार का परिमाण है और वर्गणा का परिमाण है ॥३६३॥

आगे देशावधि के भेद निकालने की विधि दिखाते हैं।

देसोहिअवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे विदियं ।
तदियादिवियप्पेसु वि असंखवारोत्ति एस कमो ॥३९४॥

देशावधि लघु द्रव्य को, भाग दिये ध्रुवहार ।
भेद दुतिय तृतियादि हो, क्रम से असंख्य वार ।३६४।

अर्थ—जो देशावधि के जघन्यद्रव्य का परिमाण पूर्व दोहा न० ३७७ मे बतला चुके है उसमे ध्रुवहार का भाग देने से देशावधि के दूसरे भेद के द्रव्य का परिमाण आता है। इस भेद मे फिर ध्रुवहार का भाग देने से देशावधि के तीसरे भेद के द्रव्य का परिमाण आता है इसी तरह भाग देते देते देशावधि के असख्यात भेदो के द्रव्य का परिमाण आता है ॥३६४॥

आगे देशावधि के मध्य भेदो का परिमाण दिखाते है।

देसोहिमज्झभेदे सविस्ससोवचयतेजकम्मंगं ।
तेजोभासमणाणं वग्गणयं केवलं जत्थ ॥३९५॥
पस्सदि ओहि तत्थ असंखेज्जाओ हवंति दीउवही ।
वासाणि असखेज्जा होंति असंखेज्जगुणिदकमा ॥३९६॥

देश मध्य के भेद पन, विस्र तैज कर्मांग ।
तैज वचन मन वर्गणा, उपचयविस्र न संग ॥३६५॥

वहाँ अवधि सामान्य से, अगणित द्वीप समुद्र।
वर्ष असंख्ये अंतरा, गुणि असंख्य क्रम मुद्र ॥२९६॥

अर्थ—इस प्रकार असंख्यात वार ध्रुवहार का भाग देते देते देशावधि के मध्य भेदो मे से जहा प्रथम भेद विस्रसोपचय सहित तैजस शरीर को विषय करता है दूसरा भेद विस्रसोपचय सहित कार्माणशरीर को विषय करता है तीसरा भेद विस्रसोपचय रहित तैजसवर्गणा को विषय करता है चौथा भेद विस्रसोपचय रहित भाषा वर्गणा को विषय करता है अथवा पाँचवा भेद विस्रसोपचय रहित मनोवर्गणा को विषय करता यहाँ सामान्य से देशावधि के उपरोक्त पाँच ही मध्य भेदो के क्षेत्र का परिमाण असंख्यात द्वीप समुद्र है और काल का परिमाण असंख्यात वर्ष है किन्तु पूर्व पूर्व क्षेत्र तथा कालकेपरिमाण मे उत्तरोत्तर भेद के क्षेत्र और काल का परिमाण असंख्यात असंख्यात गुणा अधिक है कारण असंख्यात के भी असंख्यात भेद होते है विस्रसोपचय का स्वरूप दोहा न० २४९ मे देखो ॥२९५-२९६॥

आगे देशावधि के और भेद निकालने की विधि दिखाते हैं।

तत्तो कम्मइयस्सिगिसमयपबद्ध विविस्ससोवचयं।
धुवहारस्स विभज्जं सव्वोही जाव ताव हवे ॥२९७॥

उस गत मन वर्गणा में, ध्रुवहारा का भाग।
विस्र रहित कर्मांण के, इक क्षण प्रवद्ध लाग।२९७-१।
इस क्रम के अनुसार ही, सर्वावधि तक मान।
ध्रुवहारा के भाग को, देते रहना जान ॥२९७-२॥

अर्थ—उसके पश्चात् मनोवर्गणा मे ध्रुवहार का भाग देना चाहिये इस तरह भाग देते देते विस्रसोपचयरहित कार्माण के एक

समयप्रवद्ध को विपय करता है उपरोक्त क्रमानुसार इसमे भी सर्वावधि के विपय तक ध्रुवहार का भाग देते जाना योग्य है ॥३९७॥

आगे देशावधि के अत के भेद निकालने की विधि दिखाते है ।

एदम्हि विभज्जंते दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणाय ।

चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु ॥३९८॥

समयवद्ध में भी करो, ध्रुवहारा का भाग।

देशावधि अंतांश दो, वर्गण संख्या जाग ।३९८-१।

एक वर्गणा के विषें, एक बार कर भाग।

जो फल उपजे अंत का, वह ही संख्या जाग ३९८-२

अर्थ—इस समयप्रवद्ध (अनत वर्गणा) मे भी ध्रुवहार का भाग देने से देशावधि के अत के दो भेदो के विषयभूत द्रव्य का कार्माण-वर्गणा रूप परिमाण निकलता है इस एक कार्माणवर्गणा मे भी एक वार ध्रुव हार का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना देशावधि के अत भेद के विषय भूत द्रव्य का परिमाण निकलता है ॥३९८॥

आगे देशावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र के परिमाण की विधि दिखाते है ।

अगुलअसखभागे दव्ववियप्पे गदे दु खेत्तम्हि ।

एगागासपदेसो वड्ढदि सपुण्णलोगोत्ति ॥३९९॥

अंगुल असंख्य भाग सम, द्रव्य भेद थल दृष्टि ।

इक प्रदेश नभ का गढे, यों सब जग को इष्टि ।३९९।

अर्थ—जव सूक्ष्मागुल के असख्यातवे भाग वरावर द्रव्य के भेद होजाते है तव क्षेत्र की अपेक्षा एक आकाश का प्रदेश वढता है इस ही क्रम से एक एक आकाश के प्रदेश की वढती वहा तक करना आवश्यक है जहाँ तक कि देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र सव लोक हो

सके ॥३९९॥

आगे काल से देशावधि का परिमाण दिखाते है।

आवलिअसंखभागो जहण्णकालो कमेण समयेण।
वड्ढदि देसोहिवरं पल्लं समऊणयं जाव ॥४००॥

देशावधि लघु काल है, असंख्य भाग आवल्य।
अरु वर इक इक समय वढ, एकसमय कम पल्य।४००।

अर्थ—जघन्य देशावधि के विषयभूत काल का परिमाण आवली के असंख्यातवे भाग बराबर है इसके आगे क्रम से एक एक समय की ध्रुव और अध्रुवरूप बढवारी होते २ उत्कृष्ट देशावधि का काल एक समय कम एक पल्य बराबर होता है (जानना है) ॥४००॥

आगे प्रथम कांडक मे ध्रुवाध्रुव रूप वृद्धि दिखाते है।

अंगुलअसंखभाग धुवरूवेण य असखवार तु।
असंखसख भागं असखवार तु अद्धुवगे ॥४०१॥

अंगुल असंख्य भाग सम, ध्रुव मय असंख्यवार।
भाग असंख्ये संख्य सम, अध्रुव असंख्य वार।४०१।

अर्थ—प्रथम कांडक (समयो का समूह) के अंत भेद तक घनागुल के असंख्यातवे भाग बराबर असंख्यातवार ध्रुव वृद्धि होती है और इस कांडक के अंत तक घनागुल के असंख्यातवे और संख्यातवें भाग बराबर असंख्यातवार अध्रुववृद्धि होती है ॥४०१॥

आगे देशावधि के क्षेत्रवृद्धि के साथ कालवृद्धि दिखाते है।

धुव अद्धुवरूवेण य अवरे खेत्तम्हि वड्ढिदे खेत्ते।
अवरे कालम्हि पुणो एक्केक्कं वड्ढदे समयं ॥४०२॥

ध्रुव या अध्रुव रूप से, लघु थल पर जब वृद्धि ।
जघन काल के ऊप तब, इक इक क्षण की वृद्धि।४०२।

अर्थ—जब जघन्य देशावधि के क्षेत्र के ऊपर ध्रुव अथवा अध्रुव-रूप से वृद्धि होती है तब जघन्य देशावधि के काल के ऊपर एक एक समय की वृद्धि होती है ॥४०२॥

आगे प्रथम काडक मे असख्यात समय की वृद्धि दिखाते है ।

संखातीदा समया पढमे पव्वम्मि उभयदो वड्ढी ।
खेत्तं कालं अस्सिय पढमादी कडये वोच्छ ॥४०३॥

समय वृद्धि प्रथमा विषें, अगणित उभय स्वरूप ।
प्रथम कांड आदिक कहे, क्षेत्र काल के रूप ॥४०३॥

अर्थ—प्रथम कांडक मे ध्रुवरूप से और अध्रुवरूप से असख्यात समयो की वृद्धि होती है इसके आगे अब प्रथमादि काडकों का क्षेत्र और काल का वर्णन करते है ॥४०३॥

आगे प्रथमादि काडो मे क्षेत्र काल का परिमाण दिखाते है ।

अगुलमावलियाए भागमसखेज्जदोवि सखेज्जो ।
अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥४०४॥

अंगुल असंख्य भाग लघु, अंगुल संख्यजु भाग ।
आवलि असंख्य भाग लघु, आवलि संख्यजु भाग।४-१।
इक अंगुल परिमाण अरु, कुछ कम आवलि सत्व ।
इक अंगुल पृथक्त्व है, इक आवलि पृथक्त्व ।४-२।

अर्थ—प्रथम काडक मे जघन्य क्षेत्र का परिमाण घनागुल के असख्यातवे भाग वरावर है और उत्कृष्ट क्षेत्र का परिमाण घनागुल के सख्यातवे भाग वरावर है तथा इस ही काडक मे जघन्य काल का

परिमाण आवली के असंख्यातवे भाग बराबर है और उत्कृष्ट काल का परिमाण आवली के संख्यातवे भाग बराबर है तथा द्वितीय काँडक मे क्षेत्र का परिमाण घनांगुल के बराबर है और काल का परिमाण कुछ कम एक आवली बराबर है तृतीय कांडक मे क्षेत्र का परिमाण पृथक्त्व घनांगुल (तीन से नव घनांगुल) के बराबर है और काल का परिमाण पृथक्त्व आवली (तीन से नव आवली) के बराबर है (जानता है) ॥४०४॥

आगे चार सात काँडक का क्षेत्र और काल दिखाते है।

आवलियपुधत्तं पुण हत्थं तह गाउयं मुहुत्त तु।
जोयणभिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥४०५॥

एक हाथ के बराबर, इक आवलि पृथक्त्व।
एक कोस के बराबर, अन्तर्मुहूर्त्त सत्व ॥५-१॥
इक योजन के बराबर, भिन्न मुहूरत मान।
बीस पाँच योजन तथा, कुछ कम एक दिन जान ॥५-२

अर्थ—चौथे कांडक मे क्षेत्र का परिमाण एक हाथ बराबर है और काल का परिमाण पृथक्त्व आवली बराबर है। पाचवे कांडक मे क्षेत्र का परिमाण एक कोस के बराबर है और काल का परिमाण अन्तर्मुहूर्त्त के बराबर है। छट्ठे कांडक मे क्षेत्र का परिमाण एक योजन के बराबर है और काल का परिणाम अन्तर्मुहूर्त्त के बराबर है। सातवे कांडक मे क्षेत्र का परिमाण पच्चीस योजन बराबर है और काल का परिमाण कुछ कम एक दिन बराबर है (जानना है) ॥४०५॥

आगे आठवें से ग्यारहवें कांडक का क्षेत्र काल दिखाते है।

भरहम्मि अद्धमासं साहियमासं च जम्बुदीवम्मि।
वासं च मणुवलोए वासपुधत्तं च रुचगम्मि ॥४०६॥

भरत च्त्रेत्र के वरावर, आधा महिना नेक।
जम्बू द्वीप के बरावर, कुछ धिक महिना एक॥६-१॥
मनुष लोक के वराबर, एक वर्ष सम मान।
रुचक द्वीप के वरावर, वर्ष पृथक्त्व पिछान॥६-२॥

अर्थ—आठवे काडक मे क्षेत्र का परिमाण भरत क्षेत्र के वरावर है और काल का परिमाण आधे महीना के वरावर है। नववे कॉडक मे क्षेत्र का परिमाण जम्बूद्वीप के वरावर है और काल का परिमाण कुछ अधिक एक महीना के वराबर है। दशवे काडक मे क्षेत्र का परिमाण मनुष्यलोक वरावर है और काल का परिमाण एक वर्ष वरावर है तथा ग्यारहवे काडक मे क्षेत्र का परिमाण रुचकद्वीप के वरावर है और काल का परिमाण पृथक्त्ववर्ष (तीन वर्ष से नववर्ष) के वरावर है (जानता है) ॥४०६॥

आगे शेष काडको का क्षेत्र और काल दिखाते है।

सखेज्जपमे वासे दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा।
वासम्मि असंखेज्जे दीवसमुद्दा असंखेज्जा ॥४०७॥

द्वीप उदधि संख्यात हैं, संख्य वर्ष पहिचान।
द्वीप उदधि अगणित परें, वर्ष असंख्य पिछान।४०७।

अर्थ—वारहवे काडक मे क्षेत्र का परिमाण सख्यात द्वीप समुद्र के वरावर है और काल का परिमाण सख्यात वर्ष के वरावर है इसके आगे तेरहवे से लेकर उन्नीसवे काडक तक क्षेत्र का परिमाण असख्यात-द्वीप और समुद्र वरावर है और काल का परिमाण असख्यात वर्ष वरावर है (जानता है) ॥४०७॥

आगे ध्रुव और अध्रुव वृद्धि का परिमाण दिखाते है।

कालविसेसेणवहिदखेत्तविसेसो धुवा हवे वड्ढी।
अद्धुववड्ढीवि पुणो अविरुद्धं इट्ठकंडम्मि ॥४०८॥

क्षण विशेष का क्षेत्र में, भाग दिये ध्रुव वृद्धि।
इष्ट कांड में साम्य से, समझो अध्रुव वृद्धि ॥४०८॥

अर्थ—किसी कल्पित कांडक के क्षेत्र विशेष में काल विशेष का भाग देने से जो शेष रहे उतना ध्रुववृद्धि का परिमाण है इसी तरह अविरोध भाव से किसी कल्पित कांडक में अध्रुववृद्धि का परिमाण है ॥४०८॥

क्षेत्रविशेष—उत्कृष्टक्षेत्र के परिमाण में से जघन्यक्षेत्र के परिमाण को घटाने से जो शेष रहे उनको क्षेत्र विशेष कहते हैं ॥४०८॥

कालविशेष—उत्कृष्ट काल के परिमाण में से जघन्य काल के परिमाण को घटाने से जो शेष रहे उनको काल विशेष कहते हैं।

आगे अध्रुववृद्धि का क्रम दिखाते हैं।

अंगुलअसंखभागं मखं वा अंगुलं च तस्सेव।
संखमसंखं एवं सेढीपदरस्स अद्धुवगे ॥४०९॥

अंगुल असंख्य भाग वा, संख्य व अंगुल मात्र।
संख्यासंख्य व श्रेणि वा, प्रतरजु अध्रुव आत्र ॥४०९॥

अर्थ—घनांगुल के असंख्यातवें भाग बराबर, घनांगुल के संख्यातवें भाग बराबर, घनांगुलबराबर, संख्यातघनांगुलबराबर, असंख्यातघनांगुलबराबर, श्रेणी के असंख्यातवें भाग बराबर, श्रेणी के संख्यातवें भाग बराबर, श्रेणीबराबर, संख्यातश्रेणी बराबर, असंख्यातश्रेणी बराबर, प्रतर के असंख्यातवें भाग बराबर, प्रतर के संख्यातवें भाग बराबर, प्रतर बराबर, संख्यात प्रतर बराबर अथवा असंख्यात प्रतर बराबर प्रदेश क्षेत्र में बढ़ते हैं तब काल में एक एक समय की वृद्धि होती रहती है इस प्रकार अध्रुववृद्धि का क्रम है ॥४०९॥

आगे देशावधि के उत्कृष्ट द्रव्य और क्षेत्र को दिखाते है।

कम्मइयवग्गणं धुवहारेणिगिवारभाजिदे दव्वं।
उक्कस्सं खेत्तं पुण लोगो संपुण्णओ होदि ॥४१०॥

कारमाण वर्गण विषैं, ध्रुवहारा का भाग।
एक बार दे द्रव्य वर, ज्येष्ठ क्षेत्र जग लाग ॥४१०॥

अर्थ—कार्माणवर्गणा मे एकवार ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध आवे है उतना देशावधि के उत्कृष्ट द्रव्य का परिमाण है और सर्वलोक वरावर उत्कृष्ट क्षेत्र का परिमाण है ॥४१०॥

आगे काल और भाव से उत्कृष्ट देशावधि का विषय दिखाते है।

पल्लसमऊण काले भावेण असंखलोगमेत्ता हु।
दव्वस्स य पज्जाया वरदेसोहिस्स विसया हु ॥४११॥

पल्य समय कम काल से, भावहिं लोक असंख्य।
द्रव्यों की पर्याय को, वर देशावधि झंख्य ॥४११॥

अर्थ—काल की अपेक्षा एक समय कम एक पल्य तक की वातों को उत्कृष्ट देशावधि जानता है और भाव की अपेक्षा असंख्यात लोक वरावर द्रव्यो की पर्यायो को उत्कृष्ट देशावधि जानता है ॥४११॥

आगे चारो प्रकार की वृद्धियो का सगासग दिखाते हैं।

काले चउण्ण उड्ढी कालो भजिदव्व खेतउड्ढी य।
उड्ढीए दव्वपज्जय भजिदव्वा खेत्तकाला हु ॥४१२॥

काल संग चउ वृद्धि हों, थल सँग काल न प्रेम।
द्रव्य भाव सँग नियम नहिं, क्षेत्र काल सँग नेम॥४१२॥

अर्थ–जव काल मे वृद्धि होती है तव चारो (द्रव्यादि) मे वृद्धि

होती है जब क्षेत्र मे वृद्धि होती है तब काल मे वृद्धि होती है और नहीं भी होती है जब द्रव्य मे और भाव मे वृद्धि होती है तब क्षेत्र और काल मे वृद्धि होती है और नही भी होती है किन्तु जब क्षेत्र और काल मे वृद्धि होती है तब द्रव्य और भाव मे वृद्धि अवश्य होती है ॥४१२॥

आगे परमावधि के जघन्य द्रव्य का परिमाण दिखाते है।

देसावहिवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे णियमा।
परमावहिस्स अवरं दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं ॥४१३॥

देशावधि लघु द्रव्य में, ध्रुवहारा का भाग।
परमावधि लघु द्रव्य का, वह फल निपजे जाग ॥४१३॥

अर्थ—देशावधि के उत्कृष्ट द्रव्य के परिमाण मे ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना परमावधि के जघन्य द्रव्य का परिमाण है (उतनी द्रव्यों को जानता है) ॥४१३॥

आगे परमावधि के उत्कृष्ट द्रव्य का परिमाण दिखाते है।

परमावहिस्स भेदा सगउग्गाहणवियप्पहदतेऊ।
चरमे हारपमाणं जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु ॥४१४॥

अग्नि जु संख्या गाहना, गुणो परम के भेद।
अंत भेद ध्रुवहार सम, ज्येष्ठ द्रव्य का छेद ॥४१४॥

अर्थ—अग्निकाय के जीवो की अवगाहना के जितने भेद हैं उनसे अग्निकाय के जीवों की संख्या का गुणा करने से जो संख्या आवे उतने परमावधि के भेद हैं इन भेदो के चरम अन्तिम भेद मे ध्रुवहार के बराबर द्रव्य होते है (उन सबको जानता है) ॥४१४॥

आगे सर्वावधि का विषय परमाणु तक दिखाते है।

सव्वावहिस्स एक्को परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो।
गंगामहाणइस्स पवाहोव्व धुवो हवे हारो ॥४१५॥

परमावधि वर द्रव्य में, भाग दिये ध्रुवहार।
सर्वा-वधि परमाणु तक, लखे गंग जिमि धार ॥४१५॥

अर्थ—परमावधि के उत्कृष्ट द्रव्य के परिमाण मे ध्रुवहार का एकवार भाग देने से एक परमाणु मात्र लब्ध आता है उतना द्रव्य सर्वा-वधि का जघन्य विषय है यह ज्ञान और परमाणु भेद रहित है जैसे गगानदी का प्रवाह हिमवन पर्वत से लेकर लवणसमुद्र तक एकसा वहता है तैसे सर्वा-वधिज्ञान, जघन्य देशावधि के द्रव्य परिमाण से प्रारभ होकर परमावधि के उत्कृष्ट द्रव्य तक देखता हुआ परमाणु पर विश्राम लेता है (एकसा देखता है)॥४१५॥

आगे परमावधि के क्षेत्र और काल के भेदो को दिखाते है।

परमोहिदव्वभेदा जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति।
तस्सेव खेत्तकालवियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ॥४१६॥

परमावधि के द्रव्य से, जितने भेद गिनाय।
उतने क्षेत्र रु काल के, विषय असंख्य गुणाय॥४१६॥

अर्थ—परमावधि के जितने द्रव्य की अपेक्षा भेद है उतने ही भेद क्षेत्र और काल की अपेक्षा से है किन्तु उनका विषय क्रम से असख्यात गुणा अधिक है ॥४१६॥

आगे विषय असख्यातगुणे निकालने की विधि दिखाते है।

आवलिअसंखभागा इच्छिदगच्छधणमाणमेत्ताओ।
देसावहिस्स खेत्ते काले वि य होंति संवग्गे ॥४१७॥

परमावधि के किसी भी, क्षेत्र काल भाग।
जितना कल्पित धन उता, आवलि असंख्य भाग॥१७-१

गुणि रख देशावधी के, थल या क्षण परिमाण।
गुणा करें से परम का, वही भेद पहिचान॥४१७-२॥

अर्थ—परमावधि के किसी क्षेत्र अथवा काल के भेद विषे जितना कल्पित धन का परिमाण है उतनी जगह आवली के असख्यातवें भागो को रखकर फिर उनमें परस्पर गुणा करनेसे जो परिमाण आवे उसका और देशावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र अथवा काल के परिमाण के साथ गुणा करने से परमावधि के उस क्षेत्र अथवा उस काल का परिमाण आता है आगे दोहा न० ४२१ का भी यही आशय है ॥४१७॥

आगे कल्पित धन निकालने की विधि दिखाते है।

गच्छसमा तक्कालियतीदे रूऊणगच्छधणमेत्ता।
उभये वि य गच्छस्स य धणमेत्ता होंति गुणगारा ॥४१८॥

भेद तुल्य तत्काल गत, इक कम भेद सँभार।
उभय भेद का धन जिता, उतना है गुणकार॥४१८॥

अर्थ—परमावधि के जिस भेद का कल्पितधन निकालना हो तो उसकी सख्या को और इसके निकट एक कम सख्या वाले पीछे के भेद का कल्पित धन को जोडने से जो परिमाण आवे वह उस भेद का कल्पित धन है और यही उपरोक्त विधि से उसमे गुणाकार बनता है जैसे चौथे भेद की सख्या चार है इसको और इसके निकट एक कम सख्या वाले पीछे के तृतीय भेद का कल्पित धन छै को जोडने से दश होते है यह उस चौथे भेद का कल्पित धन है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक भेद की सख्या और उसके पीछे के जोडा की सख्या प्रत्येक भेद का कल्पित धन है जैसे एक का कल्पित धन एक ही है कारण इसके पीछे कोई अक नही है दो का कल्पित धन तीन है, तीन का कल्पित धन छै है, चार का कल्पित धन दश है, पॉच का कल्पित धन पन्द्रह है, छै का कल्पित धन इक्कीस है और सात का कल्पित

घन अट्ठाईस है इत्यादि ॥४१८॥

आगे सर्वा-वधि के गुणाकार को दिखाते है।

परमावहिवरखेत्तेणवहिदउक्कस्सओहिखेत्तं तु।

सव्वावहिगुणगारो काले वि असखलोगो दु ॥४१९॥

परमावधि वर क्षेत्र का, ज्येष्ठ अवधि में भाग।

सर्वा-वधि गुणकार है, क्षण असंख्य जग लाग।४१९।

अर्थ—उत्कृष्ट अवधि के क्षेत्र मे परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना सर्वा-वधि के उत्कृष्ट क्षेत्र के परिमाण निकालने के लिये गुणाकार है और सर्वा-वधि के काल का परिमाण निकालने के लिये असख्यात लोक गुणाकार है ॥४१९॥

आगे कल्पित राशिके परिमाण निकालने की विधि दिखाते है।

इच्छिदरासिच्छेदं दिण्णच्छेदेहिं भाजिदे तत्थ।

लद्धमिददिण्णरासीणब्भासे इच्छिदो रासी ॥४२०॥

इच्छ राशि के छेद में, देय छेद का भाग।

लब्ध तुल्य दे राशि रख; गुणे इच्छ फल जाग।४२०॥

अर्थ-किसी कल्पित राशि के अर्धछेदो मे देय राशि (विरलन के ऊपर की सख्या) के अर्ध छेदों का भाग देने से जो लब्ध आवे उतनी जगह देयराशि को रख कर फिर उसमे परस्पर गुणा करने से उस कल्पित राशि का परिमाण निकलता है ॥४२०॥

आगे किसी भी भेद के क्षेत्र और काल का गुणाकार दिखाते है।

दिण्णच्छेदेणवहिदलोगच्छेदेण पदधणे भजिदे।

लद्धमिदलोगगुणण परमावहिचरिमगुणगारो ॥४२१॥

देय छेद का भाग दे, लोक छेद को धार।
लब्ध तुल्य जग रख गुणे, परम अंत गुण कार ॥४२१॥

अर्थ—देयराशि के अर्थ छेदो का लोक के अर्थ छेदो मे भाग देने से जो लब्ध आवे उसका किसी कल्पित धन मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतनी जगह लोक परिमाण को रखकर परस्पर गुणा करने से जो परिमाण उत्पन्न होता है वह उस कल्पित स्थान के क्षेत्र अथवा काल का गुणाकार होता है ऐसा ही परमावधि के अंतिम भेद का गुणाकार है दोहा नं० ४१७ का भी यही आशय था ॥४२१॥

आगे जघन्य देशावधि के भाव का परिमाण दिखाते है।

आवलिअसंखभागा जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया।
कालस्स जहण्णादो असंखगुणहीणमेत्ता हु ॥४२२॥

आवलि असंख्य भाग सम, जघन द्रव्य पर्याय।
जघन काल से भाव का, अगणित गुणि कम आय।२२

अर्थ—काल की अपेक्षा जघन्य देशावधि के द्रव्य की पर्याय का परिमाण आवली के असंख्यातवें भाग बराबर है और इतना ही जघन्य देशावधि के काल का परिमाण है इनसे असख्यात गुणा कम जघन्य देशावधि के भाव का परिमाण है देखो दोहा नं० ३८३ ॥४२२॥

आगे द्रव्य और भाव के भेदो की सख्या समान दिखाते है।

सव्वोहित्ति य कमसो आवलिअसंखभागगुणिदकमा।
दव्वाणं भावाण पदसंखा सरिसगा होंति ॥४२३॥

सर्वा-वधि तक आवली; अगणित भाग गुणाय।
द्रव्य भाव की इसलिये, पद संख्या सम आय ॥४२३॥

अर्थ—देशावधि के जघन्य द्रव्य की पर्याय रूप भाव, जघन्य

देशावधि से परमावधि और सर्वा-वधि तक सब भेदो मे आवली के असख्यातवे भाग से गुणित क्रम है इस कारण द्रव्य और भाव के भेदो की सख्या समान है भावार्थ—जहा पर देशावधि का द्रव्य की अपेक्षा जघन्य भेद है वहा पर भाव की अपेक्षा भी आवली के असख्यातवे भाग बराबर जघन्य भेद होता है और जहा पर द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेद है वहा पर भाव की अपेक्षा भी प्रथम भेद से आवली के असख्यातवेभाग गुणा दूसरा भेद होता है इस ही क्रम से सर्वा-वधि तक जानना अवधिज्ञान के द्रव्य की अपेक्षा जितने भेद है उतने ही भाव की अपेक्षा से है इसलिये द्रव्य और भाव के भेदो की सख्या समान हे ॥४२३॥

आगे नरक मे अवधि क्षेत्र का परिमाण दिखाते है।

सत्तमखिदिम्मि कोसं कोसस्सद्धं पवड्ढदे ताव।
जाव य पढमे णिरये जोयणमेक्कं हवे पुण्णं ॥४२४॥

अवधि क्षेत्र सप्तम नरक, एक कोस का मान।
आधा आधा बढि प्रथम, इक योजन का जान ॥४२४॥

अर्थ—सातवे नरक मे एक कोस का, छट्टे नरक मे डेड कोस का पाचवे नरक मे दो कोस का, चौथे नरक मे अढाई कोस का, तीसरे नरक मे तीन कोस का, दूसरे नरक मे साढे तीन कोस का, और पहिले नरक मे एक योजन का अवधिज्ञान का क्षेत्र है ॥४२४॥

आगे मनुष्य और पशुओ की अवधि का परिमाण दिखाते है।

तिरिये अवरं ओघो तेजोयंते य होदि उक्कस्सं।
मणुए ओघं देवे जहाकमं सुणह वोच्छामि ॥४२५॥

तिर्यंग गति में जघन से, तैजस तक वर मान।
मनुष विषें उत्कृष्ट तक, सुर में सुनो बखान ॥४२५॥

अर्थ—तिर्यंचगति मे अवधिज्ञान का क्षेत्र जघन्य देशावधि से लेकर अधिक से अधिक जो अवधिज्ञान तैजस शरीर को विषय करता है वहा तक हो सकता है मनुष्यगति मे अवधिज्ञान, जघन्य देशावधि से लेकर सर्वा-वधि के विषय तक हो सकता है और देवो के अवधि, ज्ञान के क्षेत्र का वर्णन भिन्न २ प्रकार आगे करते हैं ॥४२५॥

आगे भवनत्रक मे अवधि का जघन्य क्षेत्र काल दिखाते है।

पणुवीसजोयणाइं दिवसंतं च य कुमारभोम्माणं ।
संखेज्जगुणं खेत्तं बहुगं कालं तु जोइसिगे ॥४२६॥

पच्चिस योजन क्षेत्र क्षण, कम दिन भवनरु व्यान ।
संख्य गुणा थल ज्योतिषी, काल अवधि बहु जान ।४२६।

अर्थ – भवनवासी और व्यन्तर देवो के अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र पच्चीस योजन है और जघन्य काल कुछ कम एक दिन है तथा ज्योतिषियो का अवधिज्ञान का जघन्यक्षेत्र उनसे संख्यात गुणा अधिक है और जघन्य काल भी उनसे बहुत अधिक है ॥४२६॥

आगे भवनत्रक मे अवधि का उत्कृष्ट क्षेत्र दिखाते हैं।

असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोइसंताणं ।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सोहीण विसओ दु ॥४२७॥

असुरों का उत्कृष्ट थल, योजन कोटि असंख्य ।
शेषों का ज्योतिष तलक, योजन सहस असंख्य ॥४२७॥

अर्थ—असुरकुमारजाति के भवनवासी देवो के अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात किरोड़ योजन है और शेष भवनवासी, व्यतर और ज्योतिषी देवो के अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात हजार योजन है ॥४२७॥

आगे भवनत्रक मे अवधि का उत्कृष्ट काल दिखाते है।

असुराणमसंखेज्जा वस्सा पुण सेसजोइसंताण ।
तस्संखेज्जदिभागं कालेण य होदि णियमेण ॥४२८॥

असुरों का उत्कृष्ट क्षण,' वर्ष असंख्ये चीन ।
उनसे शेष रु ज्योति तक, भाग असंख्ये हीन ॥४२८॥

अर्थ—असुरकुमारजाति के भवनवासी देवो के अवधिज्ञान का काल असख्यात वर्ष है और शेप भवनवासी, व्यतर और ज्योतिषी देवो के अवधिज्ञान का काल उनसे असख्यातवे भाग कम है ॥४२८॥

आगे भवनत्रक की अवधि की शक्ति दिखाते है ।

भवणतियाणमधोधो थोवं तिरियेण होदि वहुगं तु ।
उड्ढेण भवणवासी सुरगिरिसिहरोत्ति पस्संति ॥४२६॥

अधो हीण तिर्यग अधिक, ऊर्ध मेरु पर्यंत ।
देखें निज निज थान से, भवनत्रक वलवंत ॥४२६॥

अर्थ—भवनवासी, व्यतर और ज्योतिपी देव अवधिज्ञान से नीचे की ओर कम देखते है तिर्यग की ओर अधिक देखते है और उर्ध की ओर सुदंशमेरु की शिखर तक देखते है ॥४२६॥

आगे सौधर्म से सहस्रार तक अवधि की शक्ति दिखाते है ।

सक्कीसाणा पढमं विदिय तु सणक्कुमारमाहिंदा ।
तदियं तु वम्हलांतव सुक्कसहस्सारया तुरियं ॥४३०॥

प्रथम युगल भू प्रथम तक, दुतिय युगल भू दोय
तृतिय चार भू तृतिय तक, पन छै चौथी जोय ।४३०।

अर्थ—सौधर्म और ईसान स्वर्ग के देव अवधिज्ञान से प्रथम नरक तक देखते है । सनत्कुमार और महेन्द्र स्वर्ग के देव अवधिज्ञान से

दूसरे नरक तक देखते हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ स्वर्ग के देव अवधिज्ञान से तीसरे नरक तक देखते हैं। शुक्र, महाशुक्र, सतार और सहस्रार स्वर्ग के देव अवधिज्ञान से चौथे नरक तक देखते हैं ॥४३०॥

आगे आनतसे ग्रैवेयक तक अवधि की शक्ति दिखाते हैं।

आणदपाणदवासी आरण तह अच्चुदा य पस्संति।
पंचमखिदिपरंत छट्ठिं गेवेज्जगा देवा ॥४३१॥

आनत से अच्युत तलक, पंचम भू तक मान।
ग्रैवक वासी देव सब, लखें छठी तक जान ॥४३१॥

अर्थ—आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्ग के देव अवधिज्ञान से पांचवें नरक तक देखते हैं और ग्रैवेयकवासी देव अवधिज्ञान से छटवें नरक तक देखते हैं ॥४३१॥

आगे अनुदिशादिक की अवधि की शक्ति दिखाते हैं।

सव्वं च लोयणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा।
सक्खेत्ते य सकम्मे रूवगदमणंतभागं च ॥४३२॥

त्रसनाली तक देखते, अनुदिश आदिक मान।
इक कम स्वथलहिं द्रव्य का भाग द्रव्य परिमाण ॥४३२॥

अर्थ—अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धि के देव अवधिज्ञान से नीचे की ओर अपने अपने स्थान से त्रसनाली तक देखते हैं और ऊपर की ओर अपने अपने विमान की ध्वजा तक देखते हैं उनकी अवधिज्ञान के क्षेत्र के जितने प्रदेश हैं उनमें इधर तो एक एक प्रदेश कम करते जाना चाहिये उधर अवधिज्ञानावरणी कर्म के जितने परमाणु होते हैं उनमें ध्रुव-हार का भाग तबतक देते जाना चाहिए तबतक उपरोक्त क्षेत्र के प्रदेश शेष रहें उसके पश्चात् जो परमाणु शेष रहें उतना परिमाण

उनके अवधिज्ञान के द्रव्य का है ॥४३२॥

आगे उपरोक्त आशय को ही स्पष्ट दिखाते है।

कप्पसुराणं सगसगओहीखेत्तं विविस्ससोवचयं।
ओहीदव्वपमाणं संठाविय धुवहरेण हरे ॥४३३॥

सगसगखेत्तपदेससलायपमाणं समप्पदे जाव।
तत्थतणचरिमखंड तत्थतणोहिस्स दव्वं तु ॥४३४॥

कल्पसुरों की अवधि का, जितना निज-निज थान।
विनविस्रस उपचय अवधि, द्रव्य राशि को ठान ।४३३॥

ध्रुवहारा का भाग दे, जब तक क्षेत्र प्रदेश।
अंत खंड बाकी वचे, जाने अवधि अशेष ॥४३४॥

अर्थ—कल्पवासी देवो मे अपने २ अवधिज्ञान के प्रदेशो का जितना परिमाण है उसको एक जगह रखकर और दूसरी जगह विस्रसोपचय रहित अवधिज्ञानावरणी कर्म के परमाणुओ का जितना परिमाण है उसे रखकर इसमे ध्रुवहार का भाग देकर उस अपने २ अवधिज्ञान के क्षेत्र के प्रदेश परिमाण मे एक प्रदेश कम करके फिर दूसरी वार उस लब्ध मे भाग देकर उस अपने २ अवधिज्ञान के क्षेत्र के परिमाण मे एक प्रदेश कम कर फिर तीसरी वार उस लब्ध मे भाग देना चाहिये इस प्रकार भाग देते २ और एक एक उस प्रदेश परिमाण मे कम करते २ जब वह सब प्रदेश परिमाण समाप्त हो जावे तब जितना परमाणुओ का परिमाण शेप रहे उतने स्कधो को अपने अपने अवधिज्ञान के द्वारा वे कल्पवासी देव देखते है ॥४३३—४३४॥

आगे सौधर्मादिक के अवधि का काल दिखाते है।

सोहम्मीसाणाणमसंखेज्जाओ हु वस्सकोडीओ।
उवरिमकप्पचउक्के पल्लासंखेज्जभागो दु ॥४३५॥

तत्तो लांतवकप्पप्पहुदी सव्वत्थसिद्धिपेरंत ।
किंचूणपल्लमेत्तं कालपमाण जहाजोग्गं ॥४३६॥

सौधर्म रु ईसान में, वर्ष असंख्य किरोड़ ।
पल्य असंख्ये भाग है, परें स्वर्ग चउजोड़ ॥४३५॥
लांतव आदि विमान से, उप सर्वारथ सिद्धि ।
एक पल्य से हीन कुछ, अवधी काल प्रसिद्धि ॥४३६॥

अर्थ-सौधर्म और ईसान स्वर्ग के देवो के अवधिज्ञान का काल असख्यात किरोड वर्ष है सनत्कुमार, महेन्द्र, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के देवो के अवधिज्ञान का काल यथायोग्य पल्य के असख्यातवे भाग है और लातव से सर्वार्थसिद्धि तक के देवो के अवधिज्ञान का काल कुछ कम एक पल्य है अर्थात कुछ कम एक पल्य तक की बातो को जानते है ॥४३५-४३६॥

आगे उनके अवधिज्ञान के क्षेत्र का विस्तार दिखाते है ।

जोइसियंताणोहीखेत्ता उत्ता ण होंति घणपदरा ।
कप्पसुराण च पुणो विसरित्थं आयदं होदि ॥४३७॥

अवधि क्षेत्र घन रूप नहिं, भवनत्रक सुर ऊप ।
चौडा कम लम्बा अधिक, शेषों का घन रूप ॥४३७॥

अर्थ—भवनवासी, व्यतर और ज्योतिषी देवो के अवधिज्ञान का क्षेत्र घन रूप नही है कल्पवासी देवो के अवधिज्ञान का क्षेत्र चौडाई मे कम और लम्बाई मे अधिक है और शेषो (मनुष्य, तिर्यंच, नारकी) के अवधिज्ञान का क्षेत्र घन (चोकोर) रूप है ॥४३७॥

आगे मनपर्ययज्ञान का स्वरूप दिखाते है ।

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णरलोए ॥४३८॥

चिंता चिंतेगा तथा, अध चिंता बहु थोक।
मन की मन पर्यय लखे, हद जिसकी नरलोक।४३८।

अर्थ–किसी जीव ने कोई वात भूत काल मे विचारी थी उसको जो जानता है भविष्य मे कोई वात विचारेगा उसको जो जानता है और वर्तमान मे कोई वात को पूर्ण रूप से विचार नही कर पाया तो भी पूर्ण वात को जो जानता है उसको मनपर्ययज्ञान कहते है यह ज्ञान मनुष्य लोक तक की वात को जानता है ।।४३८।।

आगे मनपर्ययज्ञान के भेद प्रभेद दिखाते है ।

मणपज्जवं च दुविहं उजुविउलमदित्ति उजुमदी तिविहा ।
उजुमणवयणे काए गदत्थविसयात्ति णियमेण ।।४३९।।

मनपर्यय के भेद द्वय, ऋजु अरु विपुल प्रधान ।
ऋजु मन वचतन भेद त्रय, अर्थ विषय इकजान ४३९

अर्थ--सामान्य से मनपर्ययज्ञान एक प्रकार का है भेद दृष्टि से मुख्य दो भेद है ऋजमति और विपुलमति । पर के मन, वचन और काय की क्रिया को जानता है इसलिए ऋजुमति के तीन भेद भी होते है किन्तु सरल विपय को ही जानता है ।।४३९।।

आगे विपुलमति के भेद दिखाते है ।

विउलमदीवि य छद्धा उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं ।
अत्थं जाणदि जम्हा सद्दत्थगया हु ताणत्था ।।४४०।।

सरल काय मन वचन अरु, कुटिल वचन मन काय।
लखे भेद छै विपुल मति, अर्थ शब्द विषयाय ।।४४०।।

अर्थ—दूसरे के मन मे सरल मन की वात हो, सरल वचन की वात हो, सरलकाय की वात हो, कुटिल मन की वात हो, कुटिल

वचन की बात हो और कुटिल काय की बात हो उसको जानता है इस कारण से विपुलमतिमनपर्ययज्ञान के छे भेद होते है ॥४४०॥

आगे ऋजु और विपुलमति मे अतर दिखाते है ।

तियकालविसयरूविं चितितं वट्टमाणजीवेण ।

उजुमदिणाणं जाणदि भूदभविस्सं च विउलमदी ॥४४१

मूर्त विषय त्रैकाल गत, चिंते कोई जीव ।

ऋजु जाने अरु विपुल मति, गत आगत युत जीव ४४१

अर्थ—कोई जीव वर्तमान मे तीन काल सम्बन्धी पुद्गलीक द्रव्य का चितवन कर रहा हो उसको ऋजुमति मनपर्ययज्ञान जानता है और भूतकाल मे चिता था, भविष्य मे चितेगा अथवा वर्तमान मे चितवनकर रहा है उस सब को विपुलमतिमनपर्ययज्ञान जानता है ॥४४१॥

आगे मनपर्ययज्ञान की उत्पत्ति का स्थान दिखाते है ।

सव्वंगअंगसंभवचिण्हादुप्पज्जदे जह ओही ।

मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा ॥४४२॥

यथा अवधि शंखादि शुभ, चिन्हों से उपजाय ।

तैसे मनपर्यय उपज, जहां द्रव्य मन थाय ।४४२।

अर्थ—जैसे अवधिज्ञान शखादि शुभ चिन्हो के साथ सब अग से उपजता है वैसे मनपर्ययज्ञान जहा द्रव्य मन होता है वहा के आत्म प्रदेशो मे उपजता है ॥४४२॥

आगे द्रव्य मन के उपजने का स्थान दिखाते है ।

हिदि होदि हु दव्वमणं वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा ।

अंगोवंगुदयादो मणवग्गणखंधदो णियमा ॥४४३॥

अंगोपांग सु उदय से, मनो वर्गणा द्वार।
हृदय थान से द्रव्य मन, उपजे कमलाकार ।४४३॥

अर्थ—आगोपाग नाम कर्म के उदय से और मनोवर्गणा के स्कधो द्वारा हृदय स्थान से द्रव्य मन उत्पन्न होता है जोकि कमल के आकार होता है कैसे कमल के आकार है वह मन जिस की आठो पाखुडी-(कली) खिली हो ॥४४३॥

आगे मन वाले के मनपर्ययज्ञान सभव दिखाते हैं।

णोइंदियत्ति सण्णा तस्स हवे सेसइंदियाणं वा ।
वत्तत्ताभावादो मणमणपज्जं च तत्थ हवे ॥४४४॥

मन को नो इन्द्रिय कहें, व्यक्त न इन्द्रिय रूप ।
जहां द्रव्य मन वहां मन, अरु मनपर्यय नूप ॥४४४॥

अर्थ—इस द्रव्यमन का नोइन्द्रिय भी नाम है कारण दूसरी इन्द्रियो की तरह यह दिखने मे नही आता इसके होने पर ही भावमन होता है और भावमन के होने पर मनपर्ययज्ञान भी हो सकता है ॥४४४॥

आगे सयमी ऋद्धिधारी के मनपर्ययज्ञान दिखाते है।

मणपज्जवं च णाणं सत्तसु विरिदेसु सत्तइड्ढीणं ।
एगादिजुदेसु हवे वड्ढंतविसिट्ठचरणेसु ॥४४५॥

प्रमतादिक में कोइ इक, ऋद्धि सात में कोय ।
बढता अनुपम चरण जहँ, तहँ मनपर्यय होय॥४४५॥

अर्थ—प्रमत्तादिक से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक मे से किसी एक गुणस्थान वाले के मनपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है इस पर भी सातऋद्धियो मे से कम से कम कोई एक ऋद्धि धारी के मनपर्ययज्ञान

उत्पन्न होता है इस पर भी बढते हुए अनुपम चारित्रधारी के मन-पर्ययज्ञान उत्पन्न होता है ॥४४५॥

सात ऋद्धियां—बुद्धिऋद्धि, तपऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, औषधऋद्धि, रसऋद्धि, बलऋद्धि और अक्षीणऋद्धि।

आगे इन्द्रियादि के आश्रय ऋजुमति को दिखाते हैं।

इंदियणोइंदियजोगादिं पेक्खित्तु उजुमदी होदि।
णिरवेक्खिय विउलमदी ओहिं वा होदि णियमेण ॥४४६॥

इन्द्रिय मन योगादि की, दृष्टि राख ऋजु होय।
निरापेक्ष है विपुलमति, अवधि नियम वत् जोय ॥४४६॥

अर्थ—ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान अपनी अथवा पर की पाच इन्द्रिय, मन, वचन अथवा काय की क्रिया से उत्पन्न होता है और विपुल-मतिमनपर्ययज्ञान अवधिज्ञान की तरह किसी की अपेक्षा नही रखता स्वयमेव उत्पन्न होता है ॥४४६॥

आगे ऋजुमति को पतन सहित दिखाते हैं।

पडिवादी पुण पढमा अप्पडिवादी हु होदि विदिया हु।
सुद्धो पढमो बोहो सुद्धतरो विदियबोहो दु ॥४४७॥

पतन सहित इक ऋजुमती, विपुल पतन बिन मान।
शुद्ध ऋजू अरु विपुलमति, ऋजु से शुद्ध पिछान ॥४४७॥

अर्थ—ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान शुद्ध है किन्तु पतन (विनाश) सहित है और विपुलमतिमनपर्ययज्ञान ऋजुमतिमनपर्यय से अधिक शुद्ध है और पतन (विनाश) रहित है ॥४४७॥

आगे ऋजुमति को ईहामतिज्ञान के आधार दिखाते हैं।

परमणसिट्ठियमट्ठं ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय।
पच्छा पच्चक्खेण य उजुमदिणा जाणदे णियमा ॥४४८॥

ऋजु धर पर मन बात को, जाने ईहा धार।
पीछे जाने प्रकटकर, ऋजुमति के आधार ॥४४८॥

अर्थ—ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान का धारी मुनि दूसरे के मन की वात को पहिले ईहामतिज्ञान को धारण करके जानता है पश्चात् ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान को धारण करके उसी वात को प्रत्यक्ष रूप से जानता है ॥४४८॥

आगे विपुलमति को स्वतत्र दिखाते है।

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं।
ओहिं वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा ॥४४९॥

चिन्ता चिन्तेगा तथा, अध चिन्ता बहुराश।
अवधि रीति से विपुल मति, जाने तज पर आश।४४९।

अर्थ—किसी पुरुष ने अपने मन मे पूर्व कोई वात विचारी थी, आगे विचारेगा अथवा वर्तमान मे विचार रहा है। इस प्रकार अनेक भेद वाली वातो को विपुलमतिमनपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान की तरह विना ईहामतिज्ञान के प्रत्यक्ष रूप से जानता है ॥४४९॥

आगे मनपर्ययज्ञान का विषय रूपी तक सीमित दिखाते है।

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि जीवलक्खियं रूवि।
उजुविउलमदी जाणदि अवरवरं मज्झिम च तहा॥४५०

द्रव्य चेत्र क्षण भाव से, मूर्त मूर्त मय जीव।
जाने ऋजु अरु विपुल मति, मध्य बराबर छोव ॥४५०॥

अर्थ—ऋजुमति और विपुलमतिमनपर्ययज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से रूपी (पुद्गल) द्रव्य को जानते है और उससे सम्वन्धित जीव द्रव्य को भी जानते है ॥४५०॥

आगे ऋजुमति के जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्य का मान दिखाते है ।

अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयवद्धं तु ।
चक्खिंदियणिज्जण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ॥४५१

जघन द्रव्य औदारिका, समय - प्रवद्ध निर्जीर्ण
वर ऋजु मति दृग इन्द्रिया, समय-प्रवद्ध निर्जीर्ण॥४५१

अर्थ—जितने औदारिक शरीर के परमाणु एक समय मे निर्जरा को प्राप्त होते है उतनी वरावर स्कधो को ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान के जघन्य द्रव्य का परिमाण है अर्थात एक समय प्रवद्ध मे जितने परमाणु होते है उतने स्कधों को जानता है और जितने एक समय मे चक्षु इन्द्रिय के परमाणु निर्जरा को प्राप्त होते है उनके वरावर उत्कृष्ट पने मे जानता है अर्थात् उत्कृष्ट द्रव्य का परिमाण है ॥४५१॥

आगे विपुलमति के जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्य का मान दिखाते है ।

मण दव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं ।
खंडिदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्वं ॥४५२॥

मनो द्रव्य वर्गणा के, अमित भाग में एक ।
ऋजू द्रव्य वर भाग दे, विपुल द्रव्य लघु नेक ॥४५२॥

अर्थ—मनोद्रव्य वर्गणा के जितने भेद है उनमे अनत का भाग देने मे जो लब्ध आवे उसमे एक भाग वरावर मनपर्ययज्ञान के ध्रुवहार का परिमाण है इस ध्रुवहार का ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान के उत्कृष्ट द्रव्यपरिमाण मे भाग देने से जो लब्ध आवे उतने परमाणुओ के द्रव्यस्कध को विपुलमतिमनपर्ययज्ञान जघन्यता से जानता है अर्थात् जघन्य द्रव्य का परिमाण है ॥४५२॥

आगे विपुलमति के दूसरे द्रव्य का परिमाण दिखाते है ।

अट्ठण्हं कम्माणं समयपबद्धं विविस्सोवचयं ।
धुवहारेणिगिवारं भजिदे विदियं हवे दव्वं ॥४५३॥

समय बद्ध अठ कर्म के, विस्रस-उपचय हीन।
एक बार ध्रुवहार का, भाग द्रव्य दो चोन ॥४५३॥

अर्थ—जितना विस्रोपचय (आशावानकर्म) रहित आठ कर्मो का परिमाण है उसमे एक वार ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना विपुलमतिमनपर्ययज्ञान के द्वितीय द्रव्य का परिमाण है ॥४५३॥

आगे विपुलमति के उत्कृष्ट द्रव्य का परिमाण दिखाते है।

तव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं।
धुवहारेणवहरिदे होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ॥४५४॥

जिते समय अगणित कलप, दुतिया में उत वार।
ध्रुवहारा का भाग दे, ज्येष्ट द्रव्य उर धार ॥४५४॥

अर्थ—जितने असख्यात कल्पकालो के समय है उतनी वार विपुलमति के दुतीयद्रव्य मे ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने परमाणुओ के स्कधो को विपुलमतिमनपर्ययज्ञान उत्कृष्ट पने से जानता है अर्थात् उतना उत्कृष्ट द्रव्य का परिमाण है ॥४५४॥

आगे ऋजु और विपुलमति का क्षेत्र दिखाते है॥

गाउयपुधत्तमवरं उकस्सं होदि जोयणपुधत्त।
विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥४५५॥

ऋजु लघु दो त्रय कोस अरु, वर योजन अठ सात।
अठनव योजन लघु विपुल, वर नर थल विख्यात।४५५।

अर्थ—ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान का जघन्य क्षेत्र दो अथवा तीन कोस है और उत्कृष्ट सात अथवा आठ योजन है तथा विपुलमतिमनपर्यय का जघन्य क्षेत्र आठ अथवा नव योजन है और उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्य

लोक बराबर है ॥४५५॥

आगे मनुष्यलोक का आशय स्पष्ट दिखाते है।

णरलोएत्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स ।
जम्हा तग्घणपदर मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं ॥४५६॥

नर थल ऐसे शब्द से, चौडाई या घेर।
उसका फल पैतालिसा, लख योजन चौफेर ॥४५६॥

अर्थ—जो ऊपर विपुलमतिमनपर्ययज्ञान का उत्कृष्टक्षेत्र मनुष्य लोक कहा था उसमें मनुष्यलोक के बराबर गोल समझना चाहिये अथवा चौकोर इस शंका का समाधान यह है कि मनुष्यलोक ४५ लाख योजन लम्बा और चौड़ा गोल है और विपुलमतिमनपर्ययज्ञान ४५ लाख योजन लम्बा और चौडा चौकोर है कारण चारो कोनो मे स्थिति देव और तिर्यंचो के मन की बात भी विपुलमतिमनपर्यय-ज्ञान जानता है ॥४५६॥

आगे ऋजुमति और विपुलमति के काल का परिमाण दिखाते है।

दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं ।
अडणवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ॥४५७॥

दोय तीन भव ऋजु अवर, सात आठ भव पाग।
अठ नव भव लघु विपुल वर, पल्य असंख्ये भाग।४५७।

अर्थ—ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान जघन्य काल की अपेक्षा दो अथवा तीन भवो को जानता है और उत्कृष्ट सात अथवा आठ भवो को जानता है तथा विपुलमतिमनपर्ययज्ञान जघन्य काल की अपेक्षा आठ अथवा नव भवो को जानता है और उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवे भाग बराबर भवो को जानता है ॥४५७॥

आगे ऋजु और विपुल के भाव का परिमाण दिखाते है।

आवलिअसंखभागं अवरं च वरं च वरमसंखगुणं ।
तत्तो असंखगुणिद असंखलोगं तु विउलमदी ॥४५८॥

आवलि असंख्य भाग लघु, अगणित गुणि ऋजु ज्येष्ट ।
उस असंख्य गुणि लघु विपुल, जग असंख्य सम ज्येष्ठ ५८

अर्थ—ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान जघन्य और उत्कृष्ट भाव की अपेक्षा आवली के असख्यातवे भाग वरावर द्रव्यो की पर्यायो (भावो) को जानता है किन्तु फिर भी जघन्य से उत्कृष्ट असख्यात गुणा है और विपुलमतिमनपर्ययज्ञान जघन्यभाव की अपेक्षा ऋजुमतिमनपर्ययज्ञान के उत्कृष्ट परिमाण से असख्यात गुणा अधिक द्रव्यो की पर्यायो (भावो) को जानता है और उत्कृष्ट पने से असख्यातलोक वरावर द्रव्यो की पर्यायो (भावो) को जानता है ॥४५८॥

आगे मनपर्ययज्ञान के मध्य भेदो को दिखाते है ।

मज्भिमदव्वं खेत्तं कालं भावं च मज्भिम णाणं ।
जाणदि इदि मणपज्जवणाणं कहिदं समासेण ॥४५६॥

द्रव्य क्षेत्र क्षण भाव के, मध्य भेद जो कोय ।
मध्य भेद जाने उन्हें, ऐसा जानो जोय ॥४५६॥

अर्थ—जो ऊपर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जघन्य और उत्कृष्ट परिमाण वनलाया था उनके मध्य मे जितने भेद है उन सवको मनपर्ययज्ञान के मध्य भेद जानते है इस प्रकार मनपर्ययज्ञान का सक्षेप वर्णन हुआ ॥४५६॥

आगे केवलज्ञान का स्वरूप दिखाते है ।

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं ।
लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं ॥४६०॥

इन्द्रिय विन बाधा रहित, युगपद् सब को मान।
लोकालोकहिं भ्रमरहित, जाने केवल ज्ञान ॥४६०॥

अर्थ—जो पांच इन्द्रियों के विना, बाधारहित, एक साथ सब द्रव्यों को अर्थात् लोकालोक को संशय रहित जानता है उसको केवलज्ञान कहते हैं ॥४६०॥

आगे अवधि को छोड़ शेष सम्यक् ज्ञानियों की संख्या दिखाते हैं।

चदुगदिमदिसुदबोहा पल्लासंखेज्जया हु मणपज्जा।
संखेज्जा केवलिणो सिद्धादो होंति अतिरित्ता ॥४६१॥

पल्य असंख्ये भाग हैं, चहुँ गति मति श्रुत वान।
सिद्ध रु जिन मिलि केवली, मन पर्यय संख्यान ॥४६१॥

अर्थ—सुमति और सुश्रुतज्ञान के धारी पल्य के असंख्यातवे भाग हैं मनःपर्ययज्ञान के धारी संख्यात हैं सिद्ध और अरहन्त राशि के बराबर केवलज्ञान के धारी हैं ॥४६१॥

आगे सुअवधि ज्ञानियों की संख्या दिखाते हैं।

ओहिरहिदा तिरिक्खा मदिणाणि असंखभागगा मणुगा।
संखेज्जा हु तदूणा मदिणाणी ओहिपरिमाणं ॥४६२॥

अवधि रहित पशु हीन हैं, मति से असँख्य भाग।
अवधि रहित नर संख्य युत, मति में कम वधि जाग ॥४६२॥

अर्थ—अवधिज्ञान से रहित तिर्यंचों की संख्या सुमतिज्ञान के धारियों की संख्या से असंख्यातवें भाग कम है और अवधिज्ञान से रहित मनुष्यों की संख्या संख्यात है इन दोनों संख्याओं को सुमतिज्ञान के धारियों की संख्या में कम करने पर जो संख्या शेष रहे उतने सुअवधिज्ञान के धारी जीव हैं ॥४६२॥

आगे कुअवधिज्ञानियो की सख्या दिखाते है।

पल्लासंखघणंगुलहदसेढितिरिक्खगदिविभंगजुदा ।
णरसंहिदा किंचूणा चदुगदिवेभंगपरिमाणं ॥४६३॥

पल्य असंख्ये भाग से, गुणित घनांगुल और ।
जग श्रेणी का गुणा कर, उतने त्रिभंग ढोर ।६३-१।
सुर नारक की राशि में, सम्यक् ज्ञानी छोड़ ।
संख्य मनुष सख्या मिलें, चहुँ गति विभंग जोड़॥६३-२॥

अर्थ—पल्य के असख्यातवे भाग से गुणित घनांगुल मे जगत्श्रेणी का गुणा करने से जो सख्या उत्पन्न हो उतने तिर्यच कुअवधिज्ञान के धारी है देव और नारकियो की सख्या मे सम्यक्ज्ञान के धारी देव और नारकियो को कम करने से जो सख्या शेप रहे उतने देव और नारकी कुअवधिज्ञान के धारी है और मनुष्य सख्यात कुअवधि-ज्ञान के धारी है इन चारो के वरावर सव कुअवधिज्ञान के धारियो का परिमाण है ॥४६३॥

आगे कुमति और कुश्रुतज्ञानियों की सख्या दिखाते है।

सण्णाणरासिपंचयपरिहीणो सव्वजीवरासी हु ।
मदिसुदअण्णाणीणं पत्तेयं होदि परिमाणं ॥४६४॥

सत ज्ञानी की राशि पन, जीव राशि में छोड़ ।
मति श्रुत अज्ञानी उते, चारों गति के जोड ॥४६४॥

अर्थ—पाच प्रकार के सम्यक् ज्ञानियो (सुमति, सुश्रुत, सुअवधि, मनपर्यय, केवल) की सख्या को सव जीव सख्या मे कम करने से जो सख्या शेप रहे उतने कुमति और कुश्रुतज्ञान के धारी जीव है ॥४६४॥

॥ ज्ञानमार्गणाधिकार समाप्त ॥

आगे व्यवहार नय से सयम का स्वरूप दिखाते है।

वदसमिदिकसायाणं दडाण तहिंदियाण पंचण्हं।
धारणपालणणिग्गहचागजओ सजमो भणिओ ॥४६५॥

व्रत धर पाले समितियां, इन्द्रिय विजय कषाय।
दंडे मनवच काय को, सो संयम कहलाय॥४६५॥

अर्थ—जो पाच महाव्रतो को धारण करके पाच समितियो का पालन करता है पाच इन्द्रियो के विषय को जीतता है चार कषायो (क्रोधादि) को कम करता है और मन, वचन तथा काय के व्यापारो को रोकता है उसके उस आचरण को व्यवहार नय से सयम कहते है ॥४६५॥

आगे निश्चय नय से सयम का स्वरूप दिखाते है।

बादरसंजलणुदये सुहुमुदये समखये य मोहस्स।
संजमभावो णियया होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥४६६॥

उदय थूल संज्वलन या, उदय जु सूक्षम लोभ।
उपशम या क्षय मोह से, निश्चय संयम सोभ ॥४६६॥

अर्थ—जो बादर सज्वलन चौकडी के उदय से, सूक्ष्मसज्वलन-चौकडी के उदय से, सूक्ष्मलोभ के उदय से, मोहनीकर्म के उपशम से अथवा मोहनीकर्म के समूल क्षय से सयम होता है उसको निश्चय नय से सयम कहते है ॥४६६॥

आगे उपरोक्त स्थानो मे सामायिकादि सयम दिखाते है।

बादरसंजलणुदये बादरसजमतियं खु परिहारो।
पमदिदरे सुहुमुदये सुहुमो संजयगुणो होदि ॥४६७॥

जहखादसंजमो पुण उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।
खयदो वि य सो णियमा होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८॥

छट्ठे से नववें तलक, सामायिक अरु छेद ।
परिहारा प्रमताप्रमत, दशवें सूक्षम भेद ॥४६७॥
पूरण उपशम मोह जब, यथाख्यात तब होय ।
या पूरण क्षयमोह जब, यथा ख्यात तब होय ॥४६८॥

अर्थ—प्रमत्त से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक सामायिक अथवा छेदोपस्थापनासयम होता है प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान मे परिहारविशुद्धिसयम हो सकता है सूक्ष्मसापराय गुणस्थान मे सूक्ष्म-सापरायिक सयम होता है और सब मोहकर्म के उपशम अथवा क्षय से यथाख्यातसयम होता है ॥४६७–४६८॥

आगे सयमासयम और असयम का स्वरूप दिखाते है ।

तदियकसायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।
विदियकसायुदयेण य असजमो होदि णियमेण ॥४६९॥

प्रत्यख्यान के उदय से, विरताविरत बखान ।
उदय अप्रत्य-ख्यान के, संयम भाव न जान ॥४६९॥

अर्थ—जीव के प्रत्याख्यानावरणी कषाय के उदय से सयमा-सयम होता है और अप्रत्याख्यानावरणीकषाय के उदय से असयम (कथचित् सयम कथचित् असयम) भाव होता है ॥४६९॥

आगे सामायिकसयम का स्वरूप दिखाते है ।

संगहिय सयलसजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजमो होदि ॥४७०॥

सब हिंसा को त्याग कर, महाव्रतों को धार।
सामायिक संयम कहा, उस व्रत धर के सार।४७०।

अर्थ—जो सब प्रकार की हिसा का त्याग कर महाव्रतो को धारण कर लेता है उसके सामायिकसयम होता है ॥४७०॥

आगे छेदोपस्थापनासयम का स्वरूप दिखाते है।

छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं।
पचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो ॥४७१॥

व्रत छेदे अव्रत गहे, फिर व्रत धारे कोय।
सो छेदोपस्थापना, उस व्रत धर के होय ॥४७१॥

अर्थ—जो महाव्रतो को छोडकर फिर अव्रत (हिंसादि) मे लग जाता है उसके पश्चात् फिर प्रायश्चित विधि के अनुसार दुबारा महाव्रतो को स्वीकार करता है उसके छेदोपस्थापनासयम होता है ॥४७१॥

आगे परिहारविशुद्धिसयम का स्वरूप दिखाते है।

पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदावि जो हु सावज्जं।
पंचेक्कजमो पुरिसो परिहारयसंजदो सो हु ॥४७२॥

पन समिती त्रय गुप्ति धर, हिंसा को नित टार।
सो परिहार विशुद्धि धर, वह व्रत धर निरधार ॥४७२॥

अर्थ—जो सयमी पाच समिति और तीन गुप्तियो को धारण करके सब प्रकार की हिसा के दोषो से दूर रहता है उसके परिहार-विशुद्धिसयम होता है ॥४७२॥

आगे उसी आशय को और दिखाते है।

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले ।
पच्चक्खाणं पढिदो संभूणदुगाउयविहारो ॥४७३॥

तीस वर्ष घर वास कर, आठ वर्ष जिन राय ।
त्याग पढे दो कोस तक, तज संध्या गमनाय ॥४७३॥

अर्थ–जो जन्म से तीस वर्ष तक घर मे सुखी रहकर पश्चात् दीक्षा ग्रहण कर तीर्थकर के पादमूल मे आठ वर्ष तक रहकर त्यागपूर्व श्रुत को पढ लेता है उसके परिहारविशुद्धिसयम होता है वह सामायिक के समय को छोडकर और रात्रि के समय को छोडकर दिन मे दो कोस गमन करता है ॥४७३॥

आगे सूक्ष्मसोपराय का स्वरूप दिखाते है ।

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहुमसांपराओ जहखादेणूणओ किंचि ॥४७४॥

उपशम क्षय श्रेणीविषें, सूक्ष्म लोभ जब चीन ।
सूक्ष्म सांपरायिक कहें, यथाख्यात कुछ हीन ॥४७४॥

अर्थ–जब मुनि के उपशमश्रेणी अथवा क्षायिकश्रेणी मे केवल सूक्ष्मलोभ का उदय रह जाता है तब उसके सूक्ष्मसापरायिकसयम होता है इसमे और यथाख्यातसयम मे केवल सूक्ष्मलोभ के उदय और अनुदय का अतर है ॥४७४॥

आगे यथाख्यात सयम का स्वरूप दिखाते है ।

उपसंते खीणे वा असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि ।
छदुमट्ठो व जिणो वा जहखादो सजदो सो दु ॥४७५॥

उपशम अथवा क्षीण हो, अशुभ कर्म इक मोह ।
ग्यारह से चौदह तलक, यथाख्यात इक शोह ॥४७५॥

अर्थ—जब मुनि के अशुभ रूप मोह कर्म समूल उपशम अथवा क्षय हो जाता है तब यथाख्यात संयम होता है उपशम की अपेक्षा ग्यारहवे गुणस्थान मे होता है और क्षायिक की अपेक्षा बारहवे से लेकर चौदहवे गुणस्थान तक होता है ॥४७५॥

आगे देशव्रती का स्वरूप दिखाते है।

पंचतिहिचहुविहेहिं य अणुगुणसिक्खा वयेहिं संजुत्ता ।
उच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झलियकम्मा ॥४७६॥

धारे दृष्टी पांच अणु, व्रय गुण शिक्षा चार ।
देशव्रती कहलाय वह, कर्म निर्जरा धार ॥४७६॥

अर्थ—जो सम्यक्दृष्टि पाच अणुव्रत, तीनगुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों को धारण कर लेता है उसको देशव्रती कहते है उस देशव्रत के प्रभाव से उसके कर्मो की असख्यात गुणी निर्जरा होती है ॥४७६॥

आगे प्रसग वश श्रावक की ११ प्रतिमाओ के नाम दिखाते है।

दंसणवयजिणपूजणसज्झायसचित्तसव्वपडिकमणा।
बम्हारंभपरिग्गहअणुमदिभिक्खा य सावगा पडिमा ॥४७७॥

दर्शन व्रत पूजन पठन, सचित त्याग प्रति-कार ।
ब्रह्म रु आरँभ उपधि मति, त्याग रु भिक्षाहार ॥४७७॥

अर्थ—दर्शन, व्रत, पूजन, स्वाध्याय, सचित्तत्याग, प्रतिक्रमण, ब्रह्मचर्य, आरभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और भिक्षाहर ये ग्यारह श्रावको की प्रतिमाओ के नाम हैं इनमे दर्शनप्रतिमा वाले अव्रती और शेष सब व्रती (देशव्रती) श्रावक कहलाते हैं ॥४७७॥

आगे असयम का स्वरूप दिखाते हैं।

जीवा चोद्दसभेया इंदियविसया तहट्ठवीसं तु ।
जे तेसु णेव विरया असंजदा ते मुणेदव्वा ॥४७८॥

चौदह जीवसमास अरु, मूर्त विषय अठ बीस।
इनसे विरत न जो पुरुष, सो संयम बिन दीस ॥४७८॥

अर्थ—जो इस ग्रन्थ के दोहा न० ७२ मे कहे हुये १४ जीवसमासो की हिसा से विरक्त नही है और २८ प्रकार के इन्द्रियो के विषयो से विरक्त नही है उसको असयमी कहते है और उसके परिणाम को असयम कहते है ॥४७८॥

असयमी दो प्रकार के होते है सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि।

सम्यक्दृष्टिअसयमी— जो १४ जीवसमासो की विरोधी, उद्योगी तथा आरभी हिसा से विरक्त नही है और २८ प्रकार के योग्य इन्द्रियों के विपयो से विरक्त नही है उसको सम्यक्दृष्टि असयमी कहते है।

मिथ्यादृष्टिअसयमी—जो १४ जीवसमासो की सकल्पीहिसा से भी विरक्त नही है और २८ प्रकार के अयोग्य इन्द्रियो के विषयो से भी विरक्त नही है उसको मिथ्यादृष्टि असयमी कहते है।

आगे २८ प्रकार के इन्द्रियविपय स्पष्ट दिखाते है।

पंचरसपंचवण्णा दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा।
मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा ॥४७९॥

आठ फरस पन रूप अरु, गंध दोय रस पांच।
स्वर सातों अरु मन विषय, मूर्त विषय सब वांच ४७९

अर्थ—स्पर्श (हलका, भारी, रूखा, चिकना, कडा, नर्म, ठडा, गर्म) आठ, रस (कडवा, मीठा, खट्टा, चिरपरा, कसेला) पॉच, गध (सुगध, दुर्गंध) दो, रूप (काला, पीला, हरा, लाल, सफेद) पॉच, स्वर (षड्ज, ऋपभ, गॉधार, मध्यम, पचम, धैवत, निपाद) सात और इच्छा ये २८ इन्द्रिय विपय है ॥४७९॥

आगे पाचप्रकार के सयमियो की सख्या दिखाते है।

पमदादिचउण्हजुदी मामयियदुगं कमेण सेसतियं ।
सत्तसहस्सा णवसय णवलक्खा तीहि परिहीणा ॥४८०॥

छै से नव गुण राशि सम, समय छेद दो चीन ।
शेष सात नव सहस शत, नव लख त्रय त्रय हीन ।४८०

अर्थ–जितनी प्रमत्त से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक वालो की संख्या (८९०९९१०३) है उतने सामायिक और छेदोपस्थापना सयम वाले होते है परिहारविशुद्धिसयम वाले तीन कम सात हजार(६९९७) होते है सूक्ष्मसापरायसयम वाले मुनि तीन कम नवसौ (८९७) होते है और यथाख्यानसयम वाले तीन कम नव लाख (८९९९९७) होते है इससे अधिक एक समय मे नही होते ॥४८०॥

आगे देशसयमी और असयमियो की सख्या दिखाते है ।

पल्लासखेज्जदिमं विरदाविरदाण दव्वपरिमाण ।
पुव्वुत्तरासिहीणा संसारी अविरदाण पमा ॥४८१॥

पल्य असंख्ये भाग हैं, देश संयमी मान ।
जीव राशि में ये घटें, शेष न संयम वान ॥४८१॥

अर्थ— पल्प के असख्यातवे भाग देशसयमी है देशसयमी और सब सयमियो की सख्या को ससारी जीवराशि मे कम करने से जो सख्या शेप रहे उतने असयमी जीव है ॥४८१॥

संयममार्गणा समाप्त

आगे दर्शन का स्वरूप दिखाते है ।

ज सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसदूण अट्ठे दसणमिदि भण्णदे समये ॥४८२॥

जो अभेद कर देखता, सब द्रव्यों को मान।
भेद न करता कभी भी, सो दर्शन गुण जान ॥४८२॥

अर्थ—जो सब द्रव्यो को अभेद देखता है और किसी भी द्रव्य मे कभी भी भेद नही करता कि ये जड है ये चेतन है इत्यादि उसको आत्मा का दर्शन गुण कहते है ॥४८२॥

आगे उसी आशय को और दिखाते है।

भावाणं सामण्णविसेसयाण सरूवमेत्तं जं।
वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि ॥४८३॥

भेदा-भेद स्वरूप है, सब द्रव्यों का मान।
परि अभेद कर देखता, दर्शन उसको जान ॥४८३॥

अर्थ—सब द्रव्यो मे भेद और अभेद धर्म का निवास सदा पाया जाता है तो भी जो द्रव्यो के भेद धर्म को छोडकर केवल अभेद धर्म को देखता है वह आत्मा का दर्शन गुण है वह चार प्रकार का होता है चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ॥४८३॥

आगे चक्षु और अचक्षुदर्शन का स्वरूप दिखाते है।

चक्खूण जं पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं वेंति।
सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खुत्ति ॥४८४॥

जो नेत्रनि से देखता, चक्षू दर्शन मान।
शेष इन्द्रियनि से लखे, सो अचक्षु दृग जान ॥४८४॥

अर्थ—जो केवल नेत्रइन्द्रिय से द्रव्यो को देखता उसको चक्षुदर्शन कहते है और जो शेषइन्द्रियो से द्रव्यो को देखता उसको अचक्षुदर्शन कहते है ॥४८४॥

आगे अवधिदर्शन का स्वरूप दिखाते है।

परमाणुआदियाइं अंतिमखंधत्ति मुत्तिदव्वाइं ।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइं पच्चक्खं ॥४८५॥

परमाणू से मूर्त मय, महा खंद तक मान ।
जो देखे सो अवधि दृग, पीछे अवधी ज्ञान ॥४८५॥

अर्थ—जो परमाणु से लेकर पुद्गलमयी महास्कध तक देखता है उसको अवधिदर्शन कहते है उसके पश्चात् जो उसके भेद और प्रभेदो को देखता है उसको अवधिज्ञान कहते है ॥४८५॥

आगे केवलदर्शन का स्वरूप दिखाते है ।

बहुविहबहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
लोगालोगवितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ ॥४८६॥

दिखें बहुत से लोक में, परमित क्षेत्र प्रकाश ।
लोकालोक प्रकाशका, केवल दर्शन खास ॥४८६॥

अर्थ—लोक मे सब जगह परमित क्षेत्र के प्रकाश करने वाले सूर्य, चन्द्रादि बहुत से दिखलाई देते है किन्तु लोकालोक को देखने वाला जो कोई दिखलाई देता है उसको केवलदर्शन कहते है ॥४८६॥

आगे अचक्षुवालो को छोडकर शेषो की सख्या दिखाते है ।

जोगे चउरक्खाणं पचक्खाण च खीणचरिमाणं ।
चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं च ॥४८७॥

जितनी संख्या नेत्र धर, उतने चक्षू दर्श ।
अवधि रु केवल ज्ञान वत्, अवधि रु केवल दर्श ॥४८७॥

अर्थ—जितनी चौइन्द्रिय जीवो की सख्या है और क्षीण मोह गुणस्थान तक पचेन्द्रिय जीवो की सख्या है उतने चक्षुदर्शन वाले है

अवधिज्ञानियो की बराबर अवधिदर्शन वाले है और केवलज्ञानियों के बराबर केवलदर्शन वाले है ॥४८७॥

आगे अचक्षुदर्शन वालो की सख्या दिखाते है।

एइंदियपहुदीणं खीणकसायतणतरासीणं ।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणं होदि परिमाणं ॥४८८॥

मिथ्यातम गुणथान से, क्षीण कषाय सँभार ।
उतनी संख्या बराबर, हैं अचक्षु दृग धार ॥४८८॥

अर्थ—जितनी जीवो की सख्या मिथ्यात्व से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक है उतने अचक्षुदर्शन वाले जीव है ॥४८८॥

दर्शनमार्गणा समाप्त

आगे लेश्या का स्वरूप दिखाते है।

लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णियअपुण्णपुण्णं च ।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥४८९॥

जिसके द्वारा बांधता, पुण्य पाप को जीव ।
उसको लेश्या कहें नित, गणधर आदि सदीव ॥४८९॥

अर्थ—जिस परिणाम के द्वारा जीव पाप और पुण्य कर्म का बध करता है उसको गणधरादि देव लेश्या कहते है ॥४८९॥

आगे उसी आशय को और दिखाते है।

जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होइ ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ॥४९०॥

योग वृत्ति लेश्या कही, जो कषाय से लीन ।
उन दोनों से होय फिर, बंध चार विधि चीन ।४९०।

अर्थ—जो कषाय से मिली हुई मन, वचन और काय की क्रिया है उसको योग कहते है उस योग और कषाय से चार प्रकार का वंध होता है अर्थात् योग से प्रकृति और प्रदेश वंध होता है तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग वध होता है ॥४९०॥

आगे लेश्या कथन के १६ अधिकार दिखाते है।

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य ।
सामी साहणसंखा खेत्तं फास तदो कालो ॥४९१॥
अंतरभावप्पबहु अहियारा सोलसा हवंतित्ति ।
लेस्साण साहणट्ठं जहाकमं तेहिं वोच्छामि ॥४९२॥

भेद वर्ण अरु उदय-थल, संक्रमणा अरु कार्य ।
लक्षण गति स्वामी करण, संख्या क्षेत्र विचार्य ।४९१।
परशन काल रु अंतरा, भाव रु अल्प बहुत्व ।
इन सोलह अधिकार में, लेश्या लिखें महत्व ॥४९२॥

अर्थ—भेद, वर्ण, उदयस्थान, संक्रमण, कार्य, लक्षण, गति, स्वामी, कारण, सख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प-बहुत्व ये सोलह अधिकारो के द्वारा लेश्याओ का कथन दिखलाते है ॥४९१-४९२॥

आगे लेश्या के भेद दिखाते है।

किण्हा णीला काऊ तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य ।
लेस्साण णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ॥४९३॥

कृष्ण रु नील कपोत अरु, पीत पद्म अरु श्वेत ।
ये लेश्या के भेद छै, वर्णों श्रुत के खेत ॥४९३॥

अर्थ—लेश्या छै प्रकार की होती है कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म और शुक्ल ।।४६३।।

आगे द्रव्यलेश्या के रग दिखाते है।

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण ।।४९४।।

वर्ण उदय जो देह रँग, लेश्या द्रव्य पिछान ।
कृष्णादिक से भेद छै, उत्तर भेद महान ।।४६४।।

अर्थ—जो वर्णनामकर्म के उदय से शरीर मे कालादि रग होते है उनको द्रव्यलेश्या कहते है वह कृष्णादि के भेद से छै प्रकार की होती है उनमे उत्तर भेद अनेक है ।।४६४।।

आगे दृष्टान्त से कृष्णादि के रग दिखाते है।

छप्पयणीलकवोदसुहेमंबुजसखसण्णिहा वण्णे ।
संखेज्जासखेज्जाणंतवियप्पा य पत्तेय ।।४९५।।

भ्रमर मयूर कबूतरा, कनक कमल अरु शंख ।
ये रँग अरु रँग भेद हैं, संख्य अनंत असंख ।।४६५।।

अर्थ—द्रव्यकृष्णलेश्या का रंग भ्रमर के समान काला होता है द्रव्यनीललेश्या का रग मोर के कठ के समान नीला होता है द्रव्य कपोतलेश्या का रग कवूतर के समान मटमेला होता है द्रव्यपीतलेश्या का रंग सुवर्ण के समान पीला होता है द्रव्यपद्मलेश्या का रग कमल के समान लाल होता है और द्रव्यशुक्ललेश्या का रग शख के समान श्वेत होता है ।।४६५।।

आगे नारकी आदि की द्रव्यलेश्या के रग दिखाते है ।

णिरया किण्हा कप्पा भावाणुगया हु तिसुरणरतिरिये ।
उत्तरदेहे छक्कं भोगे रविचंदहरिदंगा ।।४९६।।

भोग ति भू रवि शशि हरित, कल्प भाव वत् अंग।
नरक कृष्णनर शेष सुर, पशु विक्रिय छै रंग ॥४९६॥

अर्थ—सब नारकियों का शरीर कृष्ण रग (काला) का होता है कल्पवासी देवो का शरीर अपनी भाव लेश्या के रग के समान रग का होता है शेष देवो (भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषी) का शरीर, मनुष्यों का शरीर, तिर्यंचो का शरीर और विक्रिया मे उत्पन्न शरीर कृष्णादि छहो रग का होता है उत्तम, मध्यम और जघन्य भोग-भूमियो (मनुष्य, तिर्यंच) का शरीर क्रम से पीला, शुक्ल और हरित रग का होता है ॥४९६॥

आगे वादरजलादि के शरीर का रग दिखाते है।

वादरआऊतेऊ सुक्कातेऊय वाउकायाणं ।
गोमुत्तमुग्गवण्णा कमसो अव्वत्तवण्णो य ॥४९७॥

वादर जल अरु अग्नि का, शुक्ल पीत रँग मान।
गाय मूत्र मूंगा अकथ, पवन तीन रँग जान ॥४९७॥

अर्थ—वादरजलकाय के जीवो के शरीर का रग शुक्ल है वादर अग्निकाय के जीवो के शरीर का रग पीला है घनोदधिपवन (जल से मिली मोटी पवन) का रग गोमूत्र के रग के समान है घनपवन (मोटीपवन) का रग मूगा (लाल) समान है और तनपवन (पतली-पवन) का रंग वचन के अगोचर है ॥४९७॥

आगे सूक्ष्मजीवो के शरीर का रग दिखाते है।

सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदा सव्व विग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा ॥४९८॥

सब सूक्षम कापोत रँग, पर भव गति में श्वेत।
सब अपूर्ण तन के विषें, रँग कपोत है चेत ॥४९८॥

आगे अशुभलेश्याओ मे अशुभ हानि को दिखाते है।

असुहाणं वरमज्झिमअवरसे किण्हणीलकाउतिए।
परिणमदि कमेणप्पा परिहाणीदो किलेसस्स ॥५०१॥

अशुभ कृष्ण कापोत तक, अवर मध्य वर अंश।
जीव क्लेश की हानि से, परणमता क्रम वंश ॥५०१

अर्थ—जब इस आत्मा के सक्लेश भाव का परिणमन कम होता है तब उत्कृष्टकृष्णलेश्या को छोडकर जघन्यकृष्ण लेश्या को ग्रहण करता है जघन्यकृष्णलेश्या को छोड कर उत्कृष्ट नीललेश्या को ग्रहण करता है उत्कृष्ट नीललेश्या को छोड कर जघन्यनीललेश्या को ग्रहण करता है जघन्यनीललेश्या को छोडकर उत्कृष्टकपोतलेश्या को ग्रहण करता है और उत्कृष्टकपोतलेश्या को छोडकर जघन्यकपोतलेश्या को ग्रहण करता है ॥५०१॥

आगे अशुभलेश्याओ मे अशुभवृद्धि को दिखाते है।

काऊ णीलं किण्ह परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा।
एवं किलेसहाणीवड्ढीदो होदि असुहतियं ॥५०२॥

कपो नील अरु कृष्ण के, बदले क्लेश बढ़ाय।
हानि वृद्धि यों क्लेश से, अशुभ तीन परिणाय ॥५०२॥

अर्थ—जब इस आत्मा के सक्लेशभाव का परिणमन बढ जाता है तब जघन्य कपोतलेश्या को छोडकर उत्कृष्टकपोतलेश्या को ग्रहण करता है उत्कृष्टकपोतलेश्या को छोडकर जघन्यनीललेश्या को ग्रहण करता है जघन्यनीललेश्या को छोडकर उत्कृष्टनीललेश्या को ग्रहण करता है उत्कृष्ट नीललेश्या को छोडकर जघन्यकृष्णलेश्या को ग्रहण करता है और जघन्यकृष्णलेश्या को छोड़कर उत्कृष्टकृष्णलेश्या को ग्रहण करता है इसप्रकार सक्लेश की हानि और वृद्धि से अशुभलेश्याओ का

अर्थ–सब सूक्ष्मजीवों के शरीर का रग कपोत (मटमेला) है परभवगति को जाने वाले कार्माण शरीर का रग शुक्ल है और अपर्याप्तअवस्था मे सब जीवो का शरीर कपोत रंग का है ॥४९८॥

आगे लेश्या के उदयस्थान दिखाते ।

लोगाणमसंखेज्जा उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।
तत्थ किलिट्ठा असुहा सुहा विसुद्धा तदालावा ॥४९९॥

उदयजु थान कषाय के, जग असंख्य परिमाण ।
अशुभ भाग बहु एक शुभ, परि असंख्य जगजान।४९९।

अर्थ–कषायो (लेश्याओं) का उदयस्थान असख्यातलोक बराबर है जिसमे असख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उसके एक भाग कम बहुभाग बराबर तो अशुभलेश्याओ के सक्लेश रूप अशुभ स्थान है और एक भाग बराबर शुभलेश्याओ के विशुद्ध रूप शुभ स्थान है तो भी ये असख्यात बराबर ही है ॥४९९॥

आगे शुभाशुभलेश्याओ के भेद और हानि वृद्धि दिखाते है ।

तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा ।
मंदातरा मंदतमा छट्ठाणगया हु पत्तेयं ॥५००॥

अशुभ तीव्रतम तीव्रतर, तीव्र तथा शुभ भेक ।
मंद मंदतर मंदतम, फिर छै थल प्रत्येक ॥५००॥

अर्थ—अशुभलेश्याओ मे तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र ये तीन स्थान है और शुभलेश्याओ मे मद, मदतर और मदतम ये तीनस्थान है कारण पीतादि शुभ लेश्याओ के शुभस्थानो मे जघन्य से उत्कृष्ट तक और कृष्णादिअशुभलेश्याओ के अशुभ स्थानो मे उत्कृष्ट से जघन्य तक प्रत्येक स्थान मे षटस्थान (अनतभाग हानि आदि) रूप हानि वृद्धि होती है ॥५००॥

परिणमन होता है ।।५०२।।

आगे शुभलेश्याओ मे शुभ से हानि और वृद्धि दिखाते है ।

तेऊ पडमे सुक्के सुहाणमवरादिअंसगे अप्पा ।
सुद्धिस्स य वड्ढीदो हाणीदो अण्णदा होदि ।।५०३।।

पीत पद्म अरु शुक्ल के. अंश वरादिक मान ।
बढ़े विशुद्धी या तजे, हानि वृद्धि त्यों जान ।।५०३।।

अर्थ—जब इस आत्मा के विशुद्धभाव का परिणमन वृद्धि को प्राप्त होता है तब जघन्यपीतलेश्या को छोडकर उत्कृष्टपीतलेश्या को ग्रहण करता है उत्कृष्टपीतलेश्या को छोडकर जघन्यपद्मलेश्या को ग्रहण करता है जघन्यपद्मलेश्या को छोडकर उत्कृष्टपद्मलेश्या को ग्रहण करता है उत्कृष्ट पद्मलेश्या को छोडकर जघन्यशुक्ललेश्या को ग्रहण करता है और जघन्य शुक्ल लेश्या को छोडकर उत्कृष्टशुक्ल लेश्या को ग्रहण करता है तथा जब विशुद्ध भाव का परिणमन कम होता तब उत्कृष्टशुक्ललेश्या को छोडकर जघन्यशुक्ललेश्या को ग्रहण करता है । जघन्यशुक्ललेश्या को छोडकर उत्कृष्टपद्मलेश्या को ग्रहण करता है । उत्कृष्टपद्मलेश्या को छोडकर जघन्यपद्मलेश्या को ग्रहण करता है । जघन्यपद्मलेश्या को छोडकर उत्कृष्टपीतलेश्या को ग्रहण करता है और उत्कृष्टपीतलेश्या को छोडकर जघन्यपीतलेश्या को ग्रहण करता है इस प्रकार विशुद्धभाव की वृद्धि और हानि से शुभलेश्याओ का परिणमन होता है ।।५०३।।

आगे सक्रमण के भेद और कार्य दिखाते है ।

संकमणं सट्ठाणपरट्ठाण होदि किण्ह सुकाणं ।
वड्ढीसु हि सट्ठाणं उभयं हाणिम्मि सेस उभयेवि ।।५०४।।

स्वपर थान दो संक्रमण, कृष्ण शुक्ल बढ़ वार ।
स्वथल हानि में उभय हों, उभय शेष उर धार ।।५०४।।

अर्थ—सक्रमण दो प्रकार का होता है निज स्थान और परस्थान। जिनमे कृष्ण और शुल्क लेश्या मे वृद्धि के समय स्वस्थान सक्रमण ही होता है कारण शुभ की वृद्धि शुक्ल लेश्या मे जघन्य से उत्कृष्ट तक ही हो सकती है और अशुभ की वृद्धि कृष्णलेश्या मे जघन्य से उत्कृष्ट तक ही हो सकती है इस लिए यह परिणमन स्वस्थान कहलाता है। कृष्ण तथा शुक्ल लेश्या मे हानि के समय स्वस्थान और पर स्वस्थान दोनो सक्रमण हो सकते है कारण शुभ की हानि शुक्ल तक, शुक्ल से पद्म तक अथवा पीत लेश्या तक हो सकती है और अशुभ की हानि कृष्ण तक, कृष्ण से नील तक अथवा कपोत लेश्या तक हो सकती है इसलिये यह परिणमन स्वस्थान और परस्थान दोनो प्रकार का कहलाया जा सकता है तथा शेष लेश्याओं मे वृद्धि अथवा हानि के समय दोनो प्रकार के सक्रमण हो सकते है ॥५०४॥

सक्रमण—परिणाम के पलटने को सक्रमण कहते है वह दो प्रकार का होता है स्वस्थान और परस्थान।

स्वस्थान सक्रमण—जब किसी लेश्या का परिणाम पलटकर उसी लेश्यारूप दूसरा परिणाम हो जाता है तब उसको स्वस्थान परिणमन कहते हैं जैसे कृष्णलेश्या उत्कृष्ट से बदलकर जघन्य कृष्णलेश्यारूप हो जाय।

परस्थान सक्रमण—जब किसी लेश्या का परिणाम पलटकर दूसरी लेश्या रूप हो जाता है तब उसको परस्थान परिणमन कहते है जैसे कृष्णलेश्या जघन्य से बदलकर उत्कृष्ट नीललेश्या रूप हो जाय।

आगे स्व और परस्थान मे हानि वृद्धि का परिमाण दिखाते है।

लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरवड्ढी।
सट्ठाणे अवरादो हाणी णियमा परट्ठाणे ॥५०५॥

निज थल की लेश्या वरा, निकट थान में हान।
अवर निकट थल वृद्धि है, लघु से परथल हान॥५०५

अर्थ—स्वस्थान की अपेक्षा लेश्याओ के उत्कृष्ट स्थान के समीप वाले (जघन्य) स्थान का परिणाम उत्कृष्ट स्थान के परिणाम से अनतवेभाग हानि रूप है और जघन्य स्थान के समीपवाले (उत्कृष्ट) स्थान का परिणाम जघन्य स्थाने से अनतवेभाग वृद्धि रूप है। सब लेश्याओ के जघन्य स्थान से हानि हो तो अनतगुणीहानिरूप पर स्थान सक्रमण ही होगा जैसे कृष्णलेश्या के जघन्यस्थान के समीप नीललेश्या का उत्कृष्ट स्थान है वह अनतगुणी हानि रूप है ॥५०५

आगे सक्रमण मे हानि वृद्धिरूप छै स्थान दिखाते है।

संकमणे छट्ठाणा हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा।
परिमाणं च य पुव्वं उत्तकमं होदि सुदणाणे ॥५०६॥

संक्रमणहिं छै थान हैं, हानि वृद्धि से मान।
इनकी संख्या नाम सब, पूर्वकहेश्रुतज्ञान ॥५०६॥

अर्थ—लेश्याओं के सक्रमण की हानि मे अनतवेभागहानि, असख्यातवेभागहानि, सख्यातवेभागहानि, सख्यातगुणीहानि, असख्यातगुणीहानि और अनतगुणीहानि ये छै हानियाँ होती है और वृद्धि मे अनतवेभागवृद्धि, असख्यातवेभागवृद्धि, सख्यातवेभागवृद्धि, सख्यातगुणीवृद्धि, असख्यातगुणीवृद्धि और अनतगुणीवृद्धि ये छै वृद्धियाँ होती है इनमे अनंतवेभागवृद्धि, अनतगुणीवृद्धि, अनतवेभागहानि और अनतगुणीहानि का परिमाणजीवराशि के बराबर है। असख्यातभागवृद्धि, असख्यातगुणीवृद्धि, असख्यातवेभाग हानि और असख्यातगुणीहानि का परिमाण असख्यातलोक बराबर है और सख्यातवेभागवृद्धि, सख्यातगुणीवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणीहानि का परिमाण उत्कृष्ट सख्यात के बराबर है शेष दोहा नं० ३२३ से ३२६ तक मे जो लिख आये हैं वैसा यहा समझना चाहिये ॥५०६॥

आगे लेश्याओ का कार्य दिखाते है।

पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्ठारण्णमज्झदेसम्हि ।
फलभरियरुक्खमेगं पोक्खित्ता ते विचिंतंति ॥५०७॥
णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।
खाउं फलाइं इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं ॥५०८॥

मारग भूले छै पथिक, किसी वनी मंझार ।
फल पूरित इक वृक्ष लख, बोले वचन सँभार ।५०७।
काट वृक्ष शाखा टहनि, तोड़ गुच्छ फल पर्म ।
भूमि गिरे फल खाऊँगा, जस मन वच तस कर्म ॥५०८॥

अर्थ—किसी वन के मध्य मे छै पथिक मार्ग भूल गये वहा वे फलो से लदे हुए एक वृक्ष को देखकर कहते भये । उनमे से एक बोला कि मैं इस वृक्ष को काट कर फल खाऊगा दूसरा बोला वृक्ष को काटने से क्या लाभ मैं तो इसकी शाखा (डार) को काट कर फल खाऊगा तीसरा बोला शाखा को काटने से क्या लाभ मैं तो इसकी टहनी काट कर फल खाऊगा चौथा बोला टहनी काटने से क्या लाभ मैं तो इसके गुच्छे तोड कर फल खाऊगा पाचवा बोला गुच्छा तोडने से क्या लाभ मैं तो गुच्छे मे लगे हुए पक्के २ फल खाऊगा और छटवा बोला वृक्ष पर चढने से क्या लाभ मैं तो नीचे पड़े हुए ही बीन २ कर फल खाऊगा जैसा इन पथिको का मन वचन और कार्य है तैसा ही क्रम से कृष्णादि छै लेश्या वालो का मन, वचन और कार्य समझना चाहिए ॥७—८॥

आगे कृष्ण लेश्या वाले के चिन्ह दिखाते है ।

चंडो ण मुचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥५०९॥

वैर न छोड़े क्रोध अति, दया धर्म से हीन ।
वश न किसी के दुष्ट चित, चिन्ह कृष्ण के चीन ५०९

अर्थ—जो महा क्रोधी हो, किसी से वैर बांध कर फिर कभी छोडता नही हो, दया रूपी धर्म से रहित हो, दुष्ट चित्त वाला हो और किसी के कभी वश मे नही आता हो वह कृष्णा लेश्या वाला जीव है ॥५०९॥

आगे नील लेश्या वाले के चिन्ह दिखाते है ।

मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विरणाणी य विसयलोलो य ।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ॥५१०॥
णिद्दावंचणवहुलो धणधरणे होदि तिव्वसरणा य ।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेस्सस्स ॥५११॥

मंद बुद्धि मानी छली, विषय लंपटी और ।
इच्छे धन निद्रालु ठग, चिन्ह नील सिर और ५१०-११

अर्थ—जो मद बुद्धि हो, मानी हो, छली हो, पाच इन्द्रियो के विपय मे लम्पटी हो, पर धन की इच्छा रखता हो, निद्राअधिक लेता हो और ठगई के काम करता हो वह नील लेश्या वाला जीव है ॥५१०-५११॥

आगे कपोतलेश्या वाले के चिन्ह दिखाते है

रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ वहुसो य सोयभयवहुलो ।
असुयइ परिभवइ परं पसंसये अप्पयं वहुसो ॥५१२॥
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं यिव परं पि मण्णंतो ।
थूसइ अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणिवड्ढिं वा ॥५१३॥
मरणं पत्थेइ रणे देइ सुवहुगं वि थुव्वमाणो दु ।
ण गणइ कज्जाकजं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥५१४॥

पर निंदा निज थुति चहे, अराति शोक भय वान ।
कार्याकार्य न जो लखे, चिन्ह कपोत प्रधान ।१२-१४।

अर्थ—पर निंदा सुनना चाहता हो, अपनी प्रशसा सुनना चाहता हो, किसी से प्रीति नहि रखता हो, सदा दुख और शोक मे रहता हो, भय करता हो और करने योग्य न करने योग्य कार्य का ज्ञान नही रखता हो वह कपोतलेश्या वाला जीव है ॥५१२–५१४॥

आगे पीतलेश्या वाले के चिन्ह दिखाते है।

जाणइ कज्जाकज्जं सेयससेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥५१५॥

जाने कार्याकार्य अरु, भोग्याभोग्य प्रधान।
दया दान सम भाव रत, चिन्ह पीत पहिचान ।५१५।

अर्थ—जो करने योग्य न करने योग्य कार्य को जानता हो, भोगने योग्य न भोगने योग्य विषयो को जानता हो और दया, दान तथा समता भाव मे लीन हो वह पीतलेश्यावाला जीव है ॥५१५॥

आगे पद्मलेश्यावाले के चिन्ह दिखाते है।

चागी भद्दो चोक्खो उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥५१६॥

व्रती भद्र शुभ काम कर, सहनशील का धार।
देव शास्त्र गुरु उपासक, चिन्ह पद्म उर धार ।५१६।

अर्थ—जो व्रती हो, भद्रपरिणामी हो, शुभकार्य का करने वाला हो, सहनशीलता का धारी हो और देव, शास्त्र तथा गुरुओ का उपासक हो वह पद्मलेश्या का धारी है ॥५१६॥

आगे शुक्ललेश्या के चिन्ह दिखाते है।

ण य कुणइ पक्खवायं णवि य णिदाणं समो य सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेस्सस्स ॥५१७॥

करे न पक्ष निदान अरु, साम्य भाव सब जीव।
राग द्वेष अरु मोह बिन, लक्षण शुक्ल सदीव।५१७।

अर्थ—जो किसी बात की पक्ष नहि पकडता हो, परभव के लिए निदान नहिं बाधता हो, सब जीवो पर समभाव रखता हो, इष्ट वस्तु से राग नही करता हो, अनिष्टवस्तु मे द्वेष नही करता हो और स्त्री-पुत्रादि से स्नेह नही रखता हो वह शुक्ललेश्या का धारी है ।।५१७।।

आगे लेश्याओं के आठ अशो मे आयुबध दिखाते है ।

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया।
आउगबंधणजोगा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ।।५१८।।

लेश्या अंश छवीस हैं; मध्य अंश इन आठ।
आयु बंध के योग्य हैं, अपकर्षण क्षण पाठ।।५१८।।

अर्थ–लेश्याओ के उत्कृष्ट, मध्य और जघन्य के भेद से १८ भेद होते है और कपोत तथा पीत के मध्य मे ८ अश और होते है इस प्रकार कुल २६ अश है इनमे मध्य के जो आठ अश है वे अपकर्षन काल मे होते है ये ही आयुबध के खास कारण है अत· मनुष्य और तिर्यंचों के आयु के दो भाग वीत जाने पर प्रथमअपकर्षन होता है देव और नारकियो के आयु छै महीना शेप रहने पर प्रथमअपकर्षन होता है और भोगभूमियो के आयु के नव महीना शेप रहने पर प्रथमअप-कर्षन होता है यदि इसमे आयुबध न होवे तो फिर दो भाग आयु के वीतने पर दूसरा अपकर्षन होता है इसी तरह से शेप छै अपकर्षन और होते है यदि इन आठ अपकर्षनो मे आयुबध न हो तो वर्तमान आयु का आवली के असख्यातवॉ भाग काल शेप रहने पर आयुबध अवश्य होता है इतना और है कि जैसा लेश्या का अश होता है वैसी आयु का बध होता है ।।५१८।।

आगे १८ अंशो मे शुक्ल के उत्कृष्ट अश का फल दिखाते है ।

सेसट्ठारस अंसा चउगइगमणस्स कारणा होंति।
सुक्कुक्कस्संसमुदा सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ॥५१९॥

शेष अठारह अंश जे, चहुँ गति कारण मान।
शुक्ल अंश उत्कृष्ट से, सर्वारथ सिधि थान।५१९।

अर्थ—आयु का बंध लेश्याओं के आठ मध्य अंशो में अथवा अंत समय के पूर्व होता है किन्तु मरण के समय लेश्याओं के १८ अंशो में से जिस अंश के साथ मरण होता वैसी गति को वह जीव पाता है इस न्याय से शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट अंश से जो जीव मरता है वह सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न होता है ॥५१९॥

आगे शुक्ल के जघन्य और मध्य अंश का फल दिखाते है।

अवरंसमुदा होंति सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा।
आणदकप्पादुवरिं सव्वट्ठाइल्लगे होंति ॥५२०॥

जघन अंश से मरण कर, सहस्रार तक जाय।
आनत से अपराजिता, मध्य अंश से पाय।५२०।

अर्थ—शुक्ललेश्या के जघन्यअंश से मर कर जीव सहस्रारस्वर्ग में उत्पन्न होता है और शुक्ललेश्या के मध्यअंश से मरण कर जीव आनतस्वर्ग मे लेकर अपराजितविमान तक उत्पन्न होता है।५२०।

आगे पद्म के जघन्य और उत्कृष्ट का फल दिखाते है।

पम्मुक्कस्संसमुदा जीवा उवजांति खलु सहस्सारं।
अवरंसमुदा जीवा सणक्कुमारं च माहिदं ॥५२१॥

पद्म अंश उत्कृष्ट से, सहस्रार को पाय।
सनत्कुमार महेन्द्र तक, जघन अंश से जाय ॥५२१॥

अर्थ— पद्मलेश्या के उत्कृष्टअंश से मर कर जीव सहस्रारस्वर्ग में उत्पन्न होता है और पद्मलेश्या के जघन्य अंश से मर कर जीव

सनत्कुमार-महेन्द्र स्वर्ग तक उत्पन्न होता है ॥५२१॥

आगे पद्म जघन्य और पीत उत्कृष्ट का फल दिखाते है।

मज्झिमअंसेण मुदा तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा ।
साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ॥५२२॥

मध्य ब्रह्म सत्तार तक, पीत ज्येष्ठ मर केन्द्र ।
सनत्कुमार महेन्द्र पर, इक श्रेणी चक्रेन्द्र ॥५२२॥

अर्थ—पद्मलेश्या के मध्यअश से मर कर जीव ब्रह्म से लेकर सतारस्वर्ग तक उत्पन्न होता है और पीतलेश्या के उत्कृष्टअश से मर कर जीव सनत्कुमार-महेन्द्र स्वर्ग के अतिम पटल मे चक्र नाम के इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीवद्धविमान मे उत्पन्न होता है ॥५२२॥

आगे पीत के जघन्य और मध्य अश का फल दिखाते है।

अवरसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडम्मि सेढिम्मि ।
मज्झिमअंसेण मुदा विमलविमाणादि वलभद्दे ॥५२३॥

जघन अंश सौधर्म द्वय, ऋजु अरु श्रेणि विमान ।
मध्यहिं विमल विमान से, ले वलभद्र विमान ।५२३।

अर्थ–पीतलेश्या के जघन्यअश से मर कर जीव सौधर्म-ईसानस्वर्ग के ऋजु नाम के इन्द्रकविमान मे अथवा श्रेणीवद्धविमानो मे उत्पन्न होता है और पीतलेश्या के मध्यअश से मर कर सौधर्मईसानस्वर्ग के दूसरे पटल के विमल नाम के इन्द्रक विमान से लेकर सनत्कुमार-महेन्द्र स्वर्ग के अत के दो वलभद्र नाम के इन्द्रक विमान तक उत्पन्न होता है ॥५२३॥

आगे कृष्ण के जघन्यादि अश का फल दिखाते है।

किण्हवरंसेण मुदा अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।
पंचमचरिमतिमिस्से मज्झे मज्झेण जायंते ।५२४।

कृष्ण ज्येष्ठ से सप्त भू, अवधि थान को पाय।
पंचम अंत तिमिश्र लघु, मध्य मध्य बिल जाय।५२४।

अर्थ—कृष्णलेश्या के उत्कृष्टअंश से मर कर जीव सातवे नरक के अवधिस्थान नाम के इन्द्रकबिल मे उत्पन्न होता है कृष्णलेश्या के जघन्यअंश से मर कर पाचवें नरक के अंतिमपटल के तिमिश्र नाम के इन्द्रक बिल मे उत्पन्न होता है और कृष्ण लेश्या के मध्यअंशो से मरकर उपरोक्त दोनों के मध्य में से किसी एक नरकबिल में उत्पन्न होता है ॥५२४॥

आगे नील के जघन्यादि अंश का फल दिखाते है।

नीलुक्कस्संसमुदा पंचम अंधिंदयम्मि अवरमुदा।
वालुकसंपज्जलिदे मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२५॥

नील अंश उत्कृष्ट से, धूम अंध्र बिल जाय।
लघु वालुकसं-प्रज्वलिता, मध्य मध्य बिल पाय।५२५।

अर्थ—नीललेश्या के उत्कृष्टअंश से मर कर जीव पाचवे नरक के अन्त के दो पटलो में से अंध्र नाम के इन्द्रक-बिल मे उत्पन्न होता है कोई पांचवे पटल मे भी उत्पन्न होता है नीललेश्या के जघन्य अंश से मर कर जीव तीसरे नरक के अन्तिम पटल में से सप्रज्वलित नाम के इन्द्रकबिल मे उत्पन्न होता है और नीललेश्या के मध्य अंशो से मर कर जीव उपरोक्त दोनो के मध्य मे से किसी एक नरक के बिल में उत्पन्न होता है ॥५२५॥

आगे कपोत के जघन्यादि अंश का फल दिखाते है।

वरकाओदंसमुदा संजलिदं जांति तदियणिरयस्स।
सीमंतं अवरमुदा मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२६॥

संप्रज्वलित संज्वलित में, अंश कपोत प्रधान।
जघन अंश सीमंत बिल, मध्य मध्य बिल जान।५२६।

अर्थ—कपोतलेश्या के उत्कृष्टअश से मर कर जीव तीसरे नरक के अत के दो पटलो मे से सज्वलित नाम के इन्द्रकविल मे उत्पन्न होता है और कोई अतिम पटल सम्वन्धी सप्रज्वलित नाम के इन्द्रक विल मे भी उत्पन्न होता है कपोत लेश्या के जघन्य अश से मर कर जीव प्रथम पृथ्वी के सीमत नाम के प्रथम इन्द्रकविल मे उत्पन्न होता है और कपोत लेश्या के मध्य अशों से मर कर जीव उपरोक्त दोनो के मध्य मे से किसी एक नरक के विल मे उत्पन्न होता है ॥५२६॥

आगे कृष्णादिचार लेश्याओ के फल को दिखाते है ।

किण्हचउक्काणं पुण मज्झंसमुदा हु भवणगादितिये ।

पुढवीआउवणप्फदिजीवेसु हवंति खलु जीवा ॥५२७॥

कृष्णचार के मध्य से, भवनत्रक सुर मान ।

अरु पृथ्वी जल वनस्पति, उपजें लेउ पिछान ॥५२७॥

अर्थ—कृष्ण, नील और कपोतलेश्या के साथ कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंच तथा पीतलेश्या के मध्य अशो के साथ भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यंच मर कर भवन, व्यतर और ज्योतिपी देवो में उत्पन्न होते हैं और कृष्ण, नील, कपोत और पीत लेश्या के मध्य अशो के साथ कर्मभूमि के तिर्यंच, मनुष्य, भवनवासी, व्यतर ज्योतिपी और सौधर्म-ईसान स्वर्ग के मिथ्यादृष्टि देव मरकर वादरपर्याप्त पृथ्वी, जल और वनस्पति काय मे उत्पन्न होते हैं ॥५२७॥

आगे कृष्णादि तीन लेश्या का फल दिखाते है ।

किण्हतियाणं मज्झिमअंसमुदा तेउवाउवियलेसु ।

सुरणिरया सगलेस्सहिं णरतिरियं जांति सगजोग्गं ॥५२८॥

कृष्ण तीन के मध्य से, अग्नि पवन विकलान ।

सुर नर नारक पशू द्वय, जस लेश्या तस थान ॥५२८॥

अर्थ—कृष्ण, नील और कपोतलेश्या के मध्यअशो से मर कर जीव कर्मभूमि के मनुष्य और सैनीतिर्यच, असैनीपचेन्द्रियतिर्यच, अग्निकाय, पवनकाय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और साधारण-वनस्पतिकाय मे उत्पन्न होता है और देव और नारकी अपनी लेश्या के अनुनार मरण कर मनुष्य और तिर्यच गति को प्राप्त होते है ।।५२८।।

आगे प्रथमादिनरक मे लेश्या के अश दिखाते है ।

काऊ काऊ काऊ णीला णीला य णीलकिण्हा य ।
किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ।।५२९।।

कपो कपोत कपोत निल, नीलरु नीला कृष्ण ।
लेश्या कृष्ण रु अति कृपण, प्रममादिक भू भ्रमण ५२९

अर्थ—प्रथमनरक मे कपोतलेश्या का जघन्य अश है दूसरे नरक मे कपोतलेश्या का मध्यअश है तीसरेनरक मे कपोतलेश्या का उत्कृष्ट और नीललेश्या का जघन्य अश है चौथेनरक मे नीललेश्या का मध्य अश है पाचवेनरक मे नीललेश्या का उत्कृष्ट और कृष्णलेश्या का जघन्य अश है छट्ठेनरक मे कृष्णलेश्या का मध्यअश है और सातवे-नरक मे कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट अश है ।।५२९।।

आगे मनुष्य और तिर्यचो मे लेश्या दिखाते है ।

णरतिरियाणं ओघो इगिविगले तिण्णि चउ असण्णिस्स ।
सण्णिअपुण्णगमिच्छे सासणसम्मेवि असुहतियं ।।५३०।।

नर पशु छै इक विकल त्रय, अमन जीव के चार ।
मन अपूर्ण मिथ्यात अरु सासा अशुभ विचार ।।५३०।।

अर्थ—मनुष्य और तिर्यचो के छहो लेश्या होती है एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीवो के कृष्णादि तीन अशुभलेश्या होती है असैनी पचेन्द्रिय-पर्याप्तजीवो के कृष्णादि चारलेश्या होती है कारण वह कपोतलेश्या

से मर कर प्रथम नरक मे उत्पन्न होता है और पीतलेश्या से मरकर भवनवासी और व्यतर देवो मे भी उत्पन्न होता है सैनी, असैनी लब्धिअपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त सासादनगुणस्थान वाले जीवो के कृष्णादि तीन अशुभलेश्या होती है ॥५३०॥

आगे भोगभूमियो के लेश्या दिखाते है।

भोगा पुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे णियमा ।
सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ॥५३१॥

भोग अपूर्णक दृष्टि के, लघु कपोत ही चीन ।
समकित या मिथ्यात्व युत, पूर्णके शुभ तीन ॥५३१॥

अर्थ—भोगभूमियानिवृतिअपर्याप्तसम्यक्दृष्टि के कपोतलेश्या का जघन्य अश होता है और पर्याप्तभोगभूमिया सम्यक्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि के पीतादि तीन शुभ लेश्या ही होती है ॥५३१॥

आगे गुणस्थानो मे लेश्या दिखाते हैं।

अयदोत्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ।
तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥५३२॥

छै लेश्या चौथे तलक, सात तलक शुभ तीन ।
तेरह तक लेश्या शुक्ल, अंतहि लेश्या हीन॥५३२॥

अर्थ–अविरतगुणस्थान तक छहो लेश्या होती है देशविरत से अप्रमत्त गुणस्थान तक तीन शुभ लेश्या होती है अपूर्वकरण से सयोग-गुणस्थान तक केवल शुक्ल लेश्या होती है और अयोगगुणस्थान मे शुक्ललेश्या भी नही होती ॥५३२॥

आगे कषाय रहित के लेश्या वताने कारण दिखाते हैं।

णट्ठकसाये लेस्सा उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया ।
अहवा जोगपउत्ती मुक्खोत्ति तहिं हवे लेस्सा ॥५३३॥

लेश्या रहित कषाय के, भूतपूर्व कहलाव।
अथवा प्रवृत्ति योग लख, क्योंकि योग सद्भाव॥३३

अर्थ—कषायरहित जीवो के लेश्या भूत प्रज्ञापन नय मे बतलाई है वास्तव में उनके लेश्या नही है अथवा योग की प्रवृत्ति देख कर बतलाई है ॥५३३॥

आगे स्वर्गों मे लेश्या के अश दिखाते है।

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥५३४॥
तेऊ तेऊ तेऊ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य।
सुक्का य पम्मसुक्का भवणतियापुण्णगे असुहा ॥५३५॥

तीन दोय दो छै तथा, दो अरु तेरह थान।
इन ऊपर चौदह बचे, भवनादिक सुर जान॥५३४॥
पीत पीत पीता पद्म, पद्म पद्म शुक्लान।
शुक्ल शुक्ल अरु भवन-त्रय, अपूर्ण में अशुभान ॥५३५

अर्थ—भवनवासी, व्यतर और ज्योतिषी देवो मे पीत लेश्या का जघन्यअश है। सौधर्म-ईशान स्वर्ग मे पीत लेश्या का मध्य अश है। सनत्कुमार—महेन्द्र स्वर्ग मे पीतलेश्या का उत्कृष्ट अश और पद्म लेश्या का जघन्य अश है। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लातव-कापिष्ट और शुक्र-महाशुक्रस्वर्ग मे पद्मलेश्या का मध्यअश है। सतार-सहस्रारस्वर्ग मे पद्मलेश्या का उत्कृष्टअश और शुक्ललेश्या का जघन्य अश है। आनत-प्राणत, आरण-अच्युत और नवग्रीवक विमानो मे शुक्ललेश्या का मध्य अंश है नवअनुदिश, विजय, वैजन्त जयत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि विमान में शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अ श है और भवन त्रकदेवो की अपर्याप्त अवस्था मे कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या होती

है शेष देवो की पर्याप्त अवस्था मे जो लेश्या होती है वही अपर्याप्त-अवस्था मे होती है ॥५३४-३५॥

आगे द्रव्य और भावलेश्या के चिन्ह दिखाते है ।

वण्णोदयसंपादितसरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
मोहुदयखओवसमोवसमखयजजीवफंदणं भावो ॥३६॥

वर्ण उदय रँग देह का, लेश्या द्रव्य कहाय ।
मोह उदय क्षय मिश्र शम, लेश्या भाव कहाय॥५३६

अर्थ—वर्णनाम कर्म के उदय से जो शरीर का वर्ण (रग) होता है उसको द्रव्यलेश्या कहते है और मोहकर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम से जो जीव के भाव होते है उसको भाव लेश्या कहते है द्रव्यलेश्या का कारण वर्णनामकर्म का उदय है और भाव-लेश्या का कारण जीव के रागादिक भाव है ॥५३६॥

आगे द्रव्य से कृष्णादि तीन लेश्या वालो की सख्या दिखाते है ।

किण्हादिरासिमावलिअसंखभागेण भजिय पविभत्ते ।
हीणकमा कालं वा अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ॥३७॥

कृष्ण तीन आवली के, अगणित भाग जु भक्त ।
भाजित कर अरु हीन क्रम, काल उसी विधि भक्त ॥३७

अर्थ—द्रव्य की अपेक्षा कृष्णादि तीन अशुभलेश्या वालो की सख्या ससारी जीव राशि मे से पीतादि तीन शुभलेश्या वालो की सख्या कम करने से जो शेप रहे उतनी है इसमे आवली के असख्यातवे भाग का भाग देकर एक भाग को अलग रखकर शेप बहुभाग को कृष्णादि तीनो लेश्याओ को समान रूप से देकर फिर अलग रखे हुये उस भाग मे आवली के असख्यातवे भाग का भाग देकर एक भाग को अलग कर शेष बहु भाग को कृष्णलेश्या को देकर फिर अलग रखे हुए उस भाग में

आवली के असंख्यातवे भाग का भाग देकर एक भाग को कपोतलेश्या को देकर शेष भागो को नीललेश्या को देकर विचार लगाना चाहिये कि जितना जिस लेश्या के बटवारे मे द्रव्य आया उतनी उस लेश्या के जीवनि की संख्या है। काल की अपेक्षा कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याओ को जितना (अन्तर्मुहूर्त्त) काल है उसमे आवली के असख्यातवे भाग का भाग देकर उपरोक्त प्रकार कृष्णादि तीनों लेश्याओ को बाटकर उसी प्रकार विचार करना चाहिये कि जितना जिस लेश्या के बटवारे मे द्रव्य आया उतनी उस लेश्या वालो की सख्या है ॥५३७॥

आगे क्षेत्र काल से अशुभलेश्या वालो की सख्या दिखाते है।

खेत्तादो असुहतिया अणंतलोगा कमेण परिहीणा।
कालादोतीदादो अणंतगुणिदा कमा हीणा ॥५३८॥

कृष्णत्रका थल दृष्टि से, जग अनंत गुणि चीन।
क्रम क्रम क्षण से भूतहिं, नंत गुणे क्रम हीन ।५३८।

अर्थ—क्षेत्र की अपेक्षा कृष्णादि तीन अशुभलेश्या वाले जीव लोकाकाश के प्रदेशो से अनत गुणे है जिसमे कृष्णलेश्या वालो से नीललेश्या वाले जीव कुछ कम है और नीललेश्या वालो से कपोत-लेश्या वाले जीव कुछ कम है। काल की अपेक्षा कृष्णादि तीन अशुभलेश्या वाले जीव भूतकाल के जितने समय है उनसे अनतगुणे है जिनमे कृष्णलेश्या वालो से नीललेश्या वाले कुछ कम है और नील-लेश्या वालों से कपोतलेश्या वाले कुछ कम है ॥५३८॥

आगे भाव से कृष्णादि द्रव्य से पीतादि की सख्या दिखाते है।

केवलणाणाणंतिमभागा भावादु किण्हतियजीवा।
तेउतियासंखेज्जा संखासंखेज्जभागकमा ॥५३९॥

कृष्ण त्रका हैं भाव से, अमित भाग जिन ज्ञान।
पीतत्रका अगणित क्रमा, संख्या संख्य जु हान ।५३९।

अर्थ—भाव की अपेक्षा कृष्णादि तीन अशुभलेश्या वाले जीव केवलज्ञान के जितने अविभाग प्रतिच्छेद (अश) है उनके अनतवे भाग है और द्रव्य की अपेक्षा पीतादि तीन शुभलेश्या वाले जीव असंख्यात है जिसमे पीतलेश्या वालो से सख्यातवे भाग कम पद्मलेश्या वाले जीव है और पद्मलेश्या वालो से असख्यातवे भाग कम शुक्ललेश्या वाले जीव है ॥५३९॥

आगे क्षेत्र से शुभलेश्या वालो की सख्या दिखाते है ।

जोइसियादो अहिया तिरिक्खसण्णिस्स संखभागो दु ।
सूइस्स अंगुलस्स य असंखभागं तु तेउतियं ॥५४०॥

ज्योतिष से कुछ अधिक हैं, संख्यभाग मन ढोर ।
सूक्ष्मांगुल के असंख्ये, भाग पीत त्रय जोर ॥५४०॥

अर्थ—क्षेत्र की अपेक्षा ज्योतिषी देवो से कुछ अधिक पीतलेश्या वाले जीव है पीतलेश्या वाले सैनीतिर्यच जीवो के परिमाण से सख्यात गुणे कम पद्मलेश्या वाले जीव है और सूक्ष्मागुल के असख्यातवे भाग शुक्ललेश्या वाले जीव है ॥५४०॥

आगे ज्योतिषी और सैनी पशुओ की सख्या दिखाते है ।

वेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरं तु जोइसियमाणं ।
तस्स य संखेज्जदिमं तिरिक्खसण्णीण परिमाणं ॥५४१॥

प्रतरांगुल पैंसठ सहस, पनसौ छत्तिस भाग ।
जगतविषें ज्योतिष समन, पशू संख्यवें भाग ॥५४१॥

अर्थ—पेसठहजार पाचसौ छप्पन (६५५५६) प्रतरागुल का जगत्प्रतर मे भाग देने से जो परिमाण आवे उतने ज्योतिपी देव है और ज्योतिपी देवों से संख्यातवे भाग कम सैनी तिर्यच है ॥५४१॥

आगे काल भाव से शुभलेश्यावालों की सख्या दिखाते है ।

तेउदु असंखकप्पा पल्लासंखेज्जभागया सुक्का ।
ओहि असखेज्जदिमा तेउतिया भावदो होंति ॥५४२॥

कल्प असंख्ये पीत दुक, पल्य असंख्ये भाग ।
शुक्ल भाव से पीत त्रय, अवधि असंख्ये भाग ॥५४२॥

अर्थ—काल की अपेक्षा पीत और पद्मलेश्यावाले जीव असख्यात-कल्पकाल के जितने समय है उतने है जिसमे पीतलेश्या वालो से संख्यातवे भाग कम पद्मलेश्यावाले जीव है और पल्य के असख्यातवे भाग शुक्ललेश्यावाले जीव है। भाव की अपेक्षा पीतादि तीनशुभ-लेश्या वाले जीव अवधिज्ञान के जितने भेद है उसके असख्यातवे भाग है जिनमे पीतलेश्यावालो से सख्यातवे भाग कम पद्मलेश्यावाले जीव है और पद्मलेश्यावालो से असंख्यातवे भाग कम शुक्ललेश्या वाले जीव है ॥५४२॥

आगे लेश्याओ का क्षेत्र दिखाते है।

सट्ठाणसमुग्घादे उववादे सव्वलोयमसुहाणं ।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ॥५४३॥

समुद्घात उत्पाद से, अशुभ स्वथल सब लोक ।
लोक असंख्ये भाग थल, पीतादिक को थोक ॥५४३॥

अर्थ—कृष्णादिक तीन अशुभलेश्याओ का क्षेत्र सामान्य से निज स्थान, वेदना, कषाय और मरणातिकसमुदघात तथा उत्पाद की अपेक्षा से सब लोक है सख्यातसूच्यागुल से जगत्प्रतर को गुणे जो परिमाण आवे उतना विहारस्थानका क्षेत्र है तथाघनागुल के वर्ग से असख्यात जगच्छ्रेणी को गुणे जो परिमाण आवे उतना विक्रियकसमुदघात का क्षेत्र है। तैजस, आहारक और केवलसमुदघात इन लेश्याओ मे होता नही तथा पीतादि तीन शुभलेश्याओं का क्षेत्र निजस्थान, विहारस्थान, समुदघात और उत्पाद की अपेक्षा लोक का असख्यातवा भाग है

इनका विशेष नीचे लिखते है ॥५४३॥

आगे उत्पाद क्षेत्र के निकालने की विधि दिखाते है।

मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ॥५४४॥

मरें असंख्यरु मोड़ गति, उन बहु भाग असंख्य।
उनमें दूर असंख्य हैं, पुनि उत्पाद असंख्य ॥५४४॥

अर्थ—सौधर्म-ईसानस्वर्ग के देवो की सख्या मे असख्यातवे भाग वरावर प्रतिसमय मरने वाले, इनमे असख्यातवे भाग ऋजुगति और शेप वहुभाग वरावर मोडागति वाले, इनमे असख्यातवे भाग निकट और शेष वहुभाग वरावर दूरमरणातिक वाले और इनमे असख्यातवे भाग वरावर उत्पाद वाले जीवो का परिमाण है ॥५४४॥

निजक्षेत्र :—पीतलेश्या वाले जीव असख्यात है इनमे सख्यात का भाग देनेसे जो लव्ध आवे उसमे एक भाग को छोडकर शेष वहु भाग वरावर निजस्थान वाले जीव है इनको घनागुल के सख्यातवे भाग से गुणा करने पर जो परिमाण आवे उतना **निजस्थान का क्षेत्र** है।

विहारक्षेत्र :—उपरोक्त उस एक भाग मे फिर सख्यात का भाग देने से जो लव्ध आवे उसमे एक भागको छोडकर शेप वहुभाग वरावर विहारस्थान वाले जीव है इनको सख्यातघनागुल से गुणे जो परिमाण आवे उतना **विहार क्षेत्र** है।

वेदनासमुदघात का क्षेत्र :— उपरोक्त उस एक भाग मे फिर सख्यात का भाग देने से जो लव्ध आवे उसमे एक भाग को छोडकर शेप वहु भाग वरावर वेदनासमुदघात वाले जीव है उनको और घनागुल के सख्यातवे भाग को साढे चार वार गुणा कर के जो परिमाण आवे उससे गुणे जो परिमाण आवे उतना **वेदनासमुदघात का क्षेत्र** है।

कषायसमुद्घात का क्षेत्र :—उपरोक्त उस एक भाग मे फिर सख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमे एक भाग को छोडकर शेष बहुभाग बराबर कषाय समुद्घात वाले जीव है इनको और घनागुल के सख्यातवे भाग को साडे चार वार गुणा करके जो परिमाण आवे उनसे गुणे जो परिमाण आवे उतना कषायसमुद्घात का क्षेत्र है।

विक्रियकसमुद्घात का क्षेत्र :—उपरोक्त उस एक भाग बराबर विक्रियक समुद्घात वाले जीव है इनको सख्यातघनागुल से गुणे जो परिमाण आवे उतना विक्रियकसमुद्घात का क्षेत्र है।

मरणांतिकसमुद्घात का क्षेत्र :—प्रतरागुल के सख्यातवे भाग से जगत्श्रेणी के सख्यातवे भाग को गुणे जो परिमाण आवे उससे और मरणांतिकसमुद्घात वाले व्यतर देवो के परिमाण को गुणे जो परिमाण आवे उतना मरणांतिकसमुद्घात का क्षेत्र है।

तैजस और आहारकसमुद्घात का क्षेत्र :—सख्यात से सख्यात घनागुल को गुणे जो परिमाण आवे उतना तैजस और आहारक समुद्घात का क्षेत्र है। केवल समुद्घात इस लेश्या मे है नही।

उत्पादक्षेत्र :—डेढराजू लम्बे संख्यातसूक्ष्मागुल के बराबर चौडे और इतने ही ऊचे प्रदेशो के घनफल को सौधर्म-ईसान स्वर्ग के उत्पाद वाले देवो के परिमाण से गुणे जो परिमाण आवे उतना पीतलेश्या के उत्पाद क्षेत्र का परिमाण है।

निजक्षेत्र :—पद्मलेश्या वालो की सख्या असख्यात है उसमे सख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमे एक भाग को छोड कर शेष बहुभाग बराबर निजस्थान वाले जीव है इनको सख्यातघनागुल से गुणे जो परिमाण आवे उतना निजस्थान का क्षेत्र है।

विहारक्षेत्र :—फिर उस एक भाग मे सख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमे एक भाग को छोड कर शेष बहु भाग बराबर विहार-स्थान वाले जीव है इनको सख्यात घनागुल से गुणे जो परिमाण आवे उतना विहारस्थान का क्षेत्र है।

वेदनासमुदघात का क्षेत्र :—फिर उस एक भाग मे सख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमे एक भाग को छोडकर शेप वहुभाग वरावर वेदनासमुदघात वाले जीव है इनको और घनागुल के सख्यातवे भाग को साढेचार वार गुणा कर के जो परिमाण आवे उससे गुणे जो परिमाण आवे उतना वेदनासमुदघात का क्षेत्र है।

कपायसमुदघात का क्षेत्र :–उस एक भाग वरावर कपायसमुदघात वाले जीव है और इनको घनागुल के सख्यातवे भाग से साढे चार वार गुणा करके जो परिमाण आवे उससे गुणे जो परिमाण आवे उतना कपायसमुदघात का क्षेत्र है।

विक्रियसमुदघात का क्षेत्र :—सनत्कुमार-महेन्द्र स्वर्ग के विक्रियकसमुदघात वालो के परिमाण को सख्यात घनागुल से गुणे जो परिमाण आवे उतना विक्रियक समुदघात का क्षेत्र है।

मरणांतिकसमुदघात का क्षेत्र :—प्रतरागुल के सख्यातवे भाग से तीन राजू क्षेत्र को गुणे जो परिमाण आवे उससे और सनत्कुमार-महेन्द्र स्वर्ग के मरणातिकसमुदघात वाले देवो के परिमाणको गुणे जितना परिमाण आवे उतना **मरणांतिकसमुदघात** का क्षेत्र है।

तैजस और आहारिक समुदघात का क्षेत्र:—तैजस और आहारकसमुदघात का क्षेत्र पीतलेश्या के वरावर है केवलसमुदघात इस लेश्या मे है नही।

उत्पादक्षेत्र :—सख्यात प्रतरागुल से तीन राजू को गुणे जो परिमाण आवे उससे और सनत्कुमार–महेन्द्र स्वर्ग के उत्पाद वाले देवो के परिमाण को गुणे जो परिमाण आवे उतना **उत्पाद का क्षेत्र** है।

निजक्षेत्र :—शुक्ललेश्यावालों की सख्या असख्यात है इसमे पल्य के असख्यातवे भाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमे एक भाग को छोडकर शेप वहु भाग वरावर निजस्थान वाले जीव है इनको सख्यातघनागुल से गुणे जो परिमाण आवे उतना **निजस्थान का क्षेत्र** है।

विहारक्षेत्र :- फिर उस एक भाग मे पल्य के असख्यातवे भाग का भाग देने मे जो लब्ध आवे उसमे एक भाग को छोडकर शेष बहु भाग बराबर विहारस्थान वाले जीव है इनको सख्यातघनागुल मे गुणे जो परिमाण आवे उतना विहारस्थान का क्षेत्र है।

वेदनासमुदघात का क्षेत्र :-फिर उन एक भाग मे पल्य के असख्यातवे भाग का भाग देने मे जो लब्ध आवे उसमे एक भागको छोडकर शेप बहु भाग बराबर वेदनासमुदघात वाले जीव है इनको और घनागुल के सख्यातवे भाग को साडेचार वार गुणे जो परिमाण आवे उनमे गुणे जो परिमाण आवे उतना वेदनासमुदघात का क्षेत्र है।

कपायसमुदघात का क्षेत्र :—फिर उस एक भाग मे पल्य के असख्यातवे भाग का भाग देने मे जो लब्ध आवे उसमे एक भाग को छोडकर शेप बहु भाग बराबर कपायसमुदघात वाले जीव है इनको और घनागुल के सख्यातवे भाग को साढे चार वार गुणे जो परिमाण आवे, उसमे गुणे जो परिमाण आवे उतना कपायसमुदघात का क्षेत्र है।

विक्रियसमुदघात का क्षेत्र :—उन एक भाग के बराबर विक्रयकसमुदघातवाले जीव है इनको सख्यात घनागुल से गुणे जो परिमाण आवे उतना विक्रियकसमुदघात का क्षेत्र है।

मरणांतकसमुदघात का क्षेत्र :—छै राजू लम्बे सूक्ष्मागुल के सख्यातवे भाग बराबर चौडे और ऊचे क्षेत्र का घनफल जितना आवे उसमे सख्यात को गुणे जितना परिमाण आवे उतना मरणांतिकसमुदघात का क्षेत्र है।

तैजस और आहारक समुदघात का क्षेत्र :—तैजस और आहारकसमुदघात का क्षेत्र पीतलेश्या बराबर है।

केवलसमुदघात का क्षेत्र :— केवल समुदघात का क्षेत्र सब लोक है विस्तार से कथन दोहा न० ५५० है।

उत्पादक्षेत्र :—छै राजू लम्बे, सख्यातसूक्ष्मागुल बराबर चौडे

और उतने ही ऊचे क्षेत्र का घनफल जितना आवे उससे सख्यात को गुणे जो परिमाण आवे उतना **उत्पाद का क्षेत्र** है ॥५४४॥

आगे शुक्ल का क्षेत्र और अशुभो का स्पर्श दिखाते है ।

सुक्कस्स समुग्घादे असंखलोगा य सव्वलोगो य ।
फास सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ॥५४५॥

जग असंख्य थल शुक्ल का, समुदघात से लोक ।
कृष्णादिकत्रय अशुभ का, परसन है सब लोक ।५४५।

अर्थ—शुक्ललेश्या का क्षेत्र लोक का असख्यातवा भाग है किन्तु केवलसमुदघात की अपेक्षा सव लोक है और कृष्णादि तीन अशुभलेश्याओ का स्पर्शन (त्रैकालिक क्षेत्र) सब लोक है ॥५४५॥

आगे निजस्थान और विहार से पीत का स्पर्श दिखाते है ।

तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु ।
अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥५४६॥

पीत फर्स निज थान से, लोक असंख्ये भाग ।
अरु विहार चौदह विषें, कुछ कम आठ विभाग ।५४६।

अर्थ—पीतलेश्या का निजस्थान की अपेक्षा लोक के असख्यातवें भाग मे स्पर्श है और पीतलेश्या का विहारस्थान की अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागों मे सेकुछ कम आठ भागो मे स्पर्श है ॥५४६॥

आगे समुदघातादि से पीत का स्पर्श दिखाते है ।

एवं तु समुग्घादे णव चोद्दसभागयं च किंचूणं ।
उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ॥५४७॥

समुदघात उत्पाद अरु, मरणांतिका त्रिभाग ।
चौदह भागहिं घाटि कुछ, आठ डेड नव भाग ।५४७।

अर्थ—पीत लेश्या का वेदना, कषाय और विक्रियकसमुदघात

की अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागो मे से कुछ कम आठ भागो मे स्पर्श है, उत्पाद की अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागो मे से कुछ कम डेड़ भाग मे स्पर्श है और मरणानिकसमुदघात की अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागो मे से कुछ कम नव भागो मे स्पर्श है तैजस और आहारक समुदघात की अपेक्षा संख्यात घनागुल बराबर स्पर्श है ॥५४७॥

आगे विहारस्थानादि मे पद्म का स्पर्श दिखाते है।

पम्मस्स य सट्टाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं ।
अड चोद्दस भागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥५४८॥

पद्मा का निज थान से, समुदघात दो भाग ।
चौदह भागों के विषें, कुछ कम आठ जु भाग ॥५४८॥

अर्थ—पद्म लेश्या का विहारस्थान, वेदना, कषाय, विक्रियक और मरणानिकसमुदघात की अपेक्षा त्रस नाली के चौदह भागो मे से कुछ कम आठ भागो मे स्पर्श है पद्मलेश्या का तैजस और आहारक समुदघात की अपेक्षा सख्यातघनागुल बराबर स्पर्श है और पद्मलेश्या निजस्थान की अपेक्षा लोक के असख्यात भागो मे से एक भाग बराबर स्पर्श है ॥५४८॥

आगे उत्पाद मे पद्म तीन स्थान मे शुक्ल का स्पर्श दिखाते है।

उववादे पढमपदं पणचोद्दसभागयं च देसूणं ।
सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोद्दसा हीणा ॥५४९॥

उत्पादा चौदह विषें, कुछ कम पांच विभाग ।
शुक्ल तीन थल घाटि कुछ, चौदह में छै भाग ॥५४९॥

अर्थ—पद्म लेश्या का उत्पाद की अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागो मे से कुछ कम पाच भागो मे स्पर्श है शुक्ल लेश्या का निजस्थान की अपेक्षा लोक के असख्यातवे भाग बराबर स्पर्श है। विहार, वेदना,

तेतिस सत्रह सात दो, अष्टादश तेतीस ।
सागर से कुछ अधिक ही, काल कहा जगदीश ॥५२

अर्थ—कृष्णादिक छहो लेश्याओ का उत्कृष्ट काल क्रम से तेतीस, सत्रह, सात, दो, अट्ठारह और तेतीस सागर है ॥५५२॥

आगे कृष्णादि का विरह काल दिखाते हैं।

अंतरमवरुक्कस्सं किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु ।
उवहीणं तेत्तीसं अहियं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥५५३॥
तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु ।
पोग्गलपरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ॥५४॥

अशुभों का अंतर जघन, अन्तर्मुहूर्त मान ।
तेतिस सागर कुछ अधिक, वर अंतर पहिचान॥५३
पीतादिक अंतर जघन, अन्तर्मुहूर्त मान ।
अगणित पुद्गल परिणमन, वर अंतर पहिचान॥५४

अर्थ—कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याओ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेतीस सागर है तथा पीतादिक तीन शुभ लेश्याओ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल है कारण पीतादि लेश्या को छोड़ कर एकेन्द्रिय जीव हो जावे तो फिर पचेन्द्रिय जीव होवे तभी पीतादि को पा सकता है ॥५५३-५५४॥

आगे भाव और अल्प बहुत्व को दिखाते हैं।

भावादो छल्लेस्सा ओदयिया होंति अप्पबहुगं तु ।
दव्वपमाणे सिद्धं इदि लेस्सा वण्णिदा होंति ॥५५॥

भाव दृष्टि लेश्या छहों, औदायिक है मान ।
लेश्या संख्या पूर्व लख, अल्पबहुत्व पिछान ॥५५५

अर्थ—भाव की अपेक्षा छहों लेश्याओं का भाव औदायिक है और अल्प-बहुत्व लेश्या के संख्याधिकार में पूर्व वर्णन किया है उससे प्रसिद्ध हो जाता है ॥५५५॥

आगे लेश्या रहित जीवों का स्वरूप दिखाते हैं।

किण्हादिलेस्सरहिया संसारविणिग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ॥५६॥

कृष्णादिक लेश्या रहित, सुख अनंत भव पार ।
सिद्धपुरी को प्राप्त जो, बिन लेश्या जिय सार ॥५५६॥

अर्थ—जो कृष्णादिक छहो लेश्याओं से रहित हैं, संसारदुःख से पार हो गये हैं, अनंतसुख के धारी हैं और सिद्धपुरी को प्राप्त हो चुके हैं वे लेश्या रहित जीव हैं ॥५५६॥

लेश्याधिकार समाप्त ।

आगे भव्याभव्य का स्वरूप दिखाते हैं।

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।
तव्विवरीयाऽभव्वा संसारादो ण सिज्झंति ॥५५७॥

कर्म क्षपण के योग्य जे, भव्य जीव सो मान ।
कर्म क्षपण के योग्य नहिं, सो अभव्य जिय जान ।५५७

अर्थ—जो कर्म नाश करने की योग्यता रखते हैं उनको भव्य जीव कहते हैं जैसे अवांझ स्त्री संतान उत्पन्न करने की योग्यता रखती है और जो कर्म नाश करने की योग्यता नहीं रखते हैं उनको अभव्य जीव कहते हैं जैसे बाँझ स्त्री संतान उत्पन्न करने की योग्यता नहीं

रखती ॥५५७॥

आगे भव्य जीव मे भेद दिखाते हैं।

भव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते भवंति भवसिद्धा।
ण हु मलविगमे णियमा ताणं कणओवलाणमिव ॥५५८॥

निकट और दूरानदू, अभव्य सम त्रय भव्य।
बाल वृद्ध विधवा तिया, दृष्टान्ता त्रय लव्य ॥५५८॥

अर्थ—भव्य जीव तीन प्रकार के होते हैं निकटभव्य, दूरानदूर-भव्य और अभव्य तुल्य भव्य इन तीनो के क्रम से तीन उदाहरण है जैसे बालक स्त्री के पुत्र होना तैसे निकट भव्य के दो तीन भव मे मुक्ति होना जैसे वृद्ध स्त्री के पुत्र होना तैसे दूरानदूर भव्य के बहुत भवोंके पीछे मुक्ति होना और विधवा स्त्री के पुत्र न होना तैसे अभ-व्य-तुल्य-भव्य के कभी मुक्ति न होना ॥५५८॥

आगे भव्याभव्यता मे रहित जीवो को दिखाते है।

ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा।
ते जीवा णायव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ॥५५९॥

मोक्ष सुःख को प्राप्त अरु, तजा नंत संसार।
ते जिय भव्याभव्य नहिं, ऐसा लेहु विचार ॥५५९॥

अर्थ—जिनका पचपरावर्तन रूप ससार छूट गया है और मोक्ष सुख को पा रहे है वे जीव न भव्य है न अभव्य है कारण उनके अब कोई नवीन अवस्था धारण करना शेष नही है ॥५५९॥

आगे भव्याभव्य जीवों की सख्या दिखाते है।

अवरो जुत्ताणंतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं।
तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ॥५६०॥

युक्तानंत जघन्य वत्, सब अभव्य परिमाण।
संसारी में वे घटें, शेष भव्य जिय जान ॥५६०॥

अर्थ—जघन्य युक्तानत वरावर अभव्य जीव है इनको सव ससारी जीवो की सख्या मे कम करने से जो शेप सख्या रहती है उतने भव्य जीव है ॥५६०॥

॥ भव्याधिकार समाप्त ॥

आगे सम्यक्त्व का स्वरूप दिखाते है।

छप्पचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥५६१॥

छै पन अरु नव तत्त्व का, वर्णन किया जिनेश।
वह सरधा सम्यक्त्व है, निज या पर उपदेश ॥५६१॥

अर्थ—जिस प्रकार श्री जिनेद्र भगवान ने छै द्रव्य, पचास्तिकाय और नव तत्त्व का वर्णन किया है उसको उसी प्रकार जो श्रद्धा करता है उसके सम्यक्त्व होता है उसके उस परिणाम को सम्यक्त्व कहते है ॥५६१॥

आगे छै द्रव्यो के वर्णन के लिए सात अधिकार दिखाते है।

छद्दव्वेसु य णामं उवलक्खणुवाय अत्थणे कालो।
अत्थणखेत्तं संखाठाणसरूवं फलं च हवे ॥५६२॥

छै द्रव्यों के कथन को, कहें सात अधिकार।
नाम चिन्ह थिति क्षेत्र अरु, संख्य रूप उपकार ॥५६२॥

अर्थ—छै द्रव्यों का वर्णन नाम, चिन्ह, स्थिति, क्षेत्र, सख्या, स्वरूप और उपकार इन नवअधिकारो द्वारा आगे दिखाते है ।५६२।

आगे द्रव्य में भेद और रूपी अरूपी दिखाते हैं।

जीवाजीवं दव्वं रूवारूवित्ति होदि पत्तेयं।
संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूव गया ॥५६३॥

जीवाजीव दु द्रव्य हैं, दोनों रूपा रूप।
संसारी सब रूपिया, कर्म रहित विन रूप॥५६३॥

अर्थ—जीव और अजीव के भेद से द्रव्य दो प्रकार की है वे दोनो रूपी और अरूपी है जिसमे संसारी जीव रूपी है और कर्म रहित मुक्त जीव अरूपी है ॥५६३॥

आगे अजीव द्रव्य मे रूपी और अरूपी दिखाते हैं।

अज्जीवेसु य रूपी पुग्गलदव्वाणि धम्म इदरोवि।
आगासं कालोवि य चत्तारि अरूविणो होंति ॥५६४॥

पुद्गल धर्माधर्म नभ, काल अजीव पिछान।
पुद्गल रूपी शेष सब, विनारूप के जान ॥५६४॥

अर्थ—पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये पाच अजीव द्रव्य हैं इनमे पुदगल द्रव्य केवल रूपी है और शेष सब अरूपी द्रव्य हैं ॥५६४॥

आगे द्रव्यों के चिन्ह दिखाते हैं।

उवजोगो वण्णचऊ लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु।
गदिठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ॥५६५॥

उपयोगी जिय पुद्गला, फर्शादिक युत मान।
गति थिति गाहन वर्तना, धर्मादिक के जान ॥५६५॥

अर्थ—जीवद्रव्य का लक्षण उपयोग (ज्ञान, दर्शन) है, पुद्गल-द्रव्य का लक्षण स्पर्श, रस, गंध और वर्ण है, धर्मद्रव्य का लक्षण

गमन करनेवालो को गमन कराना है, अधर्मद्रव्य का लक्षण ठहरने वालो को ठहराना है, आकाश द्रव्य का लक्षण स्थान के आवश्यकों को स्थान देना है और कालद्रव्य का लक्षण नये को पुरानी तथा पुराने को नई अवस्था देना है ॥५६५॥

आगे जीव और पुदगल को क्रियावान दिखाते है।

गदिठाणोग्गहकिरिया जीवाणं पुग्गलाणमेव हवे।
धम्मतिये णहि किरिया मुक्खा पुण साधका होंति ॥५६६॥

गति थिति अवगाहन क्रिया, जिय पुद्गल में होय।
नहिं नभ धर्माधर्म में, ये कारण उन जोय ॥५६६॥

अर्थ—गमन करने की क्रिया, ठहरने की क्रिया अथवा एक स्थान को छोडकर दूसरे स्थान में निवास करने की क्रिया जीव और पुद्गल द्रव्य मे होती है धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य मे नही होती ये द्रव्य उन (जीव, पुद्गल) की क्रियाओ मे कारणस्वरूप है ॥५६६॥

आगे उस क्रिया मे सहकारी द्रव्यो को दिखाते है।

जत्तस्स पहं ठत्तस्स आसणं णिवसगस्स वसदी वा।
गदिठाणोग्गहकरणे धम्मतियं साधगं होदि ॥५६७॥

यथा गमन को मार्ग है, ठहरन आसन मान।
रहने को साधक भवन, धर्म त्रयी त्यों जान॥६७॥

अर्थ—जैसे पथिक को गमन करने मे मार्ग सहकारी कारण होता है तैसे जीव और पुद्गलो को गमन करने मे धर्मद्रव्य सहकारी कारण होता है जैसे बैठने वाले पथिक को आसन सहकारी कारण होता है तैसे जीव और पुदगलो को ठहरने मे अधर्मद्रव्य सहकारी कारण होता है जैसे निवास करने वाले पथिक को भवन सहकारी कारण होता है तैसे जीव और पुद्गलो को निवास करने मे आकाश-

द्रव्य सहकारी कारण होता है प्रेरक नही ॥५६७॥

आगे काल को परिणमन में सहकारी दिखाते है।

वत्तणहेदू कालो वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु।

कालधारेणेव य वट्टंति हु सव्वदव्वाणि ॥५६८॥

वर्तन गुण सब द्रव्य में, वर्तन कारण काल।

कालाश्रय से परणवे, सब द्रव्यें त्रैकाल ॥५६८॥

अर्थ—सब द्रव्यो मे परिणमनस्वभाव सदा से विद्यमान है फिर भी उनको परिणमन कराने मे बाह्यकारण कालद्रव्य है जिसके आश्रय से सब द्रव्यो मे अपने २ स्वभाव (गति आदि) रूप सदा परिणमन होता रहता है ॥५६८॥

आगे धर्मादिक मे परिणमन दिखाते है।

धम्माधम्मादीणं अगुरुगुलहुगं तु छहिं वि वड्ढीहि।

हाणीहिं वि वड्ढंतो हायंतो वट्टदे जह्मा ॥५६९॥

धर्मादिक में अगुरुलघु, वृद्धि हानि छै रूप।

बढ़ता घटता परिणवे, यों परिणमन स्वरूप ॥५६९॥

अर्थ—धर्मादिक छहो द्रव्यो मे एक अगुरुलघू (घटना बढना) गुण होता है इस गुण के अनतानत अशो मे और इसके निमित से इन द्रव्यों के अन्य गुणों मे भी छै प्रकार की वृद्धि (अनतवेभागवृद्धि, असंख्यातवेभागवृद्धि, सख्यातवेभागवृद्धि, सख्यातगुणीवृद्धि, असख्यातगुणीवृद्धि, अनतगुणीवृद्धि) और छै प्रकार की हानि सदा (अनतवे-भागहानि, असख्यातवेभागहानि, सख्यातवे भागहानि, असख्यातगुणी-हानि, असख्यातगुणीहानि, अनतगुणीहानि) होती रहती है इस बढ-वारी और घटवारी से इन द्रव्यो मे परिणमन सिद्ध होता है लेकिन यहा इतना समझ लेना परम आवश्यक है कि शुद्धद्रव्यो मे प्रदेश परि-

णमन नही होता और गुण परिणमन भी शुद्ध परमाणु को छोडकर शेप सव शुद्ध द्रव्यो मे पर की अपेक्षा से परिणमन-माना है अशुद्ध (जीवपुद्गल) द्रव्यो मे प्रदेश परिणमन और गुण परिणमन ये दोनो परिणमन सदा होते रहते है ।।५६९।।

आगे काल को परिणमन मे सहकारी दिखाते है ।

ण य परिणमदि सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं हवदि हु कालो सयं हेदु ।।५७०।।

अन्य रूप नहिं परणवे, परहिं न स्वपर स्वरूप ।
जिस स्वभाव जो परणवे, वह उन कारण रूप ।।५७०।।

अर्थ—काल स्वय अन्य रूप नही होता न अन्य को अपने रूप करता न अन्य को अन्य द्रव्य रूप करता किन्तु जो द्रव्य जिस अपने स्वरूप से स्वरूपान्तर होता है उसको वह वाह्य सहकारी कारण वनता है ।।५७०।।

आगे उन पर्यायो की स्थिति एक समय दिखाते है ।

कालं अस्सिय दव्वं सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं सुद्धणये होदि खणमेत्त ।।५७१।।

कालाश्रय से द्रव्य सब, बदले स्वस्व पर्याय ।
उन पर्यायों की थिती, एक समय जिन गाय ।।५७१ ।।

अर्थ—काल के आश्रय से सव द्रव्ये अपनी २ पर्यायो को वदलती है इन पर्यायो की स्थिति एक समय की होती है ।।५७१।।

आगे व्यवहार काल का स्वरूप दिखाते है ।

ववहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओत्ति एयट्ठो ।
ववहारअवट्ठाणट्ठिदी हु ववहारकालो दु ।।५७२।।

विकल्प पर्यय भेद अरु, व्यवहारा इक वैन।
पर्ययथिर की जो थिती, वाह्य काल वह ऐन ॥५७२॥

अर्थ—व्यवहार, विकल्प, पर्याय और भेद ये चारो शब्दो का एक ही अर्थ है जो पर्याय ठहरती है वह उसकी जघन्य स्थिति (एक समय) है उस जघन्य स्थिति को व्यवहार काल कहते है ॥५७२॥

आगे समय का स्वरूप दिखाते हैं।

अवरा पज्जायठिदी खणमेत्तं होदि तं च समओत्ति।
दोण्णमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ॥५७३॥

लघु पर्यय थिती मात्र क्षण, उसको समय वखान।
दो अणु विछुरण जिता क्षण, उतना समय कहान।५७३।

अर्थ—पर्याय की जघन्य स्थिति एक समय की होती है उसको समय कहते हैं दूसरी रीति से दो परमाणुओ के जुदे होने मे जितना समय लगता है उसको समय कहते है ॥५७३॥

आगे अन्तर्मुहूर्त्त का स्वरूप दिखाते हैं।

आवलिअसंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो।
सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥५७४॥
अट्ठत्तीसद्धलवा णाली वेणालिया मुहुत्तं तु।
एगसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ॥५७५॥

आवलि असंख्य समय की, संख्य आवली श्वास।
सात श्वास का तोक इक, सात तोक लव खास।५७४।
घडि साढे अडतीस लव, मुहूर्त्त घटिका दोय।
एक समय कम महूरत, अन्तर्मुहूर्त्त जोय ॥५७५॥

अर्थ—असख्यातसमयो की एक आवली होती है सख्यात आवली का एक श्वासोश्वास होता है सात श्वासोश्वास का एक स्तोक होता है सात स्तोक का एक लव होता है। साढे अडतीस लव की एक घडी होती है दो घडी का एक महूर्त्त होता है और एक समय कम एकमुहूर्त्त को उत्कृष्टअन्तर्मुहूर्त्त (भिन्नर्मुहूर्त्त) कहते है एक समय अधिक आवली को जघन्यअन्तर्मुहूर्त्त कहते है और इसके मध्य के अनेक भेद है ॥५७४-५७५॥

आगे काल के और भी भेद दिखाते है।

दिवसो पक्खो मासो उडु अयणं वस्समेवमादी हु।
संखेज्जासंखेज्जाणंताओ होदि ववहारो ॥५७६॥

दिवस पक्ष महिना ऋतू, अयन वर्ष अवधार।
संख्यासंख्य अनंत ये, भेद काल व्यवहार ॥५७६॥

अर्थ–दिवस, पक्ष, महीना, ऋतु, अयन (छैमाही) वर्ष, सख्यात काल, असख्यातकाल और अनतकाल ये सब व्यवहार काल के भेद है ॥५७६॥

आगे व्यवहार काल का क्षेत्र दिखाते हैं।

ववहारो पुण कालो माणुसखेत्तम्हि जाणिदव्वो दु।
जोइसियाण चारे ववहारो खलु समाणोत्ति ॥५७७॥

यह व्यवहारा काल सब, मनुष क्षेत्र में मान।
कारण यहँ ज्योतिष गमन, यों व्यवहार समान ५७७

अर्थ—यह व्यवहारकाल केवल मनुष्यक्षेत्र मे ही है कारण यहा पर ही ज्योतिषी देवो के विमान गमन करते है इसलिये इनके गमन का काल और व्यवहार काल दोनो समान रूप से स्पष्ट है ॥५७७॥

आगे भूतकाल का परिमाण दिखाते है।

व्यवहारो पुण तिविहो तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु ।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणं तु ॥५७८॥

वर्तमान गत आगता, तीन भेद व्यवहार ।
संख्य आवली सिद्ध को, गुणे भूत निरधार ॥५७८॥

अर्थ– मुख्य व्यवहारकाल तीन प्रकार का होता है भूत, भविष्य और वर्तमान जिसमें सिद्ध राशि का सख्यात आवली के समयो से गुणा करने पर जो परिमाण आवे उतना भूतकाल का परिमाण है जो कि व्यतीत हो चुका ॥५७८॥

आगे वर्तमान और भविष्य का परिमाण दिखाते है ।

समओ हु वट्टमाणो जीवादो सव्वपुग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो ॥५७९॥

वर्तमान इक समय भर, जीवरु पुद्‌गल राश ।
नंत गुणा है भाविक्षण, यों व्यवहार प्रकाश ॥५७९॥

अर्थ—वर्तमानकाल का परिमाण एक समय मात्र है और भविष्य काल का परिमाण सब जीव तथा सब पुद्‌गल राशि के परिमाणसे अनतगुणा है इस प्रकार व्यवहार काल के तीनो भेदो का परिमाण है ॥५७९॥

आगे निश्चय और व्यवहार से काल को नित्य दिखाते है ।

कालोत्ति य ववएसो सब्भावपरूवओ हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥५८०॥

काल नाम से काल को, चिर स्थाई मान ।
व्यय उत्पत्ति संतान से, समय नित्य पहिचान ।५८०।

अर्थ–निश्चयकाल नित्य है और व्यवहारकाल (समय) अनित्य

है किन्तु सदा काल उपजता है और विनशता है इसलिये संतान क्रम से यह भी नित्य है ॥५८०॥

आगे सब द्रव्यो की सामान स्थिति दिखाते है।

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकालअत्थपज्जाये।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो ॥५८१॥

छहों द्रव्य की तुल्य तिथि, गुण प्रदेश पर्याय।
ये मिलतीं त्रैकाल में, इससे थिति ठहराय ॥५८१॥

अर्थ—छहो द्रव्य की ठहरने की स्थिति समान है अर्थात् अनादि निधन है इन द्रव्यो की गुणपर्याय और प्रदेशपर्याय ये दो पर्याये है ये इनमे सदा (तीनकाल) पाई जाती है जिससे इन द्रव्यो की सदा विद्यमानता रहती है ॥५८१॥

आगे गुण और प्रदेशपर्याय बराबर द्रव्य को दिखाते है।

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जाया वियणपज्जया चावि।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ॥५८२॥

वर्तमान गत आगता, गुण प्रदेश पर्याय।
जितनी हैं इक द्रव्य में, उतना द्रव्य कहाय ॥५८२॥

अर्थ— जिस किसी एक द्रव्य मे भूत, भविष्य और वर्तमान सम्बन्धी जितने पर्याये है उतना ही वह द्रव्य है ॥५८२॥

आगे धर्माधर्म का निवास स्थान दिखाते है।

आगास वज्जित्ता सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि वहिं।
वावी धम्माधम्मा अवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ॥५८३॥

नभ को तज कर शेष का, लोकाकाश निवास।
नित्य थिती व्यापक अचल, धर्माधर्म सु खास ॥५८३॥

अर्थ–आकाश को छोडकर शेप सब द्रव्यो का निवास लोकाकाश मे है जिसमे धर्म और अधर्म द्रव्य का निवास तिली तैल की तरह व्यापक रूप से सब लोकाकाश मे है ये नित्य है, अचल है, सदा काल से अवस्थित है तथा आगे भी सदाकाल अवस्थित रहेगे और वर्तमान मे अवस्थित है ॥५८३॥

आगे एक जीव का निवास स्थान दिखाते है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगोत्ति ।
अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावडो जीवो ॥५८४॥

अंगुल असंख्य भाग से, सब ही लोकाकाश ।
गुण संकुचन विस्तार से, एक जीव का वास ॥५८४॥

अर्थ—एक जीव का निवास अंगुल के असख्यातवे भाग से लेकर सब लोक मे हो सकता है कारण जीव के प्रदेशो मे सकोचने और फैलने की शक्ति है ॥५८४॥

आगे पुद्गल और काल का निवास स्थान दिखाते है ।

पोग्गलदव्वाणं पुण एयपदेसादि होंति भजणिज्जा ।
एक्केक्को दु पदेसे कालाणूणं धुवो होदि ॥५८५॥

इक प्रदेश से आदि लग, खंद यथा विधि वास ।
इक प्रदेस में अणू तिथि, काल विभिन्न निवास ।५८५।

अर्थ—पुद्गलस्कध का निवास यथा सभव एक, दो प्रदेशादि अथवा सब लोक मे हो सकता है किन्तु परमाणु का निवास एक प्रदेश मे ही होता है और कालाणु एक एक प्रदेश पर एक एक ही निवास करता है कारण कालाणु स्कध रूप नही है ॥५८५॥

आगे पुद्गल स्कध के निवास को स्पष्ट दिखाते है ।

सखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा।
लोगागासेव ठिदी एगपदेसो अणुस्स हवे ॥५८६॥

संख्य असंख्य अनंत हैं, पुद्गल के स्कंध।
निवसे लोकाकाश में, इक प्रदेश अणुगंध॥५८६॥

अर्थ—पुद्गलस्कध कोई सख्यात, कोई असख्यात अथवा कोई अनत परमाणुओं का होता है तो भी उन सब का निवास लोकाकाश मे ही है किन्तु परमाणु का निवास एक प्रदेश मे ही है ॥५८६॥

आगे अलोकाकाश को सून्य दिखाते है।

लोगागासपदेसा छद्दव्वेहिं फुडा सदा होंति।
सव्वमलोगागासं अण्णेहिं विवज्जियं होदि ॥५८७॥

लोकाकाश प्रदेश में, छहों द्रव्य का वास।
नभ तज सर्व अलोक में, शेष न करें निवास ॥५८७॥

अर्थ—लोकाकाश के सब प्रदेशो मे छहो द्रव्यो का निवास है और अलोकाकाश मे केवल आकाश को छोड कर शेष द्रव्यो का निवास नही है ॥५८७॥

आगे छहो द्रव्यो की सख्या दिखाते है।

जीवा अणंतसखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु।
धम्मतियं एक्केक्कं लोगपदेसप्पमा कालो ॥५८८॥

संख्या जीव अनंत है, अनंत पुदगल माल।
इक इक धर्माधर्म नभ, जग प्रदेश वत् काल॥५८८॥

अर्थ—जीव अनत है, जीवो से अनतगुणे पुद्गल है, धर्मद्रव्य एक है, अधर्मद्रव्य एक है, आकाशद्रव्य एक है और कालद्रव्य लोकाकाश

के जितने प्रदेश (असंख्यात) हैं उतनी संख्या में हैं ॥५८८॥

आगे कालाणुओं को लोकप्रदेश पर दिखाते हैं।

लोगागासपदेसे एक्केक्के जेट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥५८९॥

इक इक लोक प्रदेश पर, कालाणू इक एक।
रत्न राशि वत् वास है, ऐसा धरो विवेक ॥५८९॥

अर्थ—एक एक लोक के प्रदेश पर एक एक कालाणु का निवास रत्न की राशि के समान है ॥५८९॥

आगे आकाश के प्रदेशों की संख्या दिखाते हैं।

ववहारो पुण कालो पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो।
तत्तो अणंतगुणिदा आगासपदेस परिसंखा ॥५९०॥

खंद राशि से नंत गुणि, काल समय सब मान।
नंत गुणे उनसे कहे, नभ प्रदेश सब जान ॥५९०॥

अर्थ—पुद्गलराशि से अनंतगुणे काल के समय हैं काल के समयों से अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश हैं ॥५९०॥

आगे एक प्रदेश का परिमाण दिखाते हैं।

लोगागासपदेसा धम्माधम्मेगजीवगपदेसा।
सरिसा हु पदेसो पुण परमाणुअवट्ठिदं खेत्तं ॥५९१॥

एक जीव धर्माधरम, लोक प्रदेश समान।
जितना थल रोके अणू, इक प्रदेश वह जान ॥५९१॥

अर्थ—धर्म, अधर्म, एकजीव और लोकाकाश के प्रदेश बराबर हैं जितने आकाश के प्रदेश को एक परमाणु रोकता है उतने प्रदेश को एक प्रदेश कहते हैं ॥५९१

आगे अरूपीद्रव्यो के प्रदेश अचल दिखाते है ।

सव्वमरूवी दव्वं अवट्ठिदं अचलिआ पदेसा वि ।
रूवी जीवा चलिया तिवियप्पा होंति हु पदेसा ॥५९२॥

सर्व अरूपी द्रव्य के, अचल प्रदेश पिछान ।
रूपी जीवप्रदेशचल, अचलचलाचलजान ॥५६२॥

अर्थ—जितने अरूपी (धर्म अधर्म, अकाश, काल, मुक्तजीव) द्रव्य है, उनके प्रदेग कभी चलायमान नही होते किन्तु रूपी जीव (ससारी जीव) द्रव्य मे केवल अयोगगुणस्थान वाले जीव के प्रदेग अचल हो जाते है परभवगति वाले जीव के प्रदेग चलायमान हो जाते है शेप जीवो के मध्य के आठ प्रदेग अचल होते है और शेप सव प्रदेग चलायमान होते है ॥५६२॥

आगे पुद्गल द्रव्य को चल और अचल दिखाते है ।

पोग्गलदव्वम्हि अणू संखेज्जादी हवंति चलिदा हु ।
चरिममहक्खंधम्मि य चलाचला होंति हु पदेसा ॥९३॥

चल पुद्गल अणु खंद अरु, अगणित अणु स्कंध ।
अंत महा स्कंध इक, चल अरुअचलप्रबंध॥५९३॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य मे परमाणु, सख्यातपरमाणुओ का स्कध, असख्यातपरमाणुओ का स्कध और अनतपरमाणुओ का स्कध अचल नही है किन्तु अन्त का जो महास्कध है उसके कई परमाणु चल है और कई अचल है ॥५६३॥

आगे तेईस वर्गणाओ को दिखाते है ।

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्जगेहिं अंतरिया ।
आहारतेजभासामणकम्मइया धुवक्खंधा ॥९४॥

सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेहधुवसुण्णा ।
बादरनिगोदसुण्णा सुहुमणिगोदा णभो महक्खंधा ॥५९५॥

अणू संख्य अगणित अमित, आहारा अनग्राह्य ।
तैजाग्राह्यरु वचन अरु, अग्राह्य मन अनग्राह्य ॥५९४॥
कर्मण ध्रुव अंतर इतर, सुन प्रत्येक शरीर ।
ध्रुव सून्या बादर निगो, सून्य सूक्ष्म नभ खीर ॥५९५॥

अर्थ—अणुवर्गणा, संख्यातवर्गणा, असंख्यातवर्गणा, अनंतवर्गणा, आहारवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषा-वर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्माणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सांतरनिरंतरवर्गणा, सून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवसून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा और महास्कधवर्गणा ये तेईस तरह की वर्गणाये पुद्गल द्रव्य की होती ॥५९४-५९५॥

आगे उन वर्गणाओ मे जघन्य और उत्कृष्ट भेद दिखाते है ।

परमाणुवग्गणम्मि ण अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि ।
गेज्झमहक्खंधाणं वरमहियं सेसगं गुणियं ॥५९६॥

ज्येष्ट जघन नहिं अणु में, शेष सर्व में धार ।
ग्राह्य महास्कंध में, भाग शेष गुणकार ॥५९६॥

अर्थ—अणुवर्गणा मे जघन्य और उत्कृष्ट का भेद नही है शेष वर्गणाओ मे जघन्य और उत्कृष्ट का भेद है आहारवर्गणा, तैजस-वर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा और कार्माणवर्गणा ये पाच ग्राह्यवर्गणा कहलाती है इनमे और महास्कधवर्गणा मे जघन्य और उत्कृष्ट का भेद प्रतिभाग (भाग मे भाग) की अपेक्षा से है और शेष सोलह वर्गणाओ मे जघन्य और उत्कृष्ट का भेद गुणाकार (गुणा

मे गुणा) की अपेक्षा से है ॥५९६॥

आगे ग्राह्य और महास्कध के प्रतिभाग का परिमाण दिखाते है।

सिद्धाणंतिमभागो पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठट्ठं ।
पल्लासज्खेजदियं अंतिमखंधस्स जेट्ठट्ठं ॥५९७॥

सिद्ध अनंते भाग है, ग्राह्य ज्येष्ठ प्रति भाग ।
महा खंद उत्कृष्ट का, पल्य असंख्ये भाग ॥५९७॥

अर्थ—उपरोक्त पाच ग्राह्यवर्गणाओ का उत्कृष्ट भेद निकालने के लिए प्रतिभाग का परिमाण सिद्धराशि के अनतवे भाग है और महास्कध वर्गणा का उत्कृष्ट भेद निकालने के लिए प्रतिभाग का परिमाण पल्य का असख्यातवा भाग है जिसके प्रतिभाग देने से जो लब्ध आवे उसको उसके जघन्य परिमाण मे मिला देने से उसके उत्कृष्ट का परिमाण निकल आता है ॥५९७॥

आगे सख्यातादि वर्गणाओ के गुणाकार का परिमाण दिखाते है।

संखेज्जासखेज्जे गुणगारो सो दु होदि हु अणंते ।
चत्तारि अगेज्जेसु वि सिद्धाणमणंतिमो भागो ॥५९८॥

गुणाकार निज निज जघन, संख्यासंख्ये लाग ।
अमित रु चउ अनग्राह्य का, सिद्ध अनंते भाग ।५९८।

अर्थ—सख्यातवर्गणा और असख्यातवर्गणा के गुणाकार का परिमाण इसके उत्कृष्ट भेद के परिमाण मे इनके जघन्य भेद के परिमाण का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना है। अनतवर्गणा और चार अग्राह्य वर्गणाओ के गुणाकार का परिमाण सिद्धराशि के अनतवे भाग है। इस ही गुणाकार के साथ अपने २ जघन्य भेद का गुणा करने से अपने २ उत्कृष्ट भेद का परिमाण निकल आता है ॥५९८॥

आगे ध्रुववर्गणादि के गुणाकार का परिमाण दिखाते है।

जीवेदोणंतगुणो धुवादितिण्हं असंखभागो दु।
पल्लस्स तदो तत्तो असंखलोगवहिदो मिच्छो ॥५९९॥

नंतगुणा जिय राशि से, त्रय ध्रुव आदिक सून्य।
पल्य रु लोक असंख्य है, प्रत्येक रु ध्रुव सून्य ॥५९९॥

अर्थ—ध्रुववर्गणा, सातार—निरतर वर्गणा और सून्यवर्गणा के गुणाकार का परिमाण जीवराशि से अनतगुणा है। प्रत्येक—शरीरवर्गणा का गुणाकार पल्य के असख्यातवे भाग है और ध्रुव—सून्यवर्गणा का गुणाकार मिथ्यादृष्टि जीवराशि मे असख्यात लोक का भाग देने मे जो लब्ध आवे उतना है अपने अपने गुणाकार के साथ अपने २ जघन्य भेद का गुणा करने से अपने २ उत्कृष्ट भेद का परिमाण निकल आता है ॥५९९॥

आगे शेष वर्गणाओ के गुणाकार का परिमाण दिखाते है।

सेढी सूई पल्ला जगपदरा संखभागगुणगारा।
अप्पप्पणअवरादो उक्कस्से होंति णियमेण ॥६००॥

श्रेणि सूचि पल्या प्रतर, अगणित कर गुणकार।
निज निज से निज निज जघन, गुणा करें वर लार ६००

अर्थ— बादरनिगोदवर्गणा, सून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा और नभोवर्गणा का गुणाकार का परिमाण क्रम से जगत्श्रेणी के असख्यातवा भाग, सूच्यंगुल का असख्यातवाँ भाग, पल्य का असख्यातवाँ भाग और जगत्प्रतर का असख्यातवाँ भाग है। इस अपने २ गुणाकार के परिमाण के साथ अपने २ जघन्य भेद के परिमाण का गुणा करने से अपने २ उत्कृष्ट भेद का परिमाण निकल आता है ॥६००॥

आगे नीचे की वर्गणा मे एक मिलाने से आगे की जघन्य दिखाते है।

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु ।
इदि तेवीसवियप्पा पुग्गलदव्वा हु जिणदिट्ठा ॥६०१॥

नीचे की उत्कृष्ट में, एक मिले लघु दूज ।
इस विधि पुदगल द्रव्य के, तेइस भेद जु हूज ६०१

अर्थ—उपरोक्त तेईस वर्गणाओ मे से अणुवर्गणा को छोडकर शेप बाईसवर्गणाओ मे नीचे की वर्गणा के उत्कृष्ट भेद का जो परिमाण है उसमे एक मिलाने से आगे की वर्गणा का जघन्य भेद होता है जैसे सख्यातवर्गणा के उत्कृष्ट भेद मे एक मिला दिया जावे तो असख्यातवर्गणा का जघन्य भेद होता है ॥६०१॥

आगे दूसरी रीति से पुद्गल के भेद दिखाते है ।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविपयकम्मपरमाणू ।
छव्विहभेय भणिय पुग्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥६०२॥

भू जल छाया नेत्र तज, विषय जु इन्द्रिय चार ।
कर्म अणू मिल भेद छै, पुदगल द्रव्य सँभार ॥६०२॥

अर्थ—पृथ्वी, जल, छाया, नेत्रइन्द्रिय के विपय को छोड कर शेष चार इन्द्रिय के विषय, कर्मस्कध और परमाणु ये छै भेद भी पुद्गलद्रव्य के है ॥६०२॥

आगे उपरोक्त छै भेदो के नाम दिखाते है ।

वादरवादर वादर वादरसुहमं च सुहमथूलं च ।
सुहमं च सुहमसुहमं च धरादियं होदि छब्भेयं ॥६०३॥

थूलथूल इक थूल द्रय, थूलसूक्ष्म त्रय मान ।
सूक्ष्मथूल चउसूक्ष्मपन, सूक्ष्मसूक्ष्म छै जान ॥३०३॥

अर्थ—स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म-

सूक्ष्म ये छै उनके नाम है ॥३०३॥

आगे स्कंध के भेद दिखाते है।

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसोत्ति।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी चेव परमाणू ॥६०४॥

बहु समुदायक खंद है, अर्धभाग है देश।
चौथाई पर देश है, परमाणू है शेष ॥६०४॥

अर्थ—बहुत से परमाणुओं के समुदाय को स्कंध कहते है इसके आधे को अर्धस्कंध कहते है इसके आधे को पावस्कंध कहते है और जिनका अन्य भेद न हो सके ऐसे अणु को परमाणु कहते है ॥६०४॥

आगे धर्मादिक चार का उपकार दिखाते है।

गदिठाणोग्गहकिरियासाहणभूद खु होदि धम्मतियं।
वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु ॥६०५॥

गति थिति अवगाहन क्रिया, हेतु धर्म त्रय मान।
अरु कारण परिणमन को, काल द्रव्य को जान ॥६०५॥

अर्थ—गति का सहकारी कारण धर्मद्रव्य है ठहरने का सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है स्थान देने का सहकारी कारण आकाशद्रव्य और परिणमन मे सहकारी कारण कालद्रव्य है ॥६०५॥

आगे जीव और पुद्गल का उपकार दिखाते है।

अण्णोण्णुवयारेण य जीवा वट्टंति पुग्गलाणि पुणो।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण ॥६०६॥

जीव परस्पर में करें, गति आदिक उपकार।
देहादिक उत्पन्न में, कारण पुदगल धार ॥६०६॥

अर्थ—जीव भी परस्पर मे उपकार करते है जैसे किसी दूसरे को

हाथ पकड़ कर चलाना, गोदी मे वैठाल लेना, रहने को घर दे देना, रोते को प्रसन्न करने की क्रिया करना और औषधादि से रक्षा कर देना तथा पुद्गलद्रव्य जीव को तन, मन, वाणी, श्वासोश्वास, सुख, दु ख, जीवन और मरण रूप उपकार करता है ।।६०६।।

आगे आहार और तैजसवर्गणा का उपकार दिखाते है ।

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो ।
णिस्सासोवि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं ।।६०७।।

इक वर्गण आहार से, त्रय तन श्वासोश्वास ।
तैज वर्गणा से बने, तैजस तन जिन भाष ।।६०७।।

अर्थ—तेईस जाति की वर्गणा मे से आहारवर्गणा से आदि के तीन (औदारिक, विक्रियक, आहारक) शरीर वनते है और तैजस वर्गणा से तैजस-शरीर वनता (उपकार) है ।।६०७।।

आगे भाषा, मन और कार्माण वर्गणा का उपकार दिखाते है ।

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो ।
अट्ठविहकम्मदव्वं होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।६०८।।

भाषा मन वर्गणा से, भाषा मन उपजाय ।
कर्म वर्गणा से वने, अष्ट कर्म जिन गाय ।।६०८।।

अर्थ—भाषावर्गणा से भाषा वनती है मनोवर्गणा से द्रव्य मन वनता है और कार्माणवर्गणा से ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म वनते (उनकार) है ।।६०८।।

आगे चिकन रूक्ष से वध और उसमे अश भेद दिखाते है ।

णिद्धत्तं लुक्खत्तं बंधस्स य कारणं तु एयादी ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतविहा णिद्धणुक्खगुणा ।।६०९।।

चिकन रूक्ष से बंध है, एक अंश से लाग।
संख्य असंख्य अनंत हैं, चिकन रूक्ष में भाग।६०९।

अर्थ—प्रत्येक परमाणु मे चिकना अथवा रूखा गुण होता है उसके कारण से उनमे परस्पर बध हो जाता है उन परमाणुओ के चिकने अथवा रूखे गुण मे एक से लेकर सख्यात, असख्यात और अनत अश भेद होते है ॥६०९॥

आगे चिकन और रूक्ष के भेदो मे एक अश को जघन्य दिखाते है।

एगगुणं तु जहण्ण णिद्धत्तं विगुणतिगुणसंखेज्जा— ।
संखेज्जाणंतगुणं होदि तहा रुक्खभावं च ॥६१०॥

चिकन रूक्ष में एक गुण, जघन कहा सब संत।
जघन न दो त्रय आदि को, संख्य असंख्य अनन्त ६१०

अर्थ—जो चिकन अथवा रूक्ष गुण का एक अश है उसको जघन्य अश कहते है और इसके आगे दो, तीन आदि से सख्यात, असख्यात अथवा अनत अश तक जो अश है उनको जघन्य नही कहते ॥६१०॥

आगे बध योग्य परमाणुओ मे बध दिखाते है।

एवं गुणसंजुत्ता परमाणू आदिवग्गणम्मि ठिया।
जोग्गदुगाणं बंधे दोण्हं बंधो हवे णियमा ॥६११॥

परमाणू इक गुण सहित, अणू वर्गणा मांहिं।
दो आदिक का बंध है, बंध योग्य ता पांहिं ॥६११॥

अर्थ—इस प्रकार के गुणसहित परमाणु बाईस वर्गणाओ को छोड कर केवल अणुवर्गणा मे ही होते है उनका बध एक दूसरे आदि के साथ होता है किन्तु यह बध जब ही होता है जबकि वे परमाणु निम्नलिखित बध की योग्यता के धारक होते है ॥६११॥

आगे चिकन रूक्ष मे समविषम धारा दिखाते हैं।

णिद्धिदरे समविसमा दोत्तिगआदी दुउत्तरा होंति ।
उभयेवि य समविसमा सरिसिदरा होंति पत्तेयं ॥६१२॥

चिकन रूक्ष सम विषय में, दो त्रयादि उपरेक ।
उभय विषें हो सम विषम, तुल्य इतर प्रत्येक ॥६१२॥

अर्थ .—चिकने अथवा रूक्ष गुण के धारी परमाणु के ऊपर जहाँ दो दो की वृद्धि होती है वहाँ सम धारा कहलाती है और जहां तीन गुण के ऊपर दो दो की वृद्धि होती है वहाँ विषय धारा कहलाती है प्रत्येक धारा (चिकने की सम धारा, रूक्ष की समधारा, चिकने की विषमधारा, रूक्ष की विषम धारा) मे समान और असमान गुण वाले परमाणु होते है ॥६१२॥

आगे समानासमान का स्वरूप दिखाते हैं।

णिद्धिदरोली मज्झे विसरिसजादिस्स समगुण एक्कं ।
सरिसित्ति होदि सण्णा सेसाणं ता असरिसित्ति ॥६१३

चिकन रूक्ष विपरीत परि, इनमें सम गुण एक ।
तुल्य नाम है उसी का, शेष अतुल्या देख ।६१३।

अर्थ—चिकन और रूक्ष के बीच मे विपरीतता है किन्तु इनको गुण वृद्धि की श्रेणी मे एक सम गुण है उसको समान नाम से कहते और इस सम गुण के अतिरिक्त शेष सब को असमान कहते है ॥६१३॥

आगे उपरोक्त आशय को उदाहरण से दिखाते है।

दोगुणणिद्धाणुस्स य दो गुणलुक्खाणुगं हवे सरिसा ।
इगितिगुणादि असरिसा लुक्खस्स वि तंव इदि जाणे ॥६१४॥

दो गुण चिकने अणू से, दुगुण रूक्ष अणु तुल्य ।
इकति गुणादि अतुल्य हैं, रूक्ष इसी विधि खुल्य ।६१४॥

अर्थ—दो गुण चिकने परमाणु की अपेक्षा दो गुण रूक्ष परमाणु समान गुण का धारी है और इसकी अपेक्षा शेष एक, तीन, चार और पाच आदि गुण के धारी परमाणु असमान गुणके धारी है इसी प्रकार दो गुण रूक्ष परमाणु की अपेक्षा दो गुण चिकना परमाणु समान गुण का धारी है और इसकी अपेक्षा शेष एक दो, तीन, चार और पाच आदि गुण के धारी परमाणु असमान गुण के धारी है इत्यादि ॥६१४॥

आगे वध का अतिम निष्कर्ष दिखाते है।

दोत्तिगपभवदुउत्तरगदेसणंतरदुगाण वंधो दु।
णिद्धे लुक्खे वि तहावि जहण्णुभयेवि सव्वत्थ ॥६१५॥

दो त्रय पर दो दो बढ़ें, दो अधिका से बंध।
चिकन रूक्ष में तथापी, जघन उभय नहिं वंध ॥६१५॥

अर्थ—चिकने अथवा रूक्ष गुण वाले परमाणु के दो अथवा तीन गुण के ऊपर दो दो गुण की वृद्धि होते होते जहाँ दो अधिक गुण वाला चिकना अथवा रूक्ष परमाणु मिल जाता है वहाँ पर उसका वध हो जाता है किन्तु जघन्य गुण वाले चिकने अथवा रूक्षे परमाणु का किसी से भी वध नही होता ॥६१५॥

आगे जघन्य गुण वाले को वध की विधि दिखाते है।

णिद्धिदरवरगुणाणू सपरट्ठाणेवि णेदि वंधट्ठं।
वहिरंतरंगहेदुहि गुणंतर संगदे एदि ॥६१६॥

चिकन रूक्ष लघु गुण अणू, स्वपर थान नहिं बंध।
वाह्याभ्यंतर हेतु से, वढतहि गुण हो वंध ॥६१६॥

अर्थ—जो चिकना अथवा रूक्ष का जघन्य गुण वाला परमाणु है उसका निजस्थान या परस्थान मे से किसी भी स्थान मे वध नही होना किन्तु जब उसको अतरग और वहिरग कारण के मिलने से

उसके गुण मे वृद्धि होती है तब उसका बंध होता है अन्यथा वह उसी दशा मे रहता है ॥६१६॥

आगे हीन गुणी को अधिक वाले अपने रूप दिखाते है।

णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्मि।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ॥६१७॥

चिकन रूक्ष गुण अधिक के, हीन परणवे बंध।
संख्य असंख्य अनंत के, अणु अथवा स्कंध ॥६१७॥

अर्थ—हीनगुणवाले चिकने अथवा रूक्ष परमाणु को अधिक गुण वाले चिकने अथवा रूक्ष परमाणु अपने अनुरूप कर लेते है इसी तरह अधिक गुण वाले सख्यात, असख्यात अथवा अनत परमाणुओ के स्कध अपने से हीन गुण वाले स्कंधो को अपने अनुरूप कर लेते है ॥६१७॥

आगे कायवान द्रव्यो को दिखाते है।

दव्वं छक्कमकालं पंचत्थीकायसण्णिद होदि।
काले पदेसपचयो जम्हा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६१८॥

छहों द्रव्य में काल तज, काय वान है पांच।
कारण बहुत प्रदेश हैं, उनके तन में जांच ॥६१८॥

अर्थ—कालद्रव्य को छोडकर शेषपांच द्रव्य वहुप्रदेशी है कारण इनकी काय वहुत प्रदेश वाली है और काल की काय एक ही प्रदेश वाली है ॥६१८॥

आगे नव पदार्थो को दिखाते है।

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य होंतित्ति ॥६१९॥

जीवाजीव पदार्थ द्वय, पुण्य पाप मिल कत्व ।
आस्रव संवर निर्जरा, वंध मोक्ष नव तत्व ॥६१९॥

अर्थ—मुख्य कर जीव और अजीव दो पदार्थ है इन दो के मिलने मे पुण्य और पाप होता है, जिससे आस्रव, सवर, निर्जरा वध और मोक्ष पदार्थ होता है इस रीति से नवपदार्थ होते है ॥६१९॥

आगे पुण्यी और पापी जीवो का स्वरूप दिखाते है ।

जीवदुग उत्तट्ठ जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा ।
वदसहिदावि य पावा तव्विवरीया हवंतित्ति ॥६२०॥

जियाजिया का कथन कर, समकित अरु व्रत धार ।
पुण्णी इन विपरीत सव, पापी जीव सँभार ॥६२०॥

अर्थ—जीव और अजीव का कथन कर चुकने के पश्चात् पुण्य और पाप के भेद से जीव दो प्रकार के होते है सम्यक्त्वी और व्रतधारी पुण्यी जीव है इन से विपरीत शेप सब पापी जीव है ॥६२०॥

आगे पापी जीवो की सख्या दिखाते है ।

मिच्छाइट्ठी पावा णंताणंता य सासणगुणावि ।
पल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा ॥६२१॥

अघी अमित मिथ्यात्व में, सासा पल्य असंख्य ।
नादि वंधनी उदय से, मिथ्या गुण को झंख्य ॥६२१॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में सव पापी जीव है इनकी सख्या अननानत है और मामादनगुणस्थान वाले भी पापी जीव है इनकी सख्या पल्य के असख्यातवं भाग है इनके किसी एक अनतानुवधी प्रकृति का उदय है जिसके कारण ये मिथ्यात्व को अवश्य प्राप्त होते है ॥६२१॥

आगे मिथ्यादृष्टि से लेकर देशव्रत तक की संख्या दिखाते है।

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं सख संखगुणं ॥६२२॥

मिथ्या देशी सासदन, मिश्र दृष्टि क्रम नंत।
पल्य असंख्य असंख्यगुण, संख्य असंख्यगुणंत।६२२।

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव अनतानत है देशव्रती श्रावक पल्य के असख्यातवे भाग है इनसे असख्यात गुणे सासादनगुणस्थान वाले जीव है इनसे सख्यातगुणे मिश्रगुणस्थान वाले जीव है इनसे असख्यात गुणे अविरतगुणस्थान वाले जीव है ॥६२२॥

आगे प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थान वालो की सख्या दिखाते है।

तिरधियसयणवणउदी छण्णउदी अप्पमत्त वे कोडी।
पंचेव य तेणउदी णवट्ठविसयच्छउत्तरं पमदे ॥६२३॥

कोटि पांच लख त्रानवे, अट्ठानवे हजार।
दो सौ छै हैं प्रमत धर, अर्ध सात गुणधार।६२३।

अर्थ—प्रमत्तगुणस्थान वालो की संख्या पाच किरोड, तिरानवे लाख, अठानवे हजार, दो सौ छै (५९३९८२०६) है और इनसे आधे (२९६९९१०३) अप्रमत्तगुणस्थान वाले है ॥६२३॥

आगे उपशम और क्षपक श्रेणी वालो की सख्या दिखाते है।

तिसयं भणंति केई चउरुत्तरमत्थपंचयं केई।
उवसामगपरिमाणं खवगाणं जाण तद्दुगुणं ॥६२४॥

दो सौ निन्यानवे अरु, त्रयसौ त्रयसौ चार।
उपशम श्रेणी धार हैं, दूने क्षपक सँभार ॥६२४॥

अर्थ—उपशमश्रेणी वाले मुनियो की सख्या उपशमश्रेणी के प्रत्येक गुणस्थान मे कोई आचार्य ३००, कोई आचार्य ३०४ और कोई आचार्य २९९ बतलाते हैं किन्तु यहाँ हिसाब ३०४ का बतलाते है जो कि नीचे के दोहा से सिद्ध होता है और इनसे दूने क्षपक श्रेणी वाले मुनि है ॥६२४॥

आगे उपशमश्रेणी वालो की सख्या का विभाग दिखाते है।

सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीस तह य बादालं।
अडदालं चउवण्णं चउवण्ण होंति उवसमगे ॥६२५॥

सोलह चौविस तीस अरु, छत्तिस अरु ब्यालीस।
अडतालिस चउवन तथा, चउवन उपशम शीश ।६२५॥

अर्थ—निरतर आठ समय तक उपशमश्रेणी माडने वालो की सख्या अधिक से अधिक प्रथमसमय मे १६ द्वितीयसमय मे २४ तृतीयसमय मे ३० चतुर्थसमय मे ३६ पांचवेसमय मे ४२ छठवेसमय मे ४८ सातवे-समय मे ५४ और आठवेसमय मे ५४ की होती है इसप्रकार कुल ३०४ होते है ॥६२५॥

आगे क्षपकश्रेणी वालो की सख्या का विभाग दिखाते है।

बत्तीसं अडदालं सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसयमट्ठुत्तरसयं च खवगेसु ॥६२६॥

बत्तिस अडतालीस अरु, साठ बहत्तर मान।
चौरासी अरु छानवे, इकसौ अठ अठ जान ॥६२६॥

अर्थ—निरतर आठसमय तक क्षपकश्रेणी माडने वालो की सख्या अधिक से अधिक प्रथमसमय मे ३२ द्वितीयसमय मे ४८ तृतीयसमय मे ६० चतुर्थसमय मे ७२ पाचवेसमय मे ८४ छठवेसमय मे ९६ सातवे समय मे १०८ और आठवेसमय मे १०८ की होती है इसप्रकार कुल ६०८ होते है ॥६२६॥

आगे सयोगकेवलियो की सख्या दिखाते है।

अठ्ठेव सयसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साणं।
सखा जोगिजिणाण पंचसयविउत्तर वंदे ॥६२७॥

आठ लाख अट्ठानवें, सहस पांच सौ दोय।
संख्या सर्व सयोग जिन, तिन्हें नमो भ्रम खोय॥६२७॥

अर्थ—आठ लाख, अट्ठानवे हजार पाचसौ दो (८९८५०२) सयोगकेवलीभगवानो की सख्या है ॥६२७॥

आगे क्षपकश्रेणी के १०८ का विवरण दिखाते है।

होंति खवा इगसमये वोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥६२८॥

पत्तेयबुद्धतित्थयरत्थिणउंसयमणोहिणाणजुदा।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥६२९॥

जेट्ठावरबहुमज्झिमओगाहणगा दु चारि अट्ठेव।
जुगवं हवंति खवगा उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥६३०॥

इकसौ अठ निज बोधिता, पर बोधित दश मान।
इकसौ अठ आये सुरग, छै तीर्थंकर जान॥६२८॥

अवधि धार अठ बीस हैं, मनपर्यय धर बीस।
इकसौ अठ नर बीस तिय, षंड कहे दश ईश ॥६२९॥

गाहन लघु बहु मध्य वर, चार आठ अरु दोय।
क्षपकश्रेणि युगवत् चढ़ें, उपशम आधे खोय॥६३०॥

अर्थ—युगपत् (एक समय) क्षपकश्रेणी चढने वालो में स्वयं-

बोधित १०८ होते हैं इतने न हो तो पर बोधित १० होते है स्वर्ग से आये हुये १०८ होते हैं इतने न हो तो शेष अन्य गति वाले होते हैं तीर्थंकर ६ होते हैं शेष सामान्य होते है अवधिज्ञानी २८ होते है मन-पर्ययज्ञानी २० होते हैं शेष मति—श्रुतज्ञानी होते हैं पुरुषवेदी १०८ होते हैं इतने न हो स्त्रीवेदी २० होते है नपुसकवेदी १० होते है जघन्य अवगाहना के धारी ४ उत्कृष्ट अवगाहना के धारी २, ठीक मध्यअवगाहना के धारी ८ होते है और इतने न हो तो शेष अवगाहना के धारी होते हैं एक समय मे १०८ से अधिक नही होते तथा इनमे आधे उपशम श्रेणी वाले होते है ॥६२८–६३०॥

आगे छठवे से तेरहवे गुणस्थान वालो की सख्या दिखाते है।

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।
अंजलिमौलियहत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि ॥६३१॥

तीन घाटि नव कोटि हैं, सर्व संयमी जीव।
हाथ जोड़ कर सिर नवा, वन्दों उन्हें सदीव ॥६३१॥

अर्थ—प्रमत्त से लेकर सयोगगुणस्थान तक सब सयमी जीवो की सख्या तीन कम नव करोड (८९९९९९९७) है उनको मैं हाथ जोड कर शीश नवाता हूँ जिसमे प्रमत्तगुणस्थानवाले ५९३९८२०६ अप्रमत्त गुणस्थान वाले २९६९९१०३ उपशमश्रेणी वाले ११९६ क्षपकश्रेणी वाले २३९२ सयोगगुणस्थान वाले ८९८५०२ और अयोगगुणस्थान वाले ५९८ होते है ॥६३१॥

आगे सौधर्म-ईशान स्वर्ग के भाग हारो का दिखाते है।

ओघासंजदमिस्सयसासणसम्माणभागहारा जे।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते ॥६३२॥
देवाणं अवहारा होंति असंखेण ताणि अवहरिय।
तत्थेव य पक्खित्ते सोहम्मीसाण अवहारा ॥६३३॥

अविरत सासा मिश्र का, भागहार परिमाण।
इक कम अगणित आवली, भागदियें फल जान।६३२।
देवों का अवहार वह, अगणित उसमें हार।
लब्ध मिला फिर उस विषें, प्रथमयुगल अवहार।६३३

सासादन का भागहार —पल्य मे दो वार असख्यात और एक वार सख्यात का भाग देने से जो परिमाण आवे उतना सासादन का भागहार है।

मिश्र का भागहार :—पल्य मे दो वार असख्यात का भाग देने से जो परिमाण आवे उतना मिश्र का भागहार है।

अविरत का भागहार —पल्य मे एक वार असख्यात का भाग देने से जो परिमाण आवे उतना अविरत का भागहार है।

देशविरत का भागहार :—पल्य मे तीन वार असख्यात और एक वार सख्यात का भाग देने से जो परिमाण आवे उतना देश-विरत का भागहार है।

देवगति के अविरत गु० का भागहार —ऊपर लिखे हुये भाग-हारो मे से अविरतगुणस्थान के भागहार का जो परिमाण है उसमे एक कम आवली के असख्यातवे भाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको उसी भागहार के परिमाण मे मिलाने से देवगति सम्बन्धी अविरतगुणस्थान के भागहार का परिमाण होता है।

सौधर्म-ईसान के अविरत गु० का भागहार :—उस देवगति सम्बन्धी भागहार के परिमाण मे एक कम आवली के असख्यातवे भाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको उसी भागहार के परि-माण मे मिलाने से सौधर्म-ईसानस्वर्ग सम्बधी अविरतगुणस्थान के भागहार का परिमाण होता है इसही तरह उनके मिश्र और सासा-दन गुणस्थान के भागहार का परिमाण निकलता है इसका आशय

दोहा नं० ६३६ में स्पष्ट होगा ॥६३२-६३३॥

आगे सनत्कुमार-महेन्द्र स्वर्ग के भागहारो को दिखाते है।

सोहम्मसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे।
उवरि असंजदमिस्सयसासणसम्माण अवहारा ॥६३४॥

प्रथम युगल अगणित तथा, संख्य रूप गुणकार।
आगे अविरत मिश्र अरु, सासा का अवहार ॥६३४॥

अर्थ—सनत्कुमार-महेन्द्र के अविरत गु० का भागहार — सौधर्म-ईसान स्वर्ग के सासादनगुणस्थान के भागहार का जो परिमाण है उनसे असख्यातगुणा सनत्कुमार-महेन्द्र स्वर्ग के अविरतगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

उनके मिश्र गु० का भागहार —उससे असख्यातगुणा उनके मिश्रगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

उनके सासादन गु० का भागहार —उससे सख्यातगुणा उनके सासादनगुणस्थान के भागहार का परिमाण है इसका आशय दोहा न० ६३६ मे स्पष्ट होगा ॥६३४॥

आगे ब्रह्म से सहस्रार, भवनत्रक, नरक, पशु के दिखाते है।

सोहम्मादासार जोइसिवणभवणतिरियपुढवीसु।
अविरदमिस्से संखं संखासंखगुण सासणे देसे ॥६३५॥

सहस्रार तक भवन लक, पशू सात भू सेष।
दृष्टि मिश्र अगणित अपर, सासा अगणित देश।६३५।

अर्थ—ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर के अविरत गु० का भागहार —सनत्कुमार-महेन्द्र स्वर्ग के सासादनगुणस्थान के भागहार का जो परिमाण है उनसे असख्यातगुणा ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के अविरतगुणस्थान के भाग हार का परिमाण है।

उनके मिश्र गु० का भागहार —उससे असख्यातगुणा उनके मिश्रगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

उनके सासादन गु० का भागहार —उससे संख्यातगुणा उनके सासादनगुण स्थान के भागहार का परिमाण है।

लांतवादि का भागहार :—उसी क्रम से लातव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, सतार-सहस्रार, ज्योतिप, व्यतर और भवनवासी देवो के अविरत, मिश्र और सासादनगुणस्थान के भागहारो का परिमाण है।

तिर्यचो के अविरत गु० का भागहार :—भवनवासी देवो के सासादनगुणस्थान के भागहार का जो परिमाण है उससे असख्यात-गुणा तिर्यंचो के अविरतगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

उनके मिश्र गु० का भागहार —उससे असख्यातगुणा उनके मिश्रगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

उनके सासादन गु० का भागहार —उससे सख्यातगुणा उनके सासादनगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

उनके देशविरत गु० का भागहार —उससे असख्यातगुणा उनके देशविरतगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

प्रथमनरक के अविरत गु० का भागहार .—तिर्यंचो के देशविरत गुणस्थान के वरावर प्रथम नरक के अविरतगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

उसके मिश्र गु० का भागहार —उससे असख्यातगुणा उसके मिश्रगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

उसके सासादन गु० का भागहार :—उससे सख्यातगुणा उसके सासादनगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

शेष नरको का भागहार :—उसी रीति से द्वितीयादिनरक के अविरत, मिश्र और सासादनगुणस्थान के भागहारो का परिमाण है इसका आशय दोहा न० ६३६ मे स्पष्ट होगा ॥६३५॥

आगे आनत प्राणत के अविरत के भागहार दिखाते है।

चरमधरासाणहरा आणदसम्माण आरणप्पहुदिं।
अंतिमगेवेज्जंतं सम्माणमसखसखगुणहारा ॥६३६॥

सप्तम भू से आनता, अगणित द्दग गुणकार।
आरण से ग्रीवक तलक, कहा संख्या गुणकार ॥६३६॥

अर्थ—आनत-प्राणत के अविरत गु० का भागहार :—सातवे-नरक के सासादनगुणस्थान के भागहार के परिमाण से असख्यात-गुणा आनत-प्राणतस्वर्ग के अविरतगुणस्थान के भागहार का परिमाण है।

आरण से ग्रीवक तक के अविरत गु० का भागहार :—उससे सख्यात २ गुणा क्रम से आरण-अच्युतस्वर्ग से लेकर नवग्रीवक तक दशस्थानो के अविरतगुणस्थान के भागहारो का परिमाण है इन स्थानो मे सख्यात का आशय पाँच के अक से है इनका आशय दोहा न० ६३९ मे स्पष्ट होगा ॥६३६॥

आगे आनत के मिथ्यादृष्टि के भागहार दिखाते है।

तत्तो ताणुत्ताणं वामाणमणुदिसाण विजयादि।
सम्माणं सखगुणो आणदमिस्से असंखगुणो ॥६३७॥

क्रम आनत से ग्रीवका, अनुदिश से गुणकार।
संख्यगुणा आनत मिसर, अगणित गुणा सँभार।६३७॥

अर्थ—आनत-प्राणतादि के मिथ्या गु० का भागहार —अन्तिमग्रीवक के अविरतगुणस्थान से भागहार के परिमाण से सख्यात २ गुणा क्रम से आनत-प्राणत से लेकर नवग्रीवक तक दशस्थानो के मिथ्यादृष्टिगुणस्थान के भागहारो का परिमाण है इन स्थानो के सख्यात का आशय छै के अक से है।

अनुदिशादि का भागहार :—अंतिम ग्रीवक के मिथ्यादृष्टि गुण-स्थान के भागहार के परिमाण से संख्यात २ गुणा नवअनुदिश और विजय से अपराजित तक के अविरत गुणस्थान के भागहारो का परिमाण है इन स्थानो के सख्यात का आगय सात के अक से है।

आनत-प्राणत के मिश्र गु० का भागहार :—विजय से अपराजित तक के अविरतगुणस्थान के भागहार के परिमाण से असख्यात-गुणा आनत-प्राणत स्वर्ग के मिश्रगुणस्थान के भागहार का परिमाण है इन भागहारो का आगय दोहा न० ६३९ मे स्पष्ट होगा ॥६३७॥

आगे आनत से ग्रीवक तक के मिश्र, सासदन के दिखाते है।

तत्तो संखेज्जगुणो सासणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी ॥६३८॥

उपरि संख्य गुण सासदन, योग्य संख्यगुण भाक ।
थान चिन्ह उन पांच छै, सात आठ चउ आंक ॥६३८॥

अर्थ—आरण—अच्युत से ग्रीवक तक के मिश्र गु० का भागहार :—आनत-प्राणत के मिश्रगुणस्थान के भागहार के परिमाण से संख्यात २ गुणा क्रम से आरण-अच्युत से लेकर नवग्रीवक तक दश स्थानों के मिश्रगुणस्थान के भागहार का परिमाण है यहा सख्यात का आगय आठ के अंक से है।

आनत से ग्रीवक तक के सासादन गु० का भागहार .—अंतिमग्रीवक के मिश्रगुस्थान के परिमाण से सख्यान २ गुणा क्रम से आनत-प्रणात से लेकर नवग्रीवक तक ग्यारह स्थानो के सासादन-गुणस्थान के भागहार का परिमाण है यहा सख्यात का आशय चार के अक से है ॥६३८॥

आगे उपरोक्त भागहारो से जीव संख्या दिखाते है।

सगसगअवहारेहिं पल्ले भजिदे हवंति सगरासी ।
सगसगगुणपडिवण्णे सगसगरासीसु अवणिदे वामा ॥६३९॥

जिस जिस के अवहार का, पल्य भाग वह राशि ।
अम तज जिस गति जिते गुण, उन्हें घटें अम राशि ३९

अर्थ—जिसजिस गुणस्थान का जो जो भागहार है वह दोहा न० ६३२ से ६३८ तक बतला चुके है अब मनुष्य गति को छोडकर जिस गति के जिस गुणस्थान के जीवो की संख्या निकालना हो तो उस गुणस्थान के भागहार के परिमाण का पल्य के परिमाण मे भाग देने से जो संख्या आवे उतने उस गुणस्थान मे जीव है और जिस गति के मिथ्यादृष्टियो की सख्या निकालना हो तो उस गति मे मिथ्यात्व को छोडकर कितने गुणस्थान है उनकी सख्या सामान्य संख्या मे कम कर देने से शेष सख्या बराबर उस गति मे मिथ्यादृष्टि जीव है सामान्य संख्या चारों गति के जीवो की गतिमार्गणा के अंत मे बता चुके है यह प्रत्येक गुणस्थान की सख्या निकालने की रीति दोहा न० ६३२ से ६३८ तक दिखलाई गई ॥६३९॥

आगे सासादन से देशविरत तक मनुष्यो की सख्या दिखाते है ।

तेरसकोडी देसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा ।
मिस्सावि य तद्दुगुणा असंजदा सत्तकोडिसयं ॥६४०॥

तेरह कोटी देश गुण, सासा बावन कोड ।
उससे दुगुणा मिश्र गुण, अविरत सात करोड ॥६४०॥

अर्थ—सासादनगुणस्थान मे बावन करोड (५२००००००0) मनुष्य है मिश्रगुणस्थान मे एक सौ चार करोड (१०४००००००0) मनुष्य है अविरतगुणस्थान मे सात करोड (७००००००0) मनुष्य है और देशविरतगुणस्थान मे तेरह करोड (१३००००००0) मनुष्य है शेष गुणस्थानों मे जो मनुष्यो की सख्या है वह पूर्व दोहा न० ६२३-६२४ मे बता चुके है ॥६४०॥

आगे अजीव का स्वरूप दिखाते है ।

जीविदरे कम्मचये पुण्णं पावोत्ति होदि पुण्ण तु ।
सुहपयडीण दव्वं पावं असुहाण दव्वं तु ॥६४१॥

जीव इतर में कर्म के , पुण्य पाप दो थान ।
शुभ प्रकृती को पुण्य अरु, अशुभ पाप पहिचान ।६४१।

अर्थ--जीव से इतर जो अजीव द्रव्य है उसमे कार्माणस्कध (कार्माणद्रव्य) के दो भेद है पुण्य और पाप जिसमे शुभप्रकृतियो के द्रव्य को पुण्य कहते है और अशुभ प्रकृतियो के द्रव्य को पाप कहते है ॥६४१॥

आगे आस्रव, सवर, निर्जरा का परिमाण दिखाते है ।

आसवसंवरदव्वं समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं उक्कस्सं होदि णियमेण ॥६४२॥

आस्रव संवर द्रव्य दो, समय-बद्ध परिमाण।
ज्येष्ठ निर्जरा द्रव्य का, अगणित गुणि उसथान ।६४२।

अर्थ—आस्रव और सवरद्रव्य का परिमाण एक समयप्रबद्ध के बराबर है और उत्कृष्ट निर्जराद्रव्य का परिमाण उस एक समयप्रबद्ध के परिमाण से असख्यात गुणा अधिक है ॥६४२॥

आगे बध और मोक्ष द्रव्य का परिमाण दिखाते है ।

बंधो समयपबद्धो किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ॥६४३॥

बंधजु समय-प्रबद्ध वत्, मोक्ष डेड गुणहान ।
इस प्रकार तत्त्वार्थ का, करो सदा श्रद्धान ॥६४३॥

अर्थ—बधद्रव्य का परिमाण एक समयप्रबद्ध के बराबर है कारण एक समय मे इतनी ही कर्म प्रकृतियो का बँध होता है और मोक्ष-

द्रव्य का परिमाण डेडगुण-हानि के बराबर है कारण अयोगगुण-स्थान के अंत मे इतनी ही कर्मप्रकृतियो की सत्ता रहती है इस प्रकार तत्त्वों का श्रद्धान करना सत्यार्थ है ॥६४३॥

आगे क्षायिकसम्यक्‌दर्शन का स्वरूप दिखाते है ।

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ।
त खाइयसम्मत्तं णिच्च कम्मक्खवणहेदु ॥६४४॥

दर्श मोह के क्षय भये, निर्मल सरधा लेतु ।
वह क्षायिक सम्यक्त्व है, नित्य कर्म क्षय हेतु ॥६४४॥

अर्थ—जो दर्शनमोहकर्म के नाश हो जाने पर निर्मल श्रद्धान होता है उसको क्षायिक सम्मयक्त्व कहते है वह विनाश रहित है और शेष कर्म के नाश का कारण है ॥६४४॥

आगे क्षायिकसम्यक्त्व को पतन रहित दिखाते है ।

वयणेहिं वि हेदूहिं वि इंदियभयआणएहिं रूवेहिं ।
वीभच्छजुगुंच्छाहि य तेलोक्केण वि ण चालेज्जो ॥६४५॥

चले न वच विपरीत सुन, भय दायक आकार ।
चले न वस्तू अशुचि लख, चले न जग अपकार ।६४५।

अर्थ—क्षायिक्सम्यक्‌दर्शन सिद्धान्त मे विपरीत वचन सुन कर भी पतन को प्राप्त नही होता, भयउत्पादकवस्तुओ के आकार को देख कर भी पतन को प्राप्त नही होता, ग्लानि कारक वस्तुओं को देख कर पतन को प्राप्त नही होता अथवा तीन लोक के सब जीव मिल कर भी उपद्रव करें तो भी पतन को प्राप्त नही होता है ॥६४५॥

आगे क्षायिकसम्यक्‌दर्शन की उत्पत्ति के कारण दिखाते है ।

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥६४६॥

दर्श मोह के क्षपण हित, कर्म भूमि नर कोय।
निकट केवली श्रुत हो, पूरण चहुँ गति होय ॥६४६॥

अर्थ—दर्शनमोहकर्म के क्षय का प्रारभ कर्मभूमि के मनुष्य के केवली अथवा श्रुतकेवली के चरणकमलो के समीप होता है और उसकी पूर्णता उसी भव मे होती है अथवा चारो गति मे से किसी गति के धारण करने पर होती है ॥६४६॥

आगे क्षयोपशमसम्यक्त्व का स्वरूप दिखाते है।

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ॥६४७॥

समकित प्रकृती के उदय, जो सुतत्व श्रद्धान।
सो चल मलिन अगाढ है, वेदक समकित जान। ६४७॥

अर्थ— जो सम्यकत्वमोहकर्म की प्रकृति के उदय से सम्यकत्व होता है वह चल, मलिन और अगाढ होता है इसलिए इसको क्षयो-पशमसम्यकत्व कहते है ॥६४७॥

आगे उपशमसम्यकत्व का स्वरूप दिखाते है।

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं ॥६४८॥

दर्श मोह उपशम भये, तत्व रुची जो सोच।
वह उपशम सम्यकत्व है, जिमि निर्मल जल कीच ।६४८।

अर्थ–जो सात प्रकृतियो के उपशम से तत्वो का श्रद्धान होता है

उसको उपशमसम्यक्दर्शन कहते है वह ऐसा निर्मल होता है जैसा कि कीचड से मिला हुआ जल निर्मली आदि डालने से निर्मल हो जाता है ॥६४८॥

आगे सम्यकत्व के कारणो को दिखाते है।

खयउपसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥६४९॥

क्षय उपशम शुधि देशना, प्रायोगा अरु करण।
आदि चारि सामान्य हैं, करण जु समकित वरण ॥६४९॥

अर्थ—क्षयोपशमिक, विशुद्ध, देशना, प्रायोग्य और करण ये पाच लब्धिया है इनमे आदि की चार सामान्य है करणलब्धि विशेष है सामान्य भव्य और अभव्य के हो सकती है किन्तु करणलब्धि भव्य के ही होती है इसके होने पर सम्यकत्व अवश्य होता है ॥६४९॥

क्षयोपशमिकलब्धि—सम्यकत्व के विपरीत कर्मो का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम होने को क्षयोपशमिकलब्धि कहते है।

विशुद्धिलब्धि—उपरोक्त उस क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम मे विशेष निर्मलता होने को विशुद्धि लब्धि कहते है।

देशनालब्धि—सम्यकत्व पोषक उपदेश मिलने को देशनालब्धि कहते है।

प्रायोग्यलब्धि—कर्मो की अत.कोडाकोडी स्थिति रहने को प्रायोग्यलब्धि कहते है।

करणलब्धि—अध.करण, अपूर्णकरण और अनिवृतिकरणरूप परिणाम होने को करणलब्धि कहते है इन अध करणादि का वर्णन दोहा न० ४८ से ५० दोहो मे हो चुका है।

आगे सम्यक्त्व के योग्यपात्र को दिखाते है।

चदुगदिभव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो।
जागारो सल्लेसो सलद्धिगो सम्ममुवगमई ॥६५०॥

चहुँगति सैनी भव्य अरु, पूर्ण शुद्ध उपयोग।
जागृत शुभ लेश्या करण, धारक सो दृग जोग।६५०।

अर्थ—जो चारो गतियो मे से किसी गति का जीव हो, भव्य हो, सैनी हो, पर्याप्त हो, निर्मल परिमाण वाला हो, ज्ञानोपयोग वाला हो, जागृत-अवस्था मे हो और शुभ लेश्या वाला हो वह करणलब्धि को ग्रहण कर सम्यक्त्व को प्राप्त करता है ॥६५०॥

आगे चारो आयुओ के वध मे सम्यक्त्व दिखाते है।

चत्तारिवि खेत्ताइं आउगवंधेण होदि सम्मत्तं।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥६५१॥

सम्यक दर्शन हो सके, किसी आयु को बाँधि।
अणु-व्रत मह-व्रत नहि लहे, सुर विन त्रय वय वांधि ६५१

अर्थ—चारो गति सम्वधी आयुओ मे से किसी भी आयु के वध करने पर भी सम्यक्त्व हो सकता है किन्तु देव आयु को छोड कर शेष:आयुओ मे से किसी भी आयु के वध होने पर अणुव्रत अथवा महाव्रत ग्रहण नही हो सकता ॥६५१॥

आगे सासादनमार्गणा का स्वरूप दिखाते है।

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो।
सो सासणोत्ति णेयो पंचमभावेण संजुत्तो ॥६५२॥

नहिं पाया मिथ्यात्व को, समकित गुण को खोय।
उसको सासादन कहें, पंचम भाव जु सोय॥५५२॥

अर्थ—जो जीव सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त नहि हुआ उस वीच की अवस्था को सासादन कहते है उसके पारिणामिक भाव होता है ॥६५२॥

आगे मिश्रमार्गणा का स्वरूप दिखाते है।

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु।
विरयाविरयेण समो सम्मामिच्छोत्ति णायव्वो ॥६५३॥

सरधा अनसरधा रहे, एक काल जिस जीव।
विरताविरता की तरह, समकित मिथ्या जीव॥६५३॥

अर्थ—जिस जीव के विरताविरत की तरह एक समय मे श्रद्धान और अश्रद्धान दोनो पाये जाते है उसको सम्यक्मिथ्यादृष्टि कहते है ॥६५३॥

आगे मिथ्यात्व मार्गणा का स्वरूप दिखाते है।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥६५४॥

मिथ्यादृष्टी जीव को, रुचे न जिन उपदेश।
रुचे कहा अरु अन कहा, जो भाषा पर भेष ॥६५४॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव को श्री जिन भगवान का कहा हुआ सत उपदेश नही रुचता अपितु कुगुरुओ का कहा हुआ और अनकहा हुआ भी मिथ्या उपदेश रुचता है उसको मिथ्यादृष्टि जीव कहते है ॥६५४॥

आगे क्षायिकसम्यक्दृष्टि जीवो की सख्या दिखाते है।

वासपुधत्ते खइया संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे।
तो संखपल्लठिदिये केवदिया एवमणुपादे ॥६५५॥

वर्ष भिन्न में क्षायिका, प्रथम युगल में संख्य।
संख्य पल्य में किते हों, त्रैराशिक से असंख्य ॥६५५॥

अर्थ—क्षायिकसम्यक्दृष्टि जीव सौधर्म-ईसान स्वर्ग के विषे एक पृथक्त्व वर्ष मे सख्यात उत्पन्न होते है तो सख्यातपल्य के समयो मे

कितने हो सकते है ? इसका त्रैराशिक करने से उनका परिमाण निकलता है क्षायिकसम्यक्दृष्टि जीव अधिकाश सौधर्म-ईसान स्वर्ग मे अधिक होते है ॥६५५॥

आगे क्षायिकादि तीनो की सख्या दिखाते है।

संखावलिहिदपल्ला खइया तत्तो य वेदमुवसमगा।
आवलिअसंखगुणिदा असंखगुणहीणया कमसो ॥६५६॥

संख्यावलि हत पल्य क्षय, उससे वेदक शांत।
अगणित आवलि गुणित हैं, गुणि असंख्य कम शांत॥

अर्थ—सख्यातआवली से भक्त पल्य के परिमाण बराबर क्षायिक-सम्यक्दृष्टि होते है इनके परिमाण से आवली के असख्यातवे भाग का गुणा करने से जो परिमाण आवे उतने वेदकसम्यक्दृष्टि होते है और क्षायिकसम्यक्दृष्टियो से असख्यात गुणे हीन उपशमसम्यक्-दृष्टि होते है ॥६५६॥

आगे सासादन, मिश्र और मिथ्यादृष्टियों की सख्या दिखाते है।

पल्लासंखेज्जदिमा सासणमिच्छा य संखगुणिदा हु।
मिस्सा तेहिं विहीणो संसारी वामपरिमाणं ॥६५७॥

पल्य असंख्ये सासदन, संख्य गुणे मिश्रान।
संसारी में पन घटें, मिथ्यात्वी परिमाण ॥६५७॥

अर्थ—पल्य के असख्यातवे भाग सासादन वाले है इनसे सख्यात गुणे मिश्र वाले है और ससारीजीवराशि मे उपरोक्त पाचो (क्षायिक, उपशम, क्षयोपशमिक, सासादन, मिश्र) को घटाने से जो सख्या शेप रहे उतने मिथ्यादृष्टि जीव है ॥६५७॥

सम्यक्त्व मार्गणा समाप्त।

आगे सैनी असैनी का अतरग स्वरूप दिखाते है।

णोइंदियआवरणखओवसमं तज्जवोहणं सण्णा।
सा जस्स सो दु सण्णी इदरो सेसिंदिअवबोही ॥६५८॥

क्षय उपशम मन आवरण, या उस जनिता ज्ञान।
उस जिय को सैनी कहें, इतर असैनी जान ॥६५८॥

अर्थ—जिसके मन के आवरण का क्षयोपशम पाया जावे और जिनके उस क्षयोपशम जनित ज्ञान पाया जावे उसको सैनी कहते है तथा इससे विपरीत को असैनी कहते है ॥६५८॥

आगे सैनी और असैनी का वाह्य स्वरूप दिखाते है।

सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंवेण।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी दु ॥६५९॥

शिक्षा किरिया देसना, पाठ गहे चित धार।
उस जिय को सैनी कहे, इतर असैनी भार॥६५९॥

अर्थ—जो शिक्षा ग्रहण करे, जो मन से विचार करे, जो उपदेश सुने और दिये हुये पाठ को स्मरण रक्खे उसको सैनी कहते है और इससे विपरीत को असैनी कहते है ॥६५९॥

आगे उपरोक्त आशय को स्पष्ट दिखाते है।

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च।
सिक्खदि णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीदो॥६६०॥

पूरव कार्याकार्य अरु, तत्वातत्व विचार।
नाम लिये वोले समन, इतर असैनी भार॥६६०॥

अर्थ—जो जीव किसी कार्य करने के पूर्व कार्याकार्य का विचार

कर सकता हो, सत्यासत्य का स्वरूप समझ सकता हो और उसका जो नाम रक्खा हो उस नाम को लेने से बोलता हो उसको सैनी कहते है इससे विपरीत को असैनी कहते है ॥६६०॥

आगे सैनी असैनी की सख्या दिखाते है ।

देवेहिं सादिरेगो रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।
तेणूणो संसारी सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ॥६६१॥

देवों से कुछ अधिक है, सैनी का परिमाण ।
संसारी में वे घटें, शेष असैनी जान ॥६६१॥

अर्थ—देवो से कुछ अधिक सैनी है कारण सैनियो मे देवो की सख्या अधिक है और सैनियो की सख्या ससारी जीव राशि में कम करने से जो सख्या शेष रहे उतने असैनी जीव है ॥६६१॥

सैनी मार्गणा समाप्त ।

आगे आहार का स्वरूप दिखाते है ।

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं ।
णोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं णाम ॥६६२॥

देह उदय से देह वच, अरु मनयोग सँभार ।
नोकर्मों की वर्गणा, ग्रहण नाम आहार ॥६६२॥

अर्थ—जो शरीरनामकर्म के उदय से देह, वचन और द्रव्य-मन बनने के योग्य नोकर्मवर्गणाओ का ग्रहण होता है उसको आहार कहते हैं ॥६६२॥

आगे आहार का अर्थ दिखाते है ।

आहरदि सरीराणं तिण्हं एयदरवग्गणाओ य ।
भासामणाणं णियदं तम्हा आहारयो भणियो ॥६६३॥

आदि तीन में किसी इक, तन मन वाणी मान ।
करे ग्रहण जिय वर्गणा, आहारक यों जान ॥६६३॥

अर्थ—औदारिक, विक्रियक और आहारकशरीरो मे से किसी एक शरीर, वचन और मन के योग्य नोकर्मवर्गणाओ को प्रतिसमय जीव ग्रहण करता है उसको आहार कहते है ॥६६३॥

आगे आहारक और अनाहारको की सख्या दिखाते है ।

विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदो अयोगि य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥६६४॥

विग्रह गति समुघात जिन, और अयोगी सिद्ध ।
अनाहार अरु शेष सब, आहारका प्रसिद्ध ॥६६४॥

अर्थ—मोडागति मे परभव को जाने वाले चारो गति के जीव, प्रतर और लोकपूर्ण समुदघात करने वाले सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्धभगवान अनाहारक और शेष सब आहारक है ॥६६४॥

आगे समुदघात के भेद दिखाते है ।

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥६६५॥

आहारक अरु वेदना, तैजस मरण कषाय ।
वैक्रिय केवल सात ये, समुद्घात कहलाय ॥६६५॥

अर्थ—आहारक, वेदना, तैजस, मरणान्तिक, कषाय, विक्रिया और केवल ये सात समुदघात के भेद है ॥६६५॥

आगे समुदघात का स्वरूप दिखाते है।

मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु ॥६६६॥

मूल शरीर न छोड़ कर, कर्म सहित निज काय।
तन से बाहिर कढे वह, समुद्घात कहलाय ॥६६६॥

अर्थ—जो मूल शरीर को छोडे विना तैजस और कार्माणशरीर सहित आत्मा के प्रदेश उस शरीर से बाहिर निकलते है उसको समुदघात कहते है ॥६६६॥

आगे समुदघात का गमन दिखाते है।

आहारमारणंति य दुगं पि णियमेण एगदिसिगं तु।
दसदिस गदा हु सेसा पंच समुग्घादया होंति ॥६६७॥

आहारक मरणांतिका, एक दिशा को जात।
दशोंदिशा को जात है, शेष पंच समुघात ॥६६७॥

अर्थ—आहारक और मरणातिक ये दो समुदघात किसी एक दिशा को जाते है और शेप पाच समुदघात दशो दिशाओ को जाते है ॥६६७॥

आगे आहारक और अनाहार का काल दिखाते है।

अंगुलअसंखभागो कालो आहारयस्स उक्कस्सो।
कम्मम्मि अणाहारो उक्कस्सं तिण्णि समया हु ॥६६८॥

अंगुल असंख्य भाग च्रण, आहारक उत्कृष्ट।
कारमाण अनहार का, तीन समय उत्कृष्ट ॥६६८॥

अर्थ—आहारक का उत्कृष्ट काल सूक्ष्मागुल के असख्यातवे भाग वरावर है और जघन्य काल तीन समय कम एक श्वास के अठारहवे भाग वरावर है कारण मोडागति सम्वन्धी तीन समयो को घटाने से क्षुद्रभव का काल इतना ही रहता है कार्माणशरीर सम्वन्धी अनाहार का उत्कृष्ट काल तीन समय तक का है जघन्य काल एक समय का

है ॥६६८॥

आगे आहारक और अनाहारको की सख्या दिखाते है।

कम्मइयकायजोगी होदि अणाहारयाण परिमाणं।
तव्विरहिद संसारे सव्वो आहारपरिमाणं ॥६६९॥

कारमाण काया जिता, अनाहार परिमाण।
संसारी में वे घटें, आहारक परिमाण ॥६६९॥

अर्थ-जितना कार्माणकाययोगियो का परिमाण है उतने अनाहारक जीव हे और ससारी जीव राशि मे अनाहारक घटाने से जो परिमाण शेप रहे उतने आहारक जीव है ॥६६९॥

आहारमार्गणा समाप्त।

आगे उपयोग का स्वरूप दिखाते है।

वत्थुणिमित्तं भावो जादो जीवस्स जो दु उवजोगो।
सो दुविहो णायव्वो सायारो चेव णायारो ॥६७०॥

जीव भाव वस्तू ग्रहण, वर्ते सो उपयोग।
दोय भेद उसके विषें, दर्शन ज्ञान मनोग ॥६७०॥

अर्थ—जो जीव के भाव किसी वस्तु को ग्रहण (जानने) करने के होते है उसको उपयोग कहते है वह दो प्रकार का होता है दर्शन और ज्ञान ॥६७०॥

आगे दर्शन और ज्ञानोपयोग के भेद दिखाते है।

णाणं पंचविहंपि य अण्णाणतियं च सागरुपजोगो।
चदुदंसणमणगारो सव्वे तल्लक्खणा जीवा ॥६७१॥

पांच ज्ञान अज्ञान त्रय, आठ भेद ये ज्ञान ।
दर्शन चार प्रकार है, जिय लक्षण सब जान ।६७१।

अर्थ—पाच प्रकार का सम्यक्ज्ञान और तीन प्रकार का अज्ञान इस प्रकार आठ भेद ज्ञानोपयोग के है और चार प्रकार का दर्शनोपयोग है ॥६७१॥

आगे ज्ञानोपयोग का स्वरूप दिखाते है ।

मदिसुदओहिमणेहिंय सगसगविसये विसेसविण्णाणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो दु सायारो ॥६७२॥

मति श्रुत अवधी मनपरय, निजनिज विषय विशेष ।
अन्तर्मुहूर्त्त काल तक, लखे ज्ञान का भेष ॥६७२॥

अर्थ—जो मति, श्रुत, अवधि और मनपर्ययज्ञान द्वारा अपने २ विषय की वस्तुओ का भेद रूप ज्ञान होता है उसको ज्ञानोपयोग कहते है इसका काल अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है ॥६७२॥

आगे दर्शनोपयोग का स्वरूप दिखाते है ।

इंदियमणोहिणा वा अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो अणायारो ॥६७३॥

इन्द्रिय मन अरु अवधि से, वस्तु गहे अविशेष ।
अन्तर्मुहूर्त्त काल तक, देखे दर्शन भेष ॥६७३॥

अर्थ—जो पाच इन्द्रिय, मन और अवधिदर्शन से वस्तुओ को अभेदरूप देखता उसको दर्शनोपयोग कहते है इसका काल अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है ॥६७३॥

आगे उपयोग वालो की सख्या दिखाते है ।

णाणुवजोगजुदाणं परिमाणं णाणमग्गणं व हवे ।
दंसणुवजोगियाणं दंसणमग्गण व उत्तकमो ॥६७४॥

ज्ञान मर्गणा की तरह, संख्या ज्ञान सँभार ।
दर्श मार्गणा की तरह, संख्या दर्शन धार ॥६७४॥

अर्थ—ज्ञानोपयोग वालो की सख्या ज्ञानमार्गणा की तरह समझना चाहिये और दर्शनोपयोग वालो की संख्या दर्शनमार्गणा की तरह समझना चाहिये ॥६७४॥

॥ उपयोगाधिकार समाप्त ॥

आगे मार्गणाओ गुणस्थान दिखाते है ।

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणुवजोगो ।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु पत्तेयं ॥६७५॥

गुण पर्याप्ती प्राण अरु, संज्ञा मग उपयोग ।
कहूँ योग्य प्रत्येक में, गुण मारगणा योग ॥६७५॥

अर्थ—उपरोक्त वीस प्रकार के कथन मे से गुणस्थान और मार्गणा स्थानों मे गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, मार्गणा और उपयोग का यथासभव वर्णन करता हूँ ॥६७५॥

आगे गति से कायमार्गणा तक के गुणस्थान दिखाते है ।

चउपण चोद्दह चउरो णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे ।
तसकाये सेसिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं ॥६७६॥

चउ पन चौदह चार हैं, चहुँ गति में गुणथान ।
चौदह पंचेन्द्रिय त्रसा, शेष विषैं इक जान ॥६७६॥

अर्थ—नरकगति मे आदि के चारगुणस्थान होते है तिर्यंचगति

मे आदि के पाचगुणस्थान होते है मनुष्यगति में चौदह गुणस्थान होते है और देवगति मे आदि के पाचगुणस्थान होते है। पचेद्रिय जीवो के चौदह गुणास्थान होते है और एकेन्द्रिय से लेकर चौइन्द्रिय जीव के केवल मिथ्यात्वगुणस्थान होता है। त्रसजीवो के चौदह गुणस्थान होते है और स्थावर जीव के केवल मिथ्यात्वगुणस्थान होता है ।।६७६।।

आगे मन और वचन वालो के गुणस्थान दिखाते है।

मज्झमचउमणवयणे सण्णिप्पहुदि दु जाव खीणोत्ति।
सेसाणं जोगित्ति य अणुभयवयणं तु वियलादो ।।६७७।।

मध्य वचन मन चार ये, सैनी से क्षय मोह।
शेष सयोगी विकल से, अनुभय वाणी सोह।।६७७।।

अर्थ—असत्यमन, असत्यवचन, उभयमन, उभयवचन योग सैंनी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक होते है सत्यमन, सत्य-वचन और अनुभयमनयोग सैनीमिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगीगुण-स्थान तक होते है तथा अनुभयवचनयोग दो इन्द्रिय जीव से लेकर सयोगगुणस्थान तक होता है ।।६७७।।

आगे औदारिक और औदारिकमिश्र के गुणस्थान दिखाते है।

औरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोगोत्ति।
तम्मिस्समपज्जत्ते चदुगुणठाणेसु णियमेण ।।६७८।।

थावर से सायोग तक, औदारिक तन योग।
चउ अपूर्ण गुण थान तक, औदारिक मिस योग।।६७८।।

अर्थ—पर्याप्तस्थावरमिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगगुणस्थान तक औदारिककाययोग होता है और मिथ्यात्व, सासादन, अविरत और सयोगगुणस्थान की अपर्याप्तअवस्था मे औदारिक-मिश्रकाययोग होता है ।।६७८।।

आगे उपरोक्त आशय को स्पष्ट दिखाते हैं।

मिच्छे सासणसम्मे पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि।
णरतिरियेवि य दोण्णिवि होंतिति जिणेहिं णिद्दिट्ठ॥७९॥

अम सासा नर वेद युत, अविरत कपाट योग।
नर पशु के हों दोय वे, कहे जिनेश सयोग ॥६७९॥

अर्थ—मिथ्यात्व, सासादन, और पुरुषवेद के उदय सहित अविरत गुणस्थानवाले मनुष्य और तिर्यचों की अपर्याप्तअवस्था मे औदारिक मिश्रकाययोग होता है और कपाटसमुदघात करने वाले सयोगगुण-स्थान मे भी औदारिकमिश्रकाययोग होता है तथा औदारिककाययोग नव मनुष्य और तिर्यचो की पर्याप्त अवस्था मे होता है ॥६७९॥

आगे विक्रिय और विक्रियमिश्र के गुण स्थान दिखाते हैं।

वेगुव्वं पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु।
सुरणिरयचउट्ठाणे मिस्से णहि मिस्सजोगो हु ॥६८०॥

सुर नारक पर्याप्त के, चउ थल विक्रिय मान।
अपर्याप्त के मिश्रतन, मिश्र न तीजे थान॥६८०॥

अर्थ—मिथ्यात्व मे लेकर अविरतगुणस्थान वाले पर्याप्त देव और नारकियों के विक्रियककाययोग होता है तथा उनके मिश्रगुणस्थान को छोडकर शेष तीन गुणस्थानो की अपर्याप्त अवस्था मे विक्रियक-मिश्रकाययोग होता है ॥६८०॥

आगे आहारक और आहारमिश्र के गुणस्थान दिखाते हैं॥

आहारो पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु।
अंतोमुहुत्तकाले छट्ठगुणे होदि आहारो ॥६८१॥

छट्ठे गुण पर्याप्त के, आहारक तक ढाल।
अपर्याप्त के मिश्र तन, अन्तर्मुहूर्त काल ॥६८१॥

अर्थ— जो प्रमत्तगुणस्थान वाले मुनि के आहारक शरीर होता है उसकी पर्याप्तअवस्था को आहारककाययोग कहते है और उसकी अपर्याप्तअवस्था को आहारकमिश्रकाययोग कहते है इन दोनो का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥६८१॥

आगे कार्माणकाययोग के गुणस्थान दिखाते है।

ओरालियमिस्सं वा चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं ।
चदुगदिविग्गहकाले जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे ।६८२।

औदारिक मिस की तरह, कारमाण चउ थान।
चहुँगति परभव काल अरु, प्रतर पूर्ण जग जान।६८२

अर्थ—कार्माणकाययोग औदारिकमिश्रकाययोग की तरह चार गुणस्थानो मे होता है जिसमे मिथ्यात्व, सासादन और अविरतगुणस्थान मे तो परभवगति को जाने के काल मे होता है और सयोगगुणस्थान मे प्रतर और लोग पूर्ण समुद्घात के समय होता है ॥६८२॥

आगे तीन वेदो के गुणस्थान दिखाते है।

थावरकायप्पहुदी सढो सेसा असण्णिआदी य ।
अणियट्टिस्स य पढमो भागोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८३॥

थावर तन से षंड अरु, अमना से नर नार।
प्रथम भाग अनि-वृत्ति तक, होवे लेहु सँभार ॥६८३॥

अर्थ–नपुसकवेद स्थावरकाय से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम सवेद भाग तक रहता है और स्त्री तथा पुरुपवेद असैनीपचेन्द्रिय से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम सवेदभाग तक रहते है ॥६८३॥

आगे चारों कषायों के गुणस्थान दिखाते है।

थावरकायप्पहुदी अणियट्टीबितिचउत्थभागोत्ति।
कोहतियं लोहो पुण सुहमसरागोत्ति विण्णेयो ॥६८४॥

थावर से अनिवृत्ति के, दो त्रय चतुर्थ भाग।
क्रोध त्रयी अरु लोभ इक, दशम थान तक जाग।६८४।

अर्थ—क्रोध, मान और मायाकषाय स्थावरकाय से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के क्रम से दो, तीन और चतुर्थ भाग तक रहती है और लोभ कषाय दशवें गुणस्थान तक रहती है ॥६८४॥

आगे कुमति आदि अज्ञान के गुणस्थान दिखाते है।

थावरकायप्पहुदी मतिसुदअण्णाणयं विभंगो दु।
सण्णी पुण्णप्पहुदी सासणसम्मोत्ति णायव्वो ॥६८५॥

थावर से सासा तलक, कुमति रु कुश्रुत होय।
कुअवधि सैनी पूर्ण से, सासादन तक जोय॥६८५॥

अर्थ—कुमति और कुश्रुतज्ञान स्थावर से लेकर सासादनगुणस्थान तक होता है और कुअवधिज्ञान सैनी पर्याप्त से लेकर सासादन गुणस्थान तक होता है ॥६८५॥

आगे सुमति आदि ज्ञानों के गुणस्थान दिखाते है।

सण्णाणतिगं अविरदसम्मादी छट्ठगादि मणपज्जो।
खीणकसायं जाव दु केवलणाणं जिणे सिद्धे ॥६८६॥

सत्य ज्ञान त्रय दृष्टि से, क्षीण मोह तक मान।
चौथा छै से क्षीण तक, केवल जिनसे जान॥६८६॥

अर्थ—सुमति आदि तीन सम्यक्ज्ञान अविरत से लेकर क्षीण-

मोहगुणस्थान तक होते है मनपर्यंयज्ञान प्रमत्त से लेकर क्षीणमोह-गुणस्थान तक होता है और केवलज्ञान सयोगगुणस्थान से लेकर सिद्ध भगवान तक होता है ॥६८६॥

आगे सयम के गुणस्थान दिखाते है।

अयदोत्ति हु अविरमणं देसे देसो पमत्त इदरे य।
परिहारो सामाइयछेदो छट्ठादि थूलोत्ति ॥६८७॥
सुहमो सुहमकसाये सते खीणे जिणे जहक्खादं।
सजममग्गणभेदा सिद्धे णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६८८॥

अनसंयम अविरत तलक, देश देश में मान।
परिहारा प्रमताप्रमत, समय छेद चउ थान ॥६८७॥
सूक्ष्म सूक्ष्म में अंत का, शांत क्षीण जिन मान।
संयम मग के भेद से, सिद्ध रहित सब थान ॥६८८॥

अर्थ—असयम मिथ्यात्व से लेकर अविरतगुणस्थान तक होता है देशसयम देशविरतगुणस्थान मे होता है परिहारविशुद्धसयम प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान मे होता है सामायिक और छेदोपस्थापना-सयम प्रमत्त से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान तक होते है सूक्ष्म-सापरायसयम सूक्ष्मसायरायगुणस्थान में होता है और यथाख्यात-सयम उपशात, क्षीणमोह, सयोग और अयोगगुणस्थान मे होता है सिद्ध भगवान गुणस्थान और मार्गणाओ से रहित है ॥६८७-६८८॥

आगे दर्शन मार्गणा के गुणस्थान दिखाते है।

चउरक्खथावरविरदसम्माइट्ठी दु खीणमोहोत्ति।
चक्खुअचक्खू ओही जिणसिद्धे केवलं होदि ॥६८९॥

चउ इन्द्रिय से चक्षु दृग, थावर से पर दर्श।
अवधि दृष्टि से क्षीण तक, जिनसे केवल दर्श।६८६।

अर्थ—चक्षुदर्शन चौइन्द्रिय से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक होता है अचक्षुदर्शन स्थावर से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक होता है अवधिदर्शन सम्यक्दृष्टि से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक होता है और केवलदर्शन सयोगगुणस्थान से लेकर सिद्धभगवान तक होता है।६८६।

आगे लेश्याओं के गुणस्थान दिखाते हैं।

थावरकायप्पहुदी अविरदसम्मोत्ति असुहतियलेस्सा।
सण्णीदो अपमत्तो जाव दु सुहतिण्णिलेस्साओ ॥६६०॥
णवरि य सुक्का लेस्सा सयोगिचरिमोत्ति होदि णियमेण।
गयजोगिम्मि वि सिद्धे लेस्सा णत्थित्ति णिद्दिट्ठ ॥६९१॥

थावर से अविरत तलक, अशुभ जु लेश्या तीन।
सैनी से सप्तम तलक; पीत पद्म दो चीन ॥६६०॥
सैनी से तेरह तलक, शुक्ल जु लेश्या मान।
योगरहित अरु सिद्ध के, लेश्या एक न जान।६६१।

अर्थ—आदि की तीन लेश्या स्थावर से लेकर अविरतगुणस्थान तक होती है पीत और पद्मलेश्या सैनीमिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत-गुणस्थान तक होती है और शुक्ललेश्या सैनी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगगुणस्थान तक होती है अयोगी और सिद्धभगवान सब लेश्याओ से रहित है ॥६६०–६६१॥

आगे भव्याभव्य के गुणस्थान दिखाते हैं।

थावरकायप्पहुदी अजोगि चरिमोत्ति होंति भवसिद्धा।
मिच्छाइट्ठिट्ठाणे अभव्वसिद्धा हवंतित्ति ॥६६२॥

थावर से अनयोग तक, भव्य जीव का वास।
अभवि जीव मिथ्यात्व में, करते सदा निवास ॥६६२॥

अर्थ—भव्य जीव स्थावर से लेकर अयोगगुणस्थान तक होते है और अभव्य जीव केवल मिथ्यात्वगुणस्थान मे ही होते है ॥६६२॥

आगे सम्यक्त्व के गुणस्थान दिखाते है।

मिच्छो सासणमिस्सो मगसगठाणम्मि होदि अयदादो।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तोत्ति ॥६६३॥

मिथ्या सासा मिश्र ये, निज निज थल विख्यात।
पहिला समकित वेदका, चौथे से तक सात ॥६६३॥

अर्थ—मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र ये तीन अपने २ गुणस्थान मे होते है प्रथमोपशम और क्षयोपशमसम्यक्त्व अविरत से लेकर अप्रमत्तगुणस्थान तक होते है ॥६६३॥

आगे द्वितीयोपशम और क्षायिक के गुणस्थान दिखाते है।

विदियुवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि संतमोहोत्ति।
खइगं सम्म च तहा सिद्धोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६६४॥

अविरत से उपशांत तक, दूजा समकित होय।
अरु अविरत से सिद्ध तक, क्षायिक समकित जोय।६६४।

अर्थ—द्वितीयोपशमसम्यक्त्व अप्रमत्त से उत्पन्न होकर उपशातमोहगुणस्थान तक जाता है और तत्पश्चात् लौटकर अविरतगुणस्थान तक आता है किसी आचार्य के मत से सासादनगुणस्थान तक आता है इस रीति से अप्रमत्तगुणस्थान के नीचे के गुणस्थान इस सम्यक्त्व के कहे जाते है अन्यथा अप्रमत्त से उपशात गुणस्थान तक होता है और क्षायिकसम्यक्त्व अविरतगुणस्थान से लेकर सिद्ध भगवान तक होता है ॥६६४॥

आगे सैंनी और असैंनी के गुणस्थान दिखाते हैं।

सण्णी सण्णिप्पहुदी खीणकसाओत्ति होदि णियमेण।
थावरकायप्पहुदी असण्णित्ति हवे असण्णी हु ॥६९५॥

सैंनी से ले क्षीण तक, सैंनी जीव पिछान।
थावर से सकल अमन, सर्व असैंनी जान ॥६९५॥

अर्थ—सैंनी जीव सैंनी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक होते हैं और असैंनी स्थावर से लेकर असैंनीपंचेन्द्रिय तक होते हैं ॥६९५॥

आगे आहार और अनाहार के गुणस्थान दिखाते हैं।

थावरकायप्पहुदी सजोगिचरिमोत्ति होदि आहारी।
कम्मइय अणाहारी अजोगिसिद्धे वि णायव्वो ॥६९६॥

थावर से तेरह तलक, आहारी सब जान।
अनाहार कार्माण धर, अरु अयोग गुणथान ॥६९६॥

अर्थ— आहारी जीव स्थावर से लेकर सयोगकेवलीगुणस्थान तक होते हैं और अनाहारी जीव कार्माणकाययोग वाले और अयोगकेवलीगुणस्थान वाले जीव होते हैं ॥६९६॥

आगे गुणस्थानों में जीवसमास दिखाते हैं।

मिच्छे चोद्दस जीवा सासण अयदे पमत्तविरदे य।
सण्णिदुगं सेसगुणे सण्णीपुण्णो दु खीणोत्ति ॥६९७॥

जिय चौदह मिथ्यात्व में, द्वय चउ प्रमत सयोग।
सैंनी पूर्णापूर्ण हैं, शेष पूर्ण मन योग ॥६९७॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में दोहा नं० ७२ में कहे हुए १४

जीवसमास होते है सासादन, अविरत, प्रमत्त और सयोगकेवलगुण-स्थान मे सैनीपर्याप्त और सैनीअपर्याप्त ये दो जीवसमास होते है और शेष गुणस्थानो मे केवल एक सैनीपर्याप्तजीवसमास होता है ॥६९७॥

आगे मार्गणाओ मे जीव समास दिखाते है ।

तिरियगदीए चोद्दस हवंति सेसेसु जाण दो दो दु ।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि ॥६९८॥

पशु गति चौदह जीव हैं, दो दो शेष पिछान ।
जीव भेद संक्षेप से, मारगणा में जान ॥६९८॥

अर्थ—तिर्यंचगति मे दोहा न० ७२ मे कहे हुये १४ जीवसमास होते है शेष गतियो मे सैनीपर्याप्त और सैनीअपर्याप्त ये दो जीवसमास होते शेष मार्गणाओ मे जीव समास लगाना सुगम है ॥६९८॥

आगे गुणस्थानो मे पर्याप्त और प्राण दिखाते है ।

पज्जत्ती पाणावि य सुगमा भाविंदयं ण जोगिम्हि ।
तहि वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ ॥६९९॥

पूर्ण प्राण ये सुगम हैं, भावेन्द्रिय न सयोग ।
श्वास आयु वच काय त्रय, दो जिन आयुअयोग ।६९९॥

अर्थ—गुणस्थानो मे पर्याप्त और प्राण का लगाना सुगम है कारण ये क्षीणमोहगुणस्थान तक सब पर्याप्त और सब प्राण होते है सयोगकेवलिगुणस्थान मे भावेन्द्रिय नही होती किन्तु द्रव्येन्द्रियो की अपेक्षा छहो पर्याप्तिया होती है और वचन, श्वास, आयु और काय बल ये चार ही प्राण होते है इस गुणस्थान के अन्त मे वचन बल का अभाव होने से तीन प्राण रहते है श्वासोश्वास के अभाव होने से दो प्राण रहते है और अयोगगुणस्थान मे कायबल के अभाव होने से

केवल आयुप्राण रहता है ॥६६६॥

आगे गुणस्थानो मे सज्ञाओ को दिखाते है।

छट्ठोत्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा।
पुव्वो पढमणियट्टी सुहुमोत्ति कमेण सेसाओ ॥७००॥

छट्ठे तक दीखे अशन, कर्म उदय से शेष।
भय अठ तक मैथुन नवें, परि-ग्रह दशवें देश ॥७००॥

अर्थ—आहार सज्ञा कार्यरूप से होती मिथ्यात्व से लेकर प्रमत्त-गुणस्थान तक प्रकट दिखलाई देती है और भय, मैथुन और परिग्रह सज्ञा कार्यरूप से होती मिथ्यात्व से लेकर देशविरतगुणस्थान तक प्रकट दिखलाई देती है किन्तु इसके ऊपर अप्रमत्तादि मे जो तीन सज्ञा कही जाती है वे कारण की दृष्टि से कही जाती है क्योंकि भयसज्ञा का कारण भयकर्म का उदय अपूर्वकरणगुणस्थान तक होता है मैथुनसज्ञा का कारण वेदकर्म का उदय अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के सवेदभाग तक होता है परिग्रहसज्ञा का कारण लोभकर्म का उदय सूक्ष्मसापरायगुणस्थान तक होता है आहार सज्ञा का कारण असाता वेदनीकर्म का उदय केवल प्रमत्तगुणस्थान तक ही होता है और उपशातकपायादि गुणस्थानो मे कोई भी सज्ञा नही होती ॥७००॥

आगे मार्गणा और उपयोग के कथन को सुगम दिखाते है।

मग्गण उवजोगावि य सुगमा पुव्व परूविदत्तादो।
गदिआदिसु मिच्छादी परूविदे रूविदा होंति ॥७०१॥

मारगणा उपयोग का, कथन सरल पहिचान।
गतिआदिहि भ्रम आदि का, कथन कर चुके जान॥७०१॥

अर्थ—मार्गणा और उपयोग का कथन सरल है कारण गति आदि मार्गणाओ मे मिथ्यात्वादि गुणस्थानो का कथन पूर्व इस ग्रंथ

मे भली भाति कर चुके है ।।७०१।।

आगे गुणस्थानो मे योग दिखाते है ।

तिसु तेरं दस मिस्से सत्तसु णव छट्ठयम्मि एयारा ।
जोणिम्मि सत्त जोगा अयोगिठाण हवे सुण्ण ।।७०२।।

त्रय में तेरह मिश्र दश, ग्यारह प्रमत्त पिछान ।
सातसयोगअयोग च्चय, शेषथान नव जान ।।७०२।।

अर्थ—मिथ्यात्व, सासादन और अविरतगुणस्थान मे आहारक-काययोग और आहारकमिश्रकाययोग को छोडकर शेप तेरह योग होते है मिश्रगुणस्थान मे उपरोक्त तेरह योगो मे से औदारिकमिश्र-योग विक्रियकमिश्रयोग और कार्माणकायोग को छोडकर शेप दश योग होते है देशविरत, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-सापराय, उपशात और क्षीणमोहगुणस्थान मे उपरोक्त दश योगो मे से विक्रियककाययोग को छोडकर शेप नव योग होते है प्रमत्तगुणस्थान मे नव योगो मे आहारक और आहारकमिश्रकाययोग को जोड देने से ग्यारह योग होते है सयोगकेवलीगुणस्थान मे सत्यमनयोग, सत्य-वचनयोग, अनुभयमनयोग, अनुभयवचनयोग, औदारिकाययोग, औदा-रिकमिश्रकाययोग और कार्माणकाययोग ये सात योग होते है अयोग-केवलिगुणस्थान मे कोई योग नही होता ।।७०२।।

आगे गुणस्थानो मे उपयोग दिखाते है ।

दोण्हं पंच य छच्चेव दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा ।
सत्तुवजोगा सत्तसु दो चेव जिणे य सिद्धे य ।।७०३।।

दो में पन दो मांहि छै, मिश्र मिश्र गुण थान ।
श्रमण सात में सात हैं, जिन शिव में दो जान।।७०३।।

अर्थ—मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे पॉच उपयोग

(तीन ज्ञान, दो दर्शन) होते है अविरत और देशविरत मे छै उपयोग (तीन ज्ञान, तीन दर्शन) होते है मिश्रगुणस्थान मे उपरोक्त छै उपयोग मिश्ररूप होते है प्रमत्तादि से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान तक सात उपयोग (चार ज्ञान, तीन दर्शन) होते है और सयोग, अयोग और सिद्धभगवान के केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो उपयोग होते है ॥७०३॥

। अतर्भावाधिकार समाप्त ।

आगे पुन मगलाचरण दिखाते है ।

गोयमथेरं पणमिय ओघादेसेसु वीसभेदाणं ।
जोजणिकाणालावं वोच्छामि जहाकमं सुणह ॥७०४॥

वन्दि वीर गुण थान अरु, मारगणा सु मिलाय ।
वीस भेद के कथन को, क्रम से कहूँ सुनाय ॥७०४॥

अर्थ—श्री महावीरभगवान को नमस्कार कर के अब मै गुणस्थान और मार्गणाओ के मिलाप रूप वीस भेदो को क्रम से कहता हूँ ॥७०४॥

आगे अनिवृत्तिकरण के पाच कथनो को दिखाते है ।

ओघे चोदसठाणे सिद्धे वीसदिविहाणमालावा ।
वेदकसायविभिण्णे अणियट्टीपचभागे य ॥७०५॥

चौदह गुण अरु मार्ग में, बीस कथन के भाग ।
नववें वेद कपाय से, पांच विभिन्न विभाग ॥७०५॥

अर्थ— चौदहगुणस्थान और चौदहमार्गणास्थानो मे उपरोक्त वीस कथन के तीन भेद है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त । अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के वेद और कपाय की अपेक्षा कथन मे पाच भेद है ।

वेद, क्रोध, मान, माया और वादरलोभ ॥७०५॥

आगे गुणस्थानो मे कथन के भेद दिखाते है ।

ओघे मिच्छदुगेवि य अयदपमत्ते सयोगिठाणम्मि ।
तिण्णेव य आलावा सेसेसिक्को हवे णियमा ॥७०६॥

मिथ्या सासा अविरता, प्रमत सयोग पिछान ।
तीन तरह का कथन है, शेषों में इक जान ॥७०६॥

अर्थ—मिथ्यात्व, सासादन, अविरत, प्रमत्त और सयोग गुण-स्थान मे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त और शेप गुणस्थानो मे केवल एक पर्याप्त का ही कथन है ॥७०६॥

आगे कथन के भेद दिखाते है ।

सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं चेदि तिण्णि आलावा ।
दुवियप्पमपज्जत्तं लद्धीणिव्वत्तग चेदि ॥७०७॥

कथन भेद सामान्य अरु, पर्याप्ता—पर्याप्त ।
अपर्याप्त के भेद द्वय, लब्धि निवृति विख्यात।७०७।

अर्थ—कथन के तीन भेद है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त । अपर्याप्त के दो भेद है लब्धिअपर्याप्त और निवृत्तिअपर्याप्त ॥७०७॥

आगे गुणस्थानो के कथन को पुन. स्पष्ट दिखाते है ।

दुविहं पि अपज्जत्तं ओघे मिच्छेव होदि णियमेण ।
सासणअयदपमत्ते णिव्वत्तिअपुण्णगो होदि ॥७०८॥
जोगं पडि जोगिजिणे होदि हु णियमा अपुण्णगत्त तु ।
अवसेसणवट्ठाणे पज्जत्तालावगो एक्को ॥७०९॥

पर्याप्तापर्याप्त दो, मिथ्यातम में मान ।
सासा अविरत प्रमत में, निवृति अपूर्ण पिछान।७०८
समुद्घात तेरह विषें, अपर्याप्त का मान ।
शेष नवहि गुण थान में, पर्याप्तक इक थान ।७०९।

अर्थ—सब गुणस्थानों को छोडकर केवल मिथ्यात्वगुणस्थान मे ही दोनों प्रकार के अपर्याप्तों के (लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त) कथन है । सासादन, अविरत और प्रमत्तगुणस्थान मे निवृत्तिअपर्याप्त का कथन है और सयोगकेवलीगुणस्थान मे समुदघात के समय अपर्याप्त का कथन है इस प्रकार इन पाच गुणस्थानो मे तीन २ प्रकार का कथन है और शेष नव गुणस्थानो मे केवल एक पर्याप्त का ही कथन है ।।७०८-७०९।।

आगे नरकों मे कथन भेद दिखाते है ।

सत्तण्हं पुढवीणं ओघे मिच्छे य तिण्णि आलावा ।
पढमाविरदेवि तहा सेसाणं पुण्णगालावो ।।७१०।।

सातों के मिथ्यात्व में, प्रथमा अविरत थान ।
तीन तरह का कथन है, शेष पूर्ण इक जान।७१०।

अर्थ—सातों नरकपृथ्वियों के मिथ्यात्वगुणस्थान मे और प्रथम नरक के अविरतगुणस्थान मे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त तथा उपरोक्त नरकों के शेष गुणस्थान मे एक पर्याप्त का ही कथन है ।।७१०।।

आगे तिर्यचो मे कथन भेद दिखाते है ।

तिरियचउक्काणोघे मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णे व ।
णवरि य जोणिणि अयदे पुण्णो सेसेवि पुण्णो दु ।।७११।।

चउ पशु के मिथ्यात्व अरु, सासा दृग में तीन।
पशुनी अम दृग पूर्ण है, शेष पूर्ण युत चीन ७११

अर्थ—सामान्यतिर्यंच, सामान्यपचेन्द्रियतिर्यंच और पर्याप्तपचेन्द्रियतिर्यंच के मिथ्यात्व, सासादन और अविरतगुणस्थान मे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त। और इनके मिश्र और देशविरतगुणस्थान मे एक पर्याप्त का ही कथन है और पशुनी के मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त। और इसके मिश्र, अविरत तथा देशविरत गुणस्थान मे एक पर्याप्त का ही कथन है ॥७११॥

आगे लब्धिअपर्याप्ततिर्यंच, मनुष्य के कथन भेद दिखाते है।

तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते एक्को अपुण्ण अलावो।
मूलोघं मणुसतिये मणुसिणिअयदम्हि पज्जत्तो ॥७१२॥

इक अपूर्ण ही कथन है, पशू लब्ध्य-पर्याप्त।
चउ मनुष्य सामान्य वत्, नारी दृग पर्याप्त॥७१२॥

अर्थ—लब्धिअपर्याप्ततिर्यंचो के एक अपर्याप्त का ही कथन है और सामान्य मनुष्य के मिथ्यात्व, सासादन, अविरत, प्रमत्त और सयोगगुणस्थान मे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त। और इनके शेष गुणस्थानो मे एक पर्याप्त का ही कथन है और भावमनुष्यनी के मिथ्यात्व, सासादन, और सयोगगुणस्थान मे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त। और इनके शेष गुणस्थानो मे एक पर्याप्त ही का कथन है ॥७१२॥

आगे भाव स्त्री के आहारक देह का अभाव दिखाते है।

मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण।
अवगदवेदे मणुसिणि सण्णा भूदगदिमासेज्ज ॥७१३॥

भाव नारि गुण प्रमत में, आहारक नहिं होय।
वेद रहित को वेद युत, कहा भूत नय जोय ।७१३।

अर्थ—जो द्रव्य से पुरुष है और भाव से स्त्री है ऐसे स्त्री वेद वाले के प्रमत्तगुणस्थान मे आहारकशरीर और आहारकअगोपाग नाम कर्म का उदय नही होता और मनपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धि-सयम भी नही होता इसी प्रकार नपुसकवेद का कथन है और वेद रहित जीव भूत प्रज्ञापन नय की अपेक्षा से वेद वाला कहा जाता है ॥७१३॥

आगे लब्धिअपर्याप्त मनुष्य के कथन भेद दिखाते है।

णरलद्धिअपज्जत्ते एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो।
लेस्साभेदविभिण्णा सत्त वियप्पा सुरट्ठाणा ॥७१४॥

मनुष लब्ध्य-पर्याप्त के, इक अपूर्ण स्थान।
लेश्या भेद विभिन्न से, सात भेद सुर थान।७१४।

अर्थ—लब्धिअपर्याप्त मनुष्य के एक अपर्याप्त का ही कथन है और देवो के लेश्या भेद की अपेक्षा सात भेद है जो कि दोहा न० ५३४-५३५ मे बता चुके हैं ॥७१४॥

आगे देवो मे कथन भेद दिखाते हैं।

सव्वसुराणं ओघे मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव।
णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो ॥७१५॥
मिस्से पुण्णालाओ अणुद्दिसाणुत्तरा हु ते सम्मा।
अविरत तिणालापा अणुद्दिसाणुत्तरे होंति ॥७१६॥

सर्व देव मिथ्यात्व अरु, सासा अविरत तीन।
किन्तु भवन त्रय अरुसुरी, अविरत अपूर्ण चीन।७१५

मिश्र पूर्ण ग्रीवक परे, सम्यक दृष्टी मान।
अविरत में इन सुरोंके, तीन कथन पहिचान ॥७१६।

अर्थ—सब देवो के मिथ्यात्व, सासादन और अविरतगुणस्थान मे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त और इनके मिश्र गुणस्थान मे एक पर्याप्त का ही कथन है। सब देवियो के मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थान मे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त। और इनके मिश्र तथा अविरतगुणस्थान मे एक पर्याप्त का ही का कथन है। तथा अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तक एक अविरतगुणस्थान ही होता है इसमे तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त ॥७१५–७१६॥

आगे असैनी जीवो के कथन भेद दिखाते है।

बादरसुहमेइंदियबितिचउरिंदियअसण्णिजीवाणं।
ओघे पुण्णे तिण्णि य अपुण्णगे पुण अपुण्णो दु ॥७१७॥

थूल सूक्ष्म इक दो त्रया, चउ पन अमना मान।
पूर्णा के त्रय कथन हैं, अपूर्ण के इक जान ॥७१७॥

अर्थ—बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय, तथा दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असैनीपचोन्द्रिय जीवो मे से जिनके पर्याप्त नामकर्म का उदय है उनका तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त। और जिनके अपर्याप्त, नामकर्म का उदय है उनके एक लब्धिअपर्याप्त का ही कथन है ॥७१७॥

आगे सैनी के कथन भेद दिखाते है।

सण्णी ओघे मिच्छे गुणपडिवण्णे य मूलआलावा।
लद्धियपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७१८॥

जितने थल सैनी विषें, वे सब मूल समान।
लब्ध्यपूर्ण के एक है, अपर्याप्त स्थान ॥७१८॥

अर्थ—सैनी जीवो के चौदह गुणस्थान होते है उनमे दोहा न० ७०६ के समान कथन है और लब्धिअपर्याप्तकसैनी के एक अपर्याप्त का ही कथन है ॥७१८॥

आगे षट्काय के जीवो मे कथन भेद दिखाते हैं।

भूआउतेउवाऊणिच्चचदुग्गदिणिगोदगे तिण्णि।
ताण थूलेदरसु वि पत्तेगे तदुभेदेवि ॥७१९॥
तसजीवाणं ओघे मिच्छादिगुणे वि ओघ आलाओ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२०॥

भू जल अग्नी पवन अरु, नित्य रु इतर निगोद।
थूल सूक्ष्म प्रत्येक द्वय, त्रय त्रय कथनी खोद ॥७१९॥
त्रस जीवों का कथन सब, गुणस्थान वत् मान।
लब्ध्यपूर्ण के एक है, अपर्याप्त स्थान ॥७२०॥

अर्थ—बादर और सूक्ष्मपृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, नित्यनिगोद और इतरनिगोद तथा सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति का तीन तीन प्रकार का कथन है सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त। त्रसजीवोंके चौदह गुणस्थान होते हैं उनमे दोहा न० ७०६ के समान कथन है और उपरोक्त जीवो मे जो लब्धिअपर्याप्तक जीव होते हैं उनके एक अपर्याप्त का ही कथन है ॥७१९-७२०॥

आगे योगवाले जीवो के कथन भेद दिखाते है।

एक्कारसजोगाणं पुण्णगदाणं सपुण्णआलाओ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो सगएक्कअपुण्णआलाओ ॥७२१॥

ग्यारह योगों के विषें, निज निज पूर्णालाप।
चारों मिश्रों के विषें, निज निज अपूर्ण थाप॥७२१

अर्थ–चारमनयोग, चारवचनयोग, औदारिककाययोग विक्रियककाययोग और आहारककाययोग मे अपना २ एक पर्याप्त का कथन है और औदारिकमिश्रकाययोग, विक्रियकमिश्रकाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कामणिकाययोग मे अपना २ एक अपर्याप्त का ही कथन है ॥७२१॥

आगे शेप मार्गणाओ मे कथन भेद दिखाते है।

वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ।
णवरि य संढित्थीणं णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥७२२॥

वेदहिं से आहार तक, निज निज गुण सम मान।
किन्तु षंड तिय के नहीं, आहारक द्वय जान॥७२२॥

अर्थ—वेद से लेकर आहारमार्गणातक अपने २ गुणस्थान के समान कथन है किन्तु भावनपुसक और भाव स्त्री के आहार काययोग और आहारकमिश्रकाययोग नही होता इस कारण वे कथन भी नही है ॥७२२॥

आगे वीस कथनो का परस्पर समावेस दिखाते है।

गुणजीवापज्जत्ती पाणा सण्णा गइंदिया काया।
जोगा वेदकसाया णाणजमा दंसणा लेस्सा ॥७२३॥

भव्वा सम्मत्तावि य सण्णी आहारगा य उवजोगा।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु समुदाय ॥७२४॥

गुण जिय पूर्णा प्राण अरु, संज्ञ गतीन्द्रिय काय।
योग रु वेद कषाय मति, नेम दर्श लेश्याय॥७२३

भव्य रु समकित समन अरु, आहारक उपयोग ।
योग्य कथन गुण थान अरु, मारगणा संयोग ॥७२४॥

अर्थ—१४ गुणस्थान, १४ जीवसमास, ६ पर्याप्ति, १० प्राण, ४ संज्ञा, ४ गति, ५ इन्द्रिय, ६ काय, १५ योग, ३ वेद, ४ कषाय, ८ ज्ञान, ७ संयम, ४ दर्शन, ६ लेश्या, भव्य, अभव्य, ६ सम्यक्त्व, सैनी, असैनी, आहारक, अनाहारक और १२ उपयोग का यथायोग्य गुणस्थान और मार्गणास्थानो मे कथन करना चाहिये ॥७२३-७२४॥

आगे जीवसमासो मे कुछ विशेषता दिखाते है ।

ओघे आदेसे वा सण्णीपज्जंतगा हवे जत्था ।
तत्त य उणवीसंता इगिबितिगुणिदा हवे ठाणा ॥७२५॥

गुणस्थान या मार्गणा, सैनी तक व्याख्यान ।
जहां भेद उन्नीस अरु, इक दो त्रय गुण थान ॥७२५॥

अर्थ—गुणस्थान और मार्गणाओ के कथन मे जहा सैनी तक जीवसमासो के भेद बतलाये गये है वहा जीव समास के एक से लेकर उन्नीस तक भेद है पर्याप्त और अपर्याप्त की अपेक्षा गुणा करने से अड़तीस भेद होते है और पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त तथा लब्धि-अपर्याप्त की अपेक्षा गुणा करने मे सत्तावन भेद होते है इसका विशेष व्याख्यान दोहा न० ७७ मे कर चुके है ॥७२५॥

आगे पुन मगलाचरण दिखाते है ।

वीरमुहकमलणिग्गयमयलसुयग्गहणपयउणसमत्थं ।
णमिऊणगोयममहं सिद्धंतालावमणुवोच्छं ॥७२६॥

श्रुत प्रकटी सब वीरमुख, सुनकर जो प्रकटाय ।
ऐसे गौतम नमि चरण, कहूँ अर्थ समझाय ॥७२६॥

अर्थ—सब जिनवाणी श्री महावीरभगवान के मुखकमल से निकली और गौतमगणधर ने जिसको सुनकर शब्द रूप प्रकट करी ऐसे गौतमगणधर को नमस्कार कर सिद्धान्त के कुछ नियमो को कहता हूँ ॥७२६॥

आगे मनपर्यय आदि मे परस्पर विरोध दिखाते हैं।

मणपज्जवपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारा ।
एदेसु एक्कपगदे णत्थित्ति असेसयं जाणे ॥७२७॥

उपशम समकित प्रथम अरु, आहारक द्वय मान ।
मनपर्यय परिहार अरु, कभी न हो इकथान ॥७२७॥

अर्थ— मनपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसयम, आहारकशरीर, आहारक आगोपाग और प्रथमोपशमसम्यक्त्व ये चारो एक जीव के एक साथ नही होते यहा दोहा न० ४९८ के नियम को भी पुन. देखना चाहिये ॥७२७॥

आगे द्वितीयोपशम से उतर कर देव पर्याय दिखाते है।

बिदियुवसमसम्मत्त सेढीदोदिण्णि अविरदादीसु ।
सगसगलेस्सामरिदे देवअपज्जत्तगेव हवे ॥७२८॥

उपशम समकित दुतिय से, उतरे अविरत आय ।
निज निज लेश्या मरण कर, पावे सुर पर्याय॥७२८॥

अर्थ—जितने उपशमश्रेणी से उतर कर अविरतादिगुणस्थानो को प्राप्त होते है वे अपनी अपनी लेश्या के अनुसार मरणकर कल्पवासी देवों मे उत्पन्न होते है उनकी अपर्याप्तअवस्था मे द्वितीयोपशमसम्यक्त्व होता है अन्य की अपर्यावस्था मे द्वितीयोपशमसम्यकत्व नही होता ॥७२८॥

आगे सिद्धों का स्वरूप दिखाते है।

सिद्धाणं सिद्धगई केवलणाणं च दंसणं खयियं।
सम्मत्तमणाहारं उवजोगाणक्कमपउत्ती ।।७२९।।

सिद्ध जियों के सिद्धगति, क्षायिक दर्शन ज्ञान।
क्षायिकदृग उपयोग अरु, अनाहार नित जान।।७२९।।

अर्थ—सब सिद्धभगवानों के सिद्धगति, अनाहार, क्षायिकदर्शन, ज्ञान, सम्यक्त्व और उपयोग सदा नित्य रहता है ।।७२९।।

आगे सिद्धों को गुणस्थान और मार्गणाओं से रहित दिखाते है।

गुणजीवठाणरहिया सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा।
सेसणवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति ।।७३०।।

गुण जीवा संज्ञा रहित, पर्याप्ता नहिं प्राण।
पन तज नव नहिं मार्गणा, सिद्ध शुद्ध निज जान।।७३०।

अर्थ-सिद्धभगवान चौदहगुणस्थान, चौदहजीवसमास, चारसंज्ञा, छैपर्याप्ति और दशप्राणों से रहित है तथा सिद्ध गति, ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व और अनाहर मार्गणा को छोड कर शेष नव मार्गणाओं से रहित हैं और सिद्ध सदा शुद्ध है ।।७३०।।

आगे ग्रन्थ पढने का फल दिखाते हैं।

णिक्खेवे एयत्थे णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे।
मग्गइ वीसं भेयं सो जाणइ अप्पसब्भावं ।।७३१।।

नय प्रमाण निक्षेप से, वीस भेद लख लेय।
वही आत्मसद्भाव को, जाने तज पर ज्ञेय ।।७३१।।

अर्थ—जो आत्मा उपरोक्त वीसभेदो को नय, निक्षेप और प्रमाण

से भली भाति जान लेता है वह आत्मा के यथार्थ भाव को पर पदार्थो से भिन्न जान लेता है ॥७३१॥

आगे अत मगल दिखाते है ।

अज्जज्जसेणगुणगणसमूहसंधारिअजियसेणगुरू ।
भुवणगुरू जस्स गुरू सो राओ गोम्मटो जयतु ॥७३२॥

आर्य सेन गुण गण धरा, तीन लोक गुरु मंत ।
अजित सेन गुरु जिन्हों के, सो गोमट जयवंत॥७३२॥

अर्थ—अत मे राजा चामुडराय को आशीर्वाद हो कैसा है राजा चामुडराय श्री अजितसेन आचार्य का मुख्य शिष्य है श्री अजितसेन आचार्य कैसा है श्री आर्यसेन आचार्य के गुणो को धारणकरणहारा है उनके सघ को चलावनहारा है और जगत का गुरु है ॥७३२॥

जैसा प्राकृत छंद है, तैसा दोहा अर्थ ।
रंच भूल लख संत जन, मम श्रम करो न व्यर्थ ॥

॥ गोमटसार जीवकांड समाप्त ॥

न्यू इण्डिया प्रिंटिंग प्रेस, खुरजा ।